maj Foundation Che

AJANTA Vol. 8 1951

ain. Gurukul Ka

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079517

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजन्ता

079517

सितम्बर १९५१ वर्ष ३ अङ्क ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजन्ता

सितम्बर १९५१

वर्ष ३

अङ्क ९

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

१	तुम गाती हो (कविता)—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार ...	१
२	वर्षा-गीत (,,)—श्री रामेश्वरदयाल 'अंचल' एम्. ए. ...	२
३	'प्रसाद' का "कंकाल"—श्री विनयमोहन शर्मा, एम-ए. ...	३
४	आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न वाद—श्री जयशंकर मिश्र एम. ए.	७
५	चीन में भारतीय पण्डित—श्री सुमन वात्स्यायन ...	१२
६	तहसीलदार (कहानी)—माननीय श्री विनायकराव विद्यालंकार ...	१५
७	'प्रिय-प्रवास' की राधिका—श्रीमती सुशीला देवी विद्यालंकृता ...	२२
८	मधुकरी ...	२५
९	भारतीय संस्कृति का मूलस्रोत आर्य संस्कृति—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार	३०
१०	राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द'—श्री के. सज्जनलाल, एम-ए.	३५
११	रजाकार (धारावाहिक उपन्यास)—श्रीराम शर्मा ...	३८
१२	साहित्य-विवेचन—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार ...	४१
१३	सम्पादकीय ...	४५
१४	एक घटना—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ...	४७
१५	हैदराबाद-राज्य हिन्दी-प्रचार-सभा, कार्य-विवरण ...	४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक
गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि'

प्रकाशक
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

वर्ष ३ | सितम्बर १९५१ | अङ्क ९

तुम गाती हो !

तुम गाती हो, मैं सुनता हूँ ।
इन गीतों के तारों से मैं स्वप्नों का मृदु पट बुनता हूँ ॥

कभी कभी तुम गाते गाते, जो थोड़ा-सा हँस देती हो ।
ज्योत्स्ना-जैसी इन हँसियों को, फूलों-जैसा मैं चुनता हूँ ॥

गाती जाओ, सुनता जाऊँ, यह जग यों ही चलता जाए ।
मैं इन गीतों में अपने ही, जीवन के स्वर को सुनता हूँ ॥

—वंशीधर विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा—गीत

श्री रामेश्वर दयाल 'अंचल'

हरी चूनर पहन कर आगई वर्षा सोहागिन फिर ॥

कहीं बन बींच फूलों में पड़ी थी स्वप्न में सोई,
उलझते बादलों की लट पिया छलका गया कोई ।
तिमिर ने राह कर दी—राह कच्ची धूप की धोई,
पवन की रागिनी मोती भरे आकाश में खोई ।
पहन धानी लहरिया आ रही वर्षा सोहागिन फिर ॥

* * *

गुँथी है जुगनुओं से मोरपंखी किशमिशी चोली,
दिये गुलनार माथे पर शफ़क की रेशमी रोली ।
हिण्डोलों की लहर में गीत की कोमल कड़ी बोली,
लकीरें खींच पारे की बलाका व्योम में डोली ।
लिये मन नववधू का चल पड़ी वर्षा सोहागिन फिर ॥

* * *

हिना से लाल हाथों में लजीले चाँद की थाली,
दमकती दामिनी ज्यों माँग की हो ईंगुरी लाली ।
विभा की दर्पणी में देख अपना रूप मतवाली,
फटी पौ आज यौवन की रही है गूँज हरियाली ।
पहन मंजीर झरनों के चली वर्षा सोहागिन फिर ॥

* * *

सिमटती और खिलती सद्यस्नाता-सी चली आती,
नये सुकुमार रंगों में किरण-सा रूप छिटकाती ।
अधर दाँतों तले दाबे सभी को देखती भाती,
कमर में इन्द्रधनुषी करधनी सौ बार बल खाती ।
हरी चूनर पहन कर आ रही वर्षा सोहागिन फिर ॥

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रसाद' का "कंकाल"

श्री विनय मोहन शर्मा एम० ए०

'प्रसाद' की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने साहित्य के सभी अंगों—कविता, नाटक, निबन्ध, समीक्षा कहानी और उपन्यास को पल्लवित करने का यत्न किया है। जिस प्रकार कविता में उन्होंने वाद विशेष की दिशा निर्दिष्ट की, उसी प्रकार कथा के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली का परिष्कार किया। उनकी कहानियों का तन्त्र उनका अपना है। उनके पात्रों की दुनिया भी अपनी है, जिन की भावुकता और त्याग से हम हर्ष-विकम्पित और करुणा-विगलित होते हैं। जिस समय लघु-कथा के क्षेत्र में प्रसाद की प्रसिद्धि उनके रोमानी दृष्टिकोण के कारण व्यापक बन रही थी, उसी समय प्रेमचन्द ऐसे कथा-साहित्य की सृष्टि कर रहे थे जो यथार्थ की भूमि पर स्थित होते हुए भी आदर्श की ओर उन्मुख था। अपने इस दृष्टिकोण को वे 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के नाम से अभिहित करते थे। प्रेमचन्द समाज की व्यवस्था से विद्रोह तो करते थे पर उस के द्वारा मनोनीत चरित्रों की उपेक्षा करना उन्हें बहुत अभीष्ट न था। वे समाज-व्यवस्था पर एक हाथ से प्रहार करते और दूसरे हाथ से इसको सहलाते थे। समाज की बुराइयों को प्रस्तुत करना ही वे अपना धर्म नहीं मानते थे, प्रत्युत उनका हल सुझाना भी वे आवश्यक समझते थे।

'कंकाल' अपने समय की उपन्यास प्रवृत्ति के विपरीत नूतन और विस्फोटकारी दृष्टिकोण उपस्थित करता है। समाज में घृणित, पद्दलित और उपेक्षित पात्रों का यथार्थ रूप चित्रित कर हिन्दी में आनेवाले युग का जय-घोष करता है। समाज में जो सांसारिक और धार्मिक वृत्तियों का द्वंद्व चल रहा है उसे निरपेक्ष भाव से चित्रित करने का उस में संकल्प परिलक्षित होता है। प्रतीत होता है कि लेखक अपने समाज के अशोभन, असुन्दर और अनाहत स्वरूप को निरावरणमात्र करना चाहता है जिस से जनता उसकी विभीषिका से चौंक कर आत्म-सुधार का स्वयं मार्ग खोज ले। 'प्रसाद' ने अपने सम-कालीन उपन्यासकारों के समान समस्याओं को प्रस्तुत करते समय उपदेशक का बाना धारण नहीं किया। 'कंकाल' में समाज की विकृत अप्राकृतिक स्थिति के प्रति भीषण रोष व्यक्त हुआ है। धर्म के थोथेपन और आड-म्बरपूर्ण कदाचार से लेखक की भारत के अतीत गौरव की आराधक मनोवृत्ति अस्वस्थ हो उठी है। तभी उन्होंने एक पात्र के मुँह से कहलाया है—"प्राचीन कुसंस्कारों का नाश करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। क्योंकि यही रूढ़ियाँ आगे चल कर धर्म का रूप धारण कर लेती हैं। जो बातें कभी देश, काल, पात्रानुसार प्रचलित हो गई थीं, वे सब मानवीय नहीं, हिन्दू समाज के पैरों में ये बेड़ियाँ हैं।" पाप-पुण्य के झमेले में समाज को उलझाकर कितना अमानव व्यापार होता है, इससे भी लेखक का हृदय काँप उठा है। एक बुद्धिवादी की नाईं वह उनकी व्याख्या करता है—"पाप और कुछ नहीं है; जिन्हें हम छिपाकर किया चाहते हैं, उन्हीं कर्मों को पाप कह सकते हैं, परन्तु समाज का एक बड़ा भाग उसे यदि व्यवहार्य बना दे तो वही कर्म धर्म हो जाता है। इतने विरुद्ध मत रखनेवाले संसार के मनुष्य अपने अपने विचारों में धार्मिक बने हैं। जो एक के लिए पाप है, वही दूसरे के लिए पुण्य है।"

'कंकाल' का प्रारम्भ ही धार्मिक अथवा पाप-पुण्य के वातावरण से होता है। अमृतसर का व्यापारी श्रीचंद अपनी पत्नी किशोरी के साथ प्रयाग में माघी अमावस्या के समय गंगातट पर एक महात्मा के दर्शन के लिए जाता है और महात्मा को ज्योंही किशोरी अपना परिचय देती है, वह चौंक जाता है; क्योंकि वह उसकी बालसंगिनी थी। महात्मा के मन में अतीत और वर्तमान का संघर्ष होता है। वह राग-विराग से अपने को पृथक् रखने की दृष्टि से एका-एक हरिद्वार भाग जाता है। किशोरी पुत्र की कामना लेकर प्रयाग महात्मा के दर्शन के लिये आई थी। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा हरिद्वार भाग गये तो वह भी वहीं पहुँच गई। किशोरी ने महात्मा के आगे अपनी अभिलाषा व्यक्त की। महात्मा ने अपना परिचय देते हुए कहा—"किशोरी! मैं वही रंजन हूँ। तुम को पाने के लिये ही जैसे आजतक तपस्या करता रहा, यह संचित तप तुम्हारे चरणों में निछावर है। सन्तान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की मुझ में जो कुछ शक्ति है, वह सब तुम्हारी है।" अतीत की स्मृति और वर्तमान की कामनाएँ, किशोरी को भुलावा देने लगीं। माथे से पसीना बहने लगा। दुर्बलहृदया किशोरी को चक्कर आने लगा। उसने ब्रम्हचारी के चौड़े वक्ष पर अपना सिर टेक दिया। किशोरी महात्मा के साथ बहुत समय तक रही। श्रीचंद के बहुत आग्रह के बाद अमृतसर गई। महात्मा उसकी पुत्र-कामना पूरी करने के कारण बने। किशोरी के जाने के बाद महात्मा का एक रामा विधवा से अवैध सम्बन्ध हो जाता है और उससे 'तारा' नामक पुत्री उत्पन्न होती है। काशी में ग्रहण के अवसर पर तारा भीड़ में भूल जाती है। एक स्वयंसेवक उसे देखकर उसकी सहायता करना चाहता है पर एक बुढ़िया उसे बहकाकर अपने साथ ले जाती है। वह लखनऊ में कुट्टनी के चक्कर में आकर वेश्या बनने का उपक्रम करती है। स्वयंसेवक मंगल उसकी रक्षा कर हरिद्वार ले जाता है। वहाँ दोनों आर्यसमाजी बन कर विवाह-सूत्र में बँधना ही चाहते थे कि तारा की काकी ने मंगल से कह दिया कि वह जारज-संतति है। मंगल तारा को निस्सहाय छोड़ कर भाग जाता है। काकी तारा पर अत्याचार करती है। तारा भी घर छोड़ देती है, काशी चली जाती है। उधर अमृतसर में श्रीचंद को जब यह ज्ञात हो जाता है कि किशोरी महात्मा की जारज-संतति पेट में लेकर आई है तो उसे उससे विरक्ति हो जाती है। वह पुत्र होने पर खुशी नहीं मनाता। किशोरी और उसके लड़के को इस बहाने काशी भेज देता है कि अमृतसर की जलवायु दोनों को अनुकूल नहीं है। काशी में माँ-बेटे के लिये अच्छे मकान का प्रबन्ध कर दिया जाता है और अच्छी रकम श्रीचंद प्रतिमास भेज कर किशोरी को संतुष्ट रखता है। इधर हरिद्वार के महात्मा देव निरंजन काशी में किशोरी के घर पर ही आकर रहने लगते हैं—ठाकुर जी के पुजारी का रूप धारण कर।

किशोरी का पुत्र 'विजय' विद्यालय में पढ़ता है। वहीं मंगल भी पहुँच जाता है। दोनों में घनी मैत्री हो जाती है। मंगल विजय के घर ही रहने लगता है। किशोरी महात्मा निरंजन के साथ तरह तरह के धार्मिक उत्सवों का स्वांग रचती रहती है। एक उत्सव में भीड़-भाड़ से त्रस्त स्त्री को किशोरी ने दया कर अपने घर में दासी के रूप में रख लिया। वह 'यमुना' के रूप में तारा ही थी जिस का मंगल ने जारज-संतान समझ कर परित्याग कर दिया था और जो अपने पन्द्रह दिन के शिशु को अस्पताल में भगवान् के भरोसे छोड़ कर काशी भाग आई थी और गली गली के टुकड़ों से अपने पेट की ज्वाला शांत करती रहती थी। मंगल ने एक दिन जब तारा को पहिचाना तो वह भाग खड़ा हुआ। विजय तारा की ओर आकर्षित होता है। तारा उसे जरा भी प्रोत्साहित नहीं करती। विजय में यौवन उभार भरता रहता है। उसे मदिरा का बेसुध बनानेवाला नशा भी लग चुका था। बस, मदिराक्षी के लिये उसका अतृप्त हृदय बेचैन हो उठता था। विजय और निरंजन में भीतर ही भीतर अनबन रहती थी। निरंजन के पास किशोरी विजय और यमुना के साथ वृन्दावन चली जाती है। वहीं एक 'घण्टी' नामक कुख्यात विधवा से विजय का परिचय हो जाता है। अनाथों, असहायों के लिये पाठशाला चलाते हुए मंगल भी वहीं मिल जाता है। विजय को जब यमुना नहीं अपनाती तो वह घंटी को जबरन् अपनी बनाने को व्यग्र हो जाता है। घंटी बदनाम स्त्री है। किशोरी और मंगल को विजय का यह प्रणय-व्यापार नहीं रुचता। मथुरा में 'चर्च' के पादरी के परिवार द्वारा घंटी की गुंडों से रक्षा होती है। घंटी विजय के साथ तांगे में घूम रही थी, तभी विजय पर प्रहार किया गया था। आश्रम की ईसाई स्त्री लतिका में भी मनमुटाव—घंटी को लेकर—प्रारम्भ हो गया। एक अंधे भिखारी द्वारा घंटी को विदित होता है कि वह गोविन्दी चौबाइन की पुत्री है। लतिका अपने पति को चल-विचल देख कर उस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेती है और वहीं गोस्वामी जी के आश्रम में शरण लेती है। गोस्वामी जी ने मंगल को भी अपने यहाँ रख लिया था। किशोरी और निरंजन विजय को त्यागकर काशी चले गये थे। पर माँ का हृदय पुत्र के लिये छटपटा उठता था। निरंजन को किशोरी ने विजय को घर लौटा लाने के लिये भेज दिया। निरंजन को विजय दिखाई दिया—घंटी के साथ रात में नौका-विहार करते। जब प्रातः नौका किनारे लगी तो घंटी को छीनने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये विजय से गुंडों की पुनः झड़पें हुईं। विजय ने एक गुंडे को वहीं मार डाला। दूसरा भाग गया। इसी समय निरंजन दोनों को यमुना के आग्रह पर घटनास्थल से अज्ञात स्थान पर ले गया। पुलिस ने यमुना को ही अपराधी मान कर गिरफ्तार कर लिया। विजय जंगल में डाकुओं के सरदार के साथ रहने लगता है। उसकी कन्या 'गाला' का उससे स्नेह हो जाता है, पर वह उस के साथ विवाह नहीं करता। सरदार की नाराजगी से बचने के लिये विजय भाग जाता है। गाला भी मंगल की पाठशाला में पढ़ाने का काम करने लगती है। पुलिस की गोलियों से उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। उद्विग्न हो वह गोस्वामी जी के आश्रम में रहने लगती है। मंगल आदि मिलकर 'भारत संघ' की स्थापना करते हैं, जिस में हिन्दू धर्म, राम, कृष्ण और बुद्ध की आर्य संस्कृति का प्रचार किया जाता है। उस में विभिन्न प्रकार के जातिवादों की उपेक्षा की जाती है। उपन्यास के प्रायः सभी पात्र इस संघ में सम्मिलित हो जाते हैं और एक दूसरे को पहिचान लेते हैं। केवल विजय ही भिखारी के रूप में अपने प्राणों का उत्सर्ग करता है। उसकी भूख से जर्जर देह क्षीण हो जाती है-निष्प्राण होकर गिर जाती है। यमुना (तारा) अपने मालिक-किशोरी के पति-से दस रुपया उधार लेकर उसकी अंतिम क्रिया की तैयारी करती है। जनता देखती है—अवगुण्ठनवती स्त्री का आँचल आँसुओं से रह-रह कर भीग उठता है और उसके पास पड़ा हुआ है-किसी जमाने में वैभव के अधिपति का सूखा 'कंकाल'।

यह है उपन्यास का कथानक जिस में घटनाओं के अनेक सूत्र गुँथे हुए हैं। यह इतना जटिल है कि नायक तथा नायिका का पता लगाना कठिन हो जाता है। वास्तव में इस में कोई प्रधान पात्र ही नहीं है जिसे केन्द्र बनाकर कथा चलती हो। प्रत्येक पात्र जोड़ी से रंगमंच पर आता है, घटनाओं की सृष्टि करता है और उन्हीं में डूब उतरा कर अंत में गोस्वामी जी के संघ में समा जाता है। नायक और नायिका से रहित होना भी 'कंकाल' की एक विशेषता है। घटनाओं के घटाटोप के कारण पात्रों के मन की स्थिति का पूर्ण रूप से विश्लेषण करना भी लेखक के लिये संभव नहीं हो सका।

'कंकाल' की दूसरी विशेषता यह है कि उसके प्रायः सभी पात्र अनैतिक, अनाचारी और आदर्श-शून्य हैं। इतना होने पर भी वे पाठकों की सहानुभूति नहीं खोते। बेचारी कुख्यात घंटी की रुन-झुन, उसके हृदय से निकली "सब सखियाँ मिली फाग मनावत, मैं बावरी-सी डोलूँ" की धुन सहज स्वभाव के कारण मन को मोह लेती है। कंकाल में यदि किसी का चरित्र आदर्श की चरम सीमा पर है, तो वह है यमुना उर्फ तारा का। मंगल को सर्वस्व देकर फिर उसके हृदय ने किसी को पति रूप में स्वीकार नहीं किया। विजय की लालसाभरी मनुहारों को झिड़क कर उसने कहा था—"किसी के हृदय की शीतलता और किसी के यौवन की उष्णता- मैं सब झेल चुकी हूँ। उस में सफल नहीं हुई, उस की साध भी नहीं रही। विजय बाबू! मैं दया की पात्री एक बहन होना चाहती हूँ। है किसी के पास इतनी निस्वार्थ स्नेह-सम्पत्ति?" स्त्री के इस आवेश-भरे थप्पड़ से विजय चक्कर खा गया। फिर भी विजय को फाँसी के तख्ते से बचाने के लिये उस ने अपना गला फाँसी की रस्सी में डाल दिया और उसकी उपेक्षित लाश की रक्षा भी उसने अपना आँचल फैलाकर की। मंगल आदर्शवादी बनता है। पाठशालाएँ चलाता है। पर जब किसी नारी के नेत्र प्रश्न बनने लगते हैं, वह कमजोर छात्र की नाईं निरुत्तर होकर लड़खड़ाकर उसी के चरणों में गिर जाता है। तारा के सामने ही वह गाला से विवाह कर लेता है। वह सचमुच "पवित्रता और आलोक से घिरा हुआ पाप है।" निरंजन समाज का दम्भ है जिस में ईमानदारी छू भी नहीं गई। उसी के शब्द में वह 'पिशाच' है। उसने परमात्मा का सम्बन्ध हृदय से माना और शरीर को व्यभिचार के लिये मुक्त छोड़ दिया। विजय तारा और घंटी से ठुकराये जाने पर बहुत कुछ आदर्श के पथ पर बढ़ जाता है। उस का मानसिक उत्थान बुझते हुए दीपक की लौ के समान आकर्षक और उज्ज्वल है। पात्रों के मन में अन्तर्द्वन्द्व की कमी होते हुए भी घटनाचक्र से उनका चित्रण बहुत कुछ सफल हो गया है।

'कंकाल' की तीसरी विशेषता है घटनाओं का नाटकीय ढंग से अवतरित होना। प्रायः सभी घटनाएँ तिलस्मी उपन्यासों की भाँति सहसा घटती हैं-आकस्मिक होती हैं। गंगा में तारा डूबना चाहती है-कोई उसको पकड़ लेता है। विजय पकड़ा ही जानेवाला है, यमुना, निरंजन घटनास्थल पर पहुँच जाते हैं। विजय घोड़े से गिरना चाहता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगल दौड़कर घोड़े को पकड़ लेता है। 'प्रसाद' नियतिवाद ही सम्भवतः आकस्मिक घटनाओं की सृष्टि का समाधान है।

कंकाल विश्लेषणात्मक उपन्यास न होकर वर्णनात्मक अधिक है। इसलिए भाषा का बनाव-सिंगार इस में बहुत कम है। फिर भी यत्र तत्र वर्णन का चातुर्य झलक ही उठता है। "भीड़ के एक ही धक्के में तारा अपनी माता तथा साथियों से अलग हो गई। यूथ से बिछड़ी हुई हरिनी के समान बड़ी बड़ी आँखों से वह देख रही थी। कलेजा धक् धक् करता था, आँखें छलछला रही थीं और उसकी पुकार महाकोलाहल में विलीन हुई जाती थी……वह युवती हो चली थी। अनाघ्रात कुसुम के रूप की पँखुरियाँ विकसी न थीं।"

कंकाल में जीवन-सूक्तियों की लड़ियाँ जहाँ तहाँ बिखरी हुई हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के अनुभव-सूत्र हृदय-स्पर्शी हैं। कुछ बानगी लीजिये—(१) चिंता जब अधिक हो जाती है, तब उसकी शाखा-प्रशाखाएँ इतनी निकलती हैं कि मस्तिष्क उनके साथ दौड़ने में थक जाता है। (२) स्त्री वय के हिसाब से सदैव शिशु, कर्म में वयस्क और अपनी असहायता में निरीह है। (३) नारी जाति का निर्माण विधाता की एक झुंझलाहट है। (४) हृदय का सम्मिलन ही ब्याह है।

'कंकाल' इसलिये हिन्दी में युगान्तकारी रचना है कि इस ने प्रथम बार उपन्यासतन्त्र की आदर्शवादिता की उपेक्षा की, रूढ़िग्रस्त समाजमान्य नायक-नायिकाओं की तनिक भी चिंता नहीं की, अनेक समान महत्व के पात्रों की सृष्टि कर पाठकों को ही अपने प्रिय पात्र को प्रधानता देने की छूट दे दी। अश्लीलता का लेश न रख कर भी समाज का नग्नचित्रण यथार्थ रूप में किस प्रकार किया जा सकता है, 'कंकाल' इसका आदर्श है।

"शुनो रे मानुष भाई,
सबार उपरे मानुस सत्य ताहार उपरे नाई।"

चंडीदास का यह मानव-धर्म 'कंकाल' के क्षीण तन्तुओं से रह रह कर चीत्कार उठता है।

"मुझे ऐसा ज्ञान सिखा दो जो अपना आधिपत्य रात्रि पर जमा ले, जिसे सुन कर कोयल अपना गाना भूल जाय, जिस के सुनने से चन्द्रमा आनन्द से एक स्थान पर स्थिर रहे, जो अक्षर अक्षर में, पद पद में बढ़ कर प्रेम में लीन हो जाय। मुझे ऐसा गान सिखा दो जिस में स्मृति की करुणा और आशा की उमङ्ग हो, स्नेह की पवित्र ज्वाला हो, जिसे सुन कर सुर गण भी मनुष्य होने की इच्छा करने लगें। मुझे ऐसा ज्ञान सिखा दो जिस का स्वर तारों से भी ऊँचा पहुँचे, समस्त लोक में व्याप्त हो जाय और प्रेम का मन्त्र युग युगान्तर तक सब को सुनाता रहे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न वाद

श्री जयशंकरनाथ मिश्र एम० ए०

आधुनिक हिन्दी साहित्य का सृजन केवल कल्पना और भावुकता का आश्रय न लेकर मानवीय जगत के द्वंद्वों और संवेदनाओं के आधार पर हुआ है। भारतेन्दु जी के जीवनकाल में उस में जिस नवीनता और क्रान्ति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे उनका पूर्ण विकास श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में हुआ। गद्य और पद्य दोनों का सर्वथा नया प्रयोग और रूप इस काल में प्रकट हुआ। भारतेन्दु जी ने अपने विषयों का चुनाव पूर्ववर्ती रीतिकालीन आचार्यों के अनुसार करते हुए भी जनजीवन की भावनाओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। 'नीलदेवी' तथा भारत-दुर्दशा' रूपक उनके सर्वथा नये प्रयोग हैं और उन से प्रकट है कि कवि का क्षेत्र प्रचीन रूढ़िग्रस्त विषयों से परे है और वह जीवन को एक नये दृष्टिकोण से देखता हुआ देश और जाति में जागृति उत्पन्न करना चाहता है। यह नवीनता केवल भारतेन्दु जी में ही नहीं वरन् उस काल के सभी साहित्यिकों में पाई जाती है।

"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस प्रकार गद्य की भाषा का स्वरूप स्थिर करके गद्य-साहित्य को देश काल के अनुसार नये नये विषयों की ओर लगाया, उसी प्रकार कविता की धारा को भी नये क्षेत्रों की ओर मोड़ा। इस नये रंग में सब से ऊँचा स्वर देशभक्ति की वाणी का था। ....सारांश यह कि इस नई धारा की कविता के भीतर जिन नये नये विषयों के प्रतिबिम्ब आये, वे अपनी नवीनता से आकर्षित करने के अतिरिक्त नूतन परिस्थिति के साथ हमारे मनोविकारों का सामंजस्य भी घटित कर चले।" *

इस नवीन धारा में योग देने वाले इस युग के कवियों में भारतेन्दु, राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र और 'प्रेमधन' प्रमुख थे। पर साहित्य में एक नई चेतना और गति का प्रादुर्भाव होने पर भी कविता अपने मूल-भूत प्राचीन नियमों और शैलियों के प्रति विद्रोही न हो सकी थी। घनाक्षरी, सवैय्या, छप्पय, कुंडलियों और संस्कृत के वर्णिक छन्दों के बीच उसकी धारा मंद-मन्थर गति से प्रवाहित हो रही थी। राष्ट्रीय भावों से भरी हुई कवितायें लिखनेवाले 'वादों' की परम्परा से दूर थे। अहिंसा, सत्य, प्रेम और त्याग की प्रतिष्ठा करना उनको अभीष्ट था; परन्तु इस प्रकार 'अहिंसावाद' या 'प्रेमवाद' का मूर्तिकरण करना नहीं। भाषा की दृष्टि से काव्य की भाषा अभी तक व्रज ही थी। खड़ी बोली में कविता करने का प्रयास भारतेन्दु जी तथा उनके समकालीन कवि करने लगे थे, किन्तु इस खड़ी बोली में व्रज भाषा की छाप स्पष्ट थी।

खड़ी बोली में सफल रचना करने का श्रेय पं० श्रीधर पाठक को दिया जा सकता है। इस का तात्पर्य यह है कि आप की भाषा में 'व्रजभाषापन' अपेक्षाकृत कम है:—

"विजन वन प्रान्त था, प्रकृति मुख शान्त था।
अटन का समय था, रजनि का उदय था।
प्रसव के काल की लालिमा से लसा।
बाल शशि व्योम की ओर था आ रहा।"×

इस कविता में भाषा के अतिरिक्त शैली के प्रति भी नवीनता दृष्टिगोचर होती है। मुक्त कविताओं में पाठक जी ने अंग्रेज़ी के अंत्यानुप्रासहीन गद्य की भांति लम्बे वाक्यों के छंदों की भी रचना सफलता से की है।

पाठक जी के समय तक देश में अंग्रेज़ी साहित्य

* रामचन्द्र शुक्ल कृत—हिन्दी साहित्य का इतिहास। × सांध्य-अटन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रचार और प्रसार अधिक व्यापक हो चुका था। लोगों ने उसकी सम्पन्नता को आश्चर्यचकित होकर देखा। रूढ़ि और रीति के अनुगामियों को वह बड़ा मोहक किन्तु विचित्र जान पड़ा। उन कविताओं की बहिर्जगत के साथ ही अंतर्जगत तक सीधी पहुँच थी। उन में भावों और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण था; फिर भी परम्परागत बन्धनों और रूढ़ि से मुक्त वह एक सफल प्रयास थीं। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में इस प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया है:—

"जब पंडितों की काव्यभाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परम्परा में नया जीवन डाल देता है।"

आगे चल कर भाषा की जीवन-शक्ति स्थिर रखने के लिये भी वह परिवर्तन और नवीनता के योग के समर्थक हैं; क्योंकि जो भाषा पुरातनता में नवीनता का आरोप नहीं करती, जीवित रहने के योग्य नहीं। इस परिवर्तन और मिश्रण का लक्ष्य है साहित्य को जीवन के प्रति व्यापक, सहिष्णु तथा अनुभूतिमूलक बनाना। इस प्रकार के काव्य में इतिवृत्तात्मकता भले ही पाई जाय, किन्तु वह जीवन को ऊपर उठाने और उस में नवीनता उत्पन्न कराने में समर्थ तथा सहायक सिद्ध होगा। अंग्रेजी साहित्य इस समस्या का समाधान बड़ी सफलता से करता है। १६ वीं और १७ वीं शताब्दी का अंग्रेजी साहित्य जब जनता को नवीन और जीवनमय संदेश न दे सका और सीमित वातावरण में रह कर जीवन और जगत के सत्य को कुंठित करने लगा, तब वहां पुनर्जागरण (Renaissance) के द्वारा प्रगति और नवीनता उत्पन्न करनेवाले कवि और साहित्यिकों का प्रादुर्भाव हुआ। यह कवि अपनी नवीनता के कारण स्वच्छन्दतावादी (Romantic Poets) कहलाये। हिन्दी में इस स्वच्छन्दतावादी पुनर्जागरण (Romantic Revival) का प्रारंभ श्रीधर पाठक जी की कविताओं से होना दिखाई देता है।

पाठक जी के अतिरिक्त 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा, लोचन प्रसाद और माखनलाल चतुर्वेदी भी इस धारा से प्रभावित कवि हैं। इस धारा के कवियों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने भाषा, भाव, कल्पना और शैली सभी में व्यापक परिवर्तन उपस्थित किये हैं। हिन्दी में सर्वप्रथम स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का आरम्भ यहीं से होता है। इस 'वाद' का नामकरण प्राचीन परम्परा के कवियों के प्रति इन कवियों का दुस्साहसमात्र था। अतः कुछ समय तक अदूरदर्शी तथा पथ-भ्रष्ट कहलाकर इस वर्ग ने अपना एक समुदाय बना लिया। इनकी रचनाओं में भावों की तीव्रता के साथ ही आलंबन तथा प्रतीकों का व्यवहार सरल तथा बोधगम्य था और विषय के अन्तर तक पाठक को वह सहज ही ले जा सकते थे। इन की कल्पना ऊँची होते हुए भी इस विश्व तक ही सीमित थी, प्रकृति उनकी अभिव्यक्ति का प्रमुख तथा सफल माध्यम थी।

इस संक्रान्ति काल में 'सरस्वती' का संपादन करने के लिये पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने पदार्पण किया। उनके प्रभाव, तथा अनवरत उद्योग से भाषा का रूप तो स्थिर हुआ ही साथ ही काव्य में भी अन्य उपयोगी विषयों का प्रसार हुआ। श्री मैथिली शरण जी ने उनके संरक्षण में रह कर युग-चेतना और राष्ट्रीय-जागरण के गीत गाए और वे युग को एक नया पथ दिखाने में सफल हो सके। बंग-भंग और असहयोग की तीव्र आंधी से कवि ने लेखनी में शक्ति संचय की। 'भारत-भारती', 'अनघ', 'हिन्दू' लिख कर कवि ने जनजीवन के मनोभावों का सफल नेतृत्व किया। इसका प्रभाव अन्य साहित्यकारों पर भी पड़ा और साहित्य के विविध अंगों—कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यासों में राष्ट्रीयता ने गति और स्थान पाया।

राष्ट्रीयता की इस धारा के बीच एक और लहर भी उठ रही थी। अमूर्तसत्ता के प्रति प्रतीकात्मक ढंग से अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने की भावना, अंग्रेजी से बंगला और उस से हिन्दी में प्रवेश कर रही थी। इस प्रकार की रचनाओं की भाषा प्रायः अस्पष्ट, असन्तुलित तथा रहस्यमय होती थी, क्यों कि अमूर्त के प्रति व्यवहृत उपमान और उत्प्रेक्षायें साकार बन कर पाठक को संतुष्ट न कर पाती थीं। अतः इस प्रकार की कविताओं को लोग 'छायावादी' तथा 'रहस्यवादी' कहने लगे। वस्तुतः 'छायावाद'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कोई भी परिभाषा न आज तक बन सकी है और न बन सकेगी। किन्तु द्विवेदी जी ने अपने प्रबल तर्कों के द्वारा सिद्ध किया कि बिम्बग्रहण और अमूर्त के प्रति व्यक्त अस्पष्ट भावों को 'रहस्यवाद' नहीं कहा जा सकता। उन्होंने ऐसे लोगों को छायावादी कहा। यह बड़ी विषम स्थिति थी, क्यों कि छायावाद और रहस्यवाद का सूक्ष्म अन्तर अभी साधारण पाठक के गले के नीचे न उतरा था, अतः उन का वर्गीकरण कठिन कार्य था।

यह छायावाद प्रारम्भिक अवस्था में अव्यक्त और अमूर्त के प्रति जिज्ञासा और प्रेम-निवेदन का माध्यम बना; फिर क्रमशः युग-युग से संचित मानव विकारों ने अपना प्रदर्शन करना आरम्भ किया। वह प्रेम, जो नैसर्गिक और विशुद्ध भाव से प्रेरित और स्फुरित होकर इस के कलेवर को रहस्यमय सुन्दर आवरण में परिवेष्टित किये हुए था, वासनात्मक उद्‌गारों से अतिरंजित होकर भौतिकता की ओर उन्मुख हो गया। कवि ने अपनी वासनाओं को, मनोभावों को पार्थिव प्रेमी और प्रेमिका के प्रति प्रकट करने का सहज और रक्षित मार्ग इस में पाया। इस के साथ ही अंग्रेज़ी के मुक्त छंदों (Blank Verse) का प्रभाव पाकर यह और भी जटिल, अतुकान्त और दुर्बोध काव्य का सृजन करने लगा।

असीम को ससीम और अव्यक्त को व्यक्त रूप देने की कामना इतनी बलवती हो उठी कि साधारण वस्तुओं और भौतिक पदार्थों में ही कवि अपने आराध्य का दर्शन करने लगे। क्रमशः यह प्रवृत्ति छायावाद के पतन का कारण बनी। इस धारा के प्रमुख कवि पन्त, प्रसाद, महादेवी, गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय आदि माने जाते हैं। 'प्रसाद' ने 'आँसू' और 'झरना' के द्वारा 'छायावादी' कविताओं का उज्ज्वल रूप सामने प्रस्तुत किया है; उदाहरणार्थः—

"शशि मुख पर घूंघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये।"—(आँसू)

"बरसते हो तारों के फूल,
छिपे तुम नीलपटी में कौन?
उड़ रही है सौरभ की धूल,
कोकिला कैसे रहती मौन?"—(झरना)

पन्त और गुप्त की रचनायें भी इस दिशा में अच्छी बन पड़ी हैं—

"मानस की फेनिल लहरों पर
किस छवि की किरणें अज्ञात
रजत स्वर्ण में लिखतीं अविदित
तारक लोकों की शुचि बात।"

गुप्त जी अपनी 'झंकार' में कुछ ऐसा ही स्वर सन्धान करते हैं—

"तेरे घर के द्वार बहुत हैं
किस से हो कर आऊँ मैं?"

इस प्रकार छायावादी कवियों ने काव्य का एक नया रूप प्रस्तुत किया। नये उपमान, नई भाषा, नई शैली व नये अवलम्बनों की सृष्टि की और प्राचीन रूढ़िबद्ध काव्य में एक सुखदता और नवीनता का आरोप किया, किन्तु फिर भी अवलम्ब तथा आलम्बन अव्यक्त होने के कारण भक्तिकाव्य की सी तन्मयता न आ सकी। हाँ, इस नवीनता के फलस्वरूप, काव्य में वेदना और पीड़ा घनीभूत हो उठी जिस के परिणामस्वरूप 'दुःखवाद' और 'निराशावाद' का जन्म हुआ।

समय पाकर यह दुःख और निराशावाद इतना व्यापक बना कि कवि अपने असंतोष से क्षुब्ध होकर विश्व को उथल-पुथलमय देखने की कामना करने लगा—

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिस से उथल-पुथल मच जाये"—(नवीन)

इस दुःख और निराशा से सारे कवि प्रभावित हुए। जिसका कारण यह प्रतीत होता है कि इधर पिछले इतिहास के पन्द्रह वर्ष भारतवर्ष की राजनीति में बड़े व्यापक और क्रान्तिकारी रहे हैं। जीवन की प्रत्येक अवस्था पर उनका प्रभाव पड़ा है और मानव ने अपनी पराधीनता और असहायावस्था से मुक्त होने के प्रयत्नों में केवल दुःख ही प्राप्त किया है। अतः यह स्वाभाविक जान पड़ता है, जब कवि सारे संसार को दुःखमय मान लेता है। पन्त तो दुःख को आत्मा से अभिन्न मानते हुए कहते हैं:—

"दुख रे मानव आत्मा का
यह नित का मधुमय भोजन।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जग की पीड़ा का कारण वह सुख को मानते हैं—

"जग पीड़ित है अति सुख से।"

जब दुःख अधिक व्यापक हो उठता है तो मानव उस का अनुभव ही नहीं करता और उस में लीन हो, अपने आनन्द का मार्ग उसी के बीच खोजने लगता है। इस चिर दुःख से क्षणिक अवकाश पाने के लिये इस युग में 'हालावाद' का प्रसार हुआ। जगत् के द्वंद्वों से दूर रह कर, प्याले की गुलाबी में अपने आप को विस्मृत करने का गीत बच्चन ने मुखरित किया, किन्तु यह भ्रम था, पनप न सका। प्रगति और क्रान्ति के बीच पलनेवाले जीवन को मधु भुलावा न दे सका। उस ने हाला से दूर कल्पनालोक में विचरण और निवास करने की अभिलाषा प्रकट की। प्रसाद जी ने 'लहर' में इस को प्राण दिये—

"ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेमकथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे।"

पर यह स्थिति अधिक काल तक न रह सकी क्योंकि जीवन केवल कल्पना पर ही तो नहीं ठहरा है।

पिछले 'वादों' की भूमि पर पग धरता हुआ कवि कल्पना और अतीत का मोह छोड़कर वर्तमान के समीप आने लगा। जीवन की समस्यायें, रोटी और स्वाधीनता का प्रश्न, स्वामित्व और दासत्व, पूंजीपति और मजदूरों का सम्बन्ध उसको अपनी ओर खींचने लगे। छायावाद, दुःखवाद और हालावाद में उसे अपने मन के प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल पाया था। आध्यात्मिक तथ्य, तत्वचिन्तन और रहस्यमयी अनुभूतियाँ उसके मन को संतुष्ट न कर सकीं तथा उसके मन की निराशा, उसका सूनापन साकार उपासना का माध्यम न पाकर घनीभूत हो उठा था।

जीवन के इस पक्ष में उसे सत्य मिला, साकारता मिली। उसकी वाणी में नई चेतना जागी और उस ने गम्भीर स्वर में गाया—

"आओ हथकड़ियाँ तड़का दूँ, जागो रे नतशिर बंदी"
—नरेन्द्र

नवीनतम कविता ने पुरानी धाराओं को अपनाते हुए जीवन की ओर आँख उठाई। आज का कवि दुःख को भुलाना नहीं चाहता है वरन् उसके मिटाने के लिए चिन्तित है। पन्त ने 'युगान्त' इस ओर कदम उठाया है—

"सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर
मानव! तुम सब से सुन्दरतम।"

'युगवाणी' में वह और स्पष्ट है—

"जीवन के दैन्यों से जर्जर
मानव-मुख हरता मन
मूढ़ असभ्य दूषित ही
भू के उपकारक।"

यहाँ पर कवि में व्यवहारिकता और राजनीति का ज्ञान भी उन्नत है। वह मनुष्य को समानता प्रदान करने का समर्थक है:—

आदर्श समाज का चित्र खींचते हुए पन्त कहते हैं—

"श्रेणी वर्ग में मानव नहीं विभाजित
धन बल से जहाँ न जनश्रम शोषण
जहाँ दैन्य-जर्जर, अभाव पीड़ित
जीवन यापन हो न मनुज को गर्हित।"

देश-प्रेम की भावना भी इस काल में ऊँची है। सक्रिय आन्दोलन ने दिनकर, अंचल, नरेन्द्र, और भगवतीचरण वर्मा की वाणी में ओज और शक्ति भरी है। जीवन का वास्तविक और यथावत् चित्रण इनका लक्ष्य है।

दिनकर कहते हैं—

"जागरूक की जय निश्चित है
हार चुके सोनेवाले।"

तथा—"मेरे मस्तक के छत्र-मुकुट
वसु काल सर्पिणी के शतफन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ चिर कुमारिका के ललाट में
नित्य नवीन रुधिर चन्दन।"

वर्मा जी गांवों की दीन दशा से दुखी होकर कह उठे हैं—

चरमर चरमर चूँ चरर मरर
जा रही चली भैंसा गाड़ी।
उस ओर क्षितिज के कुछ आगे,
कुछ पांच कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़ों से,
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर।
पशु बन कर नर पिस रहे जहाँ,
नारियाँ जन रही हैं गुलाम,
पैदा होना बस मर जाना,
बस यह लोगों का एक काम।"

यहाँ पर आकर कविता में एक और नवीनता दिखाई देती है और वह है यथार्थ का चित्रण। यथार्थ का अर्थ है वास्तविकता, परन्तु यदि वास्तविकता का अर्थ केवल नग्नसौंदर्य और वासनात्मक चित्रण हो तब यह भी निश्चित समझना चाहिये कि इस प्रकार का साहित्य भारतीय वातावरण में नहीं पनप सकता, क्योंकि यहाँ काव्य का लक्ष्य श्रेय और प्रेममय है। इस प्रकार की कविताओं से जीवन को ऊँचा उठाने की आशा, दुराशा-मात्र है। उदाहरणार्थः—

"गोल गोल गोरी बांहों से
ग्रीवा में गलबहियाँ दी थीं।"—(सुमन)

तथा— "यह सावन की अनमोल रात,
इस प्रेरित, लोलित रति गति में,
जन झूम झमकता विसुध गात,
गोरी बांहों में कस प्रिय को,
कर दूँ चुम्बन से सुरास्नात।"
—पन्त

'यथार्थवाद' का यह आन्दोलन प्रायः 'प्रगतिवाद' का विधायक भी माना जाता है। प्रगतिवाद अपने शाब्दिक अर्थों में जीवन और युग की चेतना का इतिहास प्रस्तुत करता है, परन्तु विशुद्ध रूप से प्रगतिवाद का चित्रण प्रायः संभव नहीं हुआ है। प्रगतिवादी अधिकांश रचनायें असंतोष से पूर्ण हैं। जान पड़ता है कि इस का जन्म उन सभी वादों की विफलतास्वरूप हुआ है जो साहित्य में अपनी हीनता के कारण स्थान न पा सके। उन शवों के कंकालों पर इस ने अपना पथ बनाया। इस क्षेत्र के कवि जीवन को भानुमती का पिटारा मानकर या तो रंगीन पन्नी और सिगरेट के डिब्बे जमा करेंगे या फिर नारी का नग्न और अश्लील चित्रण।

इधर इन में एक नई चेतना और कर्त्तव्य भावना जागी है और वे वास्तव में प्रगति के दूत हैं। इन कविताओं में शोषित और प्रताड़ित मानवता का वर्णन है। संवेदना और अनुभूति का रंग भी इन में गहरा है। अंचल की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रगतिवादी कविता का एक सफल रूप हैं:—

फैला लाल धुआँ शोणित का चाक हुआ जाता दिग्मंडल;
चमक रही शमशीर नृशंसों की पीने युग का तप सम्बल,
देखो मुट्ठीभर दानों को तड़प रही कृषकों की काया
कब से सुप्त पड़ी खेतों में जागो इन्कलाब फिर आया।

पन्तजी ने प्रगतिवादी कविता के सम्बन्ध में संकेत किया है—

"खुल गये छंद के बंध, प्रास के रजत पाश
अब गीत मुक्त औ, युगवाणी बहती अयास।"

हिन्दी के आधुनिक काव्य साहित्य का निर्माता आज अतीत के खंडहरों से अलग हट रहा है। साहित्य ने नवीन शैलियों और कलाकारों के द्वारा निर्मित काव्यों में नया रूप पाया है, जिस में उस की धारा मुक्त और प्रवाहमयी हो गई है। रीति युग का कूड़ा करकट साफ करके आज का साहित्यकार नवीन और प्रेरक साहित्य के सृजन में तन्मय है, जो जीवन को गीत और युग को चेतना प्रदान करने में समर्थ हो सके। आज स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साहित्यिक का दायित्व और बढ़ गया है। वह कला को सत्यं-शिवं-सुन्दरम् बनाने में प्रयत्नशील और मग्न है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन में भारतीय पण्डित

श्री सुमन वात्स्यायन

भारत और चीन दोनों ही बहुत प्राचीन देश हैं। दोनों की सभ्यता का इतिहास बहुत पुराना है। प्रारंभिक काल से ही इन दोनों महान् देशों में परस्पर विचारों का आदान-प्रदान होता रहा है। अक्सर पड़ौसी देशों में लड़ाई-झगड़ा होते देखा जाता है, परन्तु भारत और चीन सदा से दो सगे भाइयों की तरह स्नेह से रहते आये हैं। अगर स्वार्थ-लोलुप योरोपीय साम्राज्यवादियों के पाश से हम मुक्त रहे तो कोई कारण नहीं कि आगे भी इन दो महान् राष्ट्रों में किसी तरह का मतभेद हो और पारस्परिक भाइचारे में बाधा पड़े।

प्राचीन भारत आज की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक महत्व रखता था। राजदूत और व्यापारियों के साथ साथ भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रचारक भी हजारों की संख्या में तात्कालीन ज्ञात-जगत में जाते रहे। जिन देशों की राजनीतिक प्रभुता भारतीय व्यापारियों के हाथों में थी वहां तो ये प्रचारक गये ही, किन्तु जिन देशों से व्यापार भर होता था, वहाँ भी इन का जाना आवश्यक था। आज भी एशियायी देशों में यूरोप के समस्त उद्योगप्रधान देशों के ईसाई धर्म-प्रचारक (Missionaries) महात्मा ईसा का "सच्चा मार्ग" दिखाने में तत्पर हैं। साम्यवादी सरकार से पूर्व चीन में भी अमेरिकन और अंग्रेज़ी धर्म-प्रचारक वहाँ के निवासियों को "सभ्यता का पाठ" पढ़ाते रहे हैं। यद्यपि भारतीय प्रचारकों का सोलह आने वही उद्देश्य नहीं था जो योरोपीय प्रचारकों का एशिया और अफ्रीका में गत कुछ शताब्दियों में रहा है; परन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपने प्रचारकों के कारण भारतीय व्यापारियों को अन्य देशों के शोषण में काफी सुविधाएँ मिलती थीं। यही कारण था कि भारतीय व्यापारी अपने प्रचारकों की सहायता जी खोलकर करते थे।

सांस्कृतिक प्रसार की भावना भारतीयों में ईसा से पूर्व लगभग एक हजार वर्ष से लेकर मुसलमानों के भारत में अच्छी तरह पैर जमने तक काम करती रही। भगवान् बुद्ध की वाणी ने भारतीय तरुणों को इस दिशा में आगे बढ़ने के लिये सब से अधिक प्रेरणा दी। हजारों युवकों ने सदियों तक भारत से बाहर रह कर दूर दूर तक भारतीय धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला और ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न अंगों का प्रचार करते हुए अपने कुटुम्ब परिवार और मातृभूमि से दूर देशों में अपना जीवन उत्सर्ग किया। आगे इन्हीं आत्मबलिदानियों में से कुछ की चर्चा की जायेगी।

आचार्य काश्यप मातंग

आचार्य काश्यप मातंग मध्य देश के रहनेवाले थे। चूंकि चीन जानेवाले भारतीय पंडितों में ये सर्वप्रथम थे, इसलिये इन के विषय में हमें बहुत कम जानकारी मिलती है। कहा जाता है कि ये धर्म-प्रचार के लिये पहले दक्षिण भारत गये और फिर अपने मित्र धर्मरत्न के साथ स्थल मार्ग से चीन चले गये। आचार्य काश्यप संस्कृत भाषा और बौद्ध धर्म के प्रकांड पंडित थे। इन के चीन पहुँचने की कथा बड़ी मजेदार है।

चीन का सम्राट् मिङ्-ती (५८-७५ ई०) ने एक बार स्वप्न में देखा कि एक १६ फीट ऊँचा स्वर्ण-निर्मित मनुष्य आकाश मार्ग से उस के राजमहल पर उतरा है। सम्राट् इसका कोई अर्थ नहीं समझ सके। उन्होंने अपने दरबारियों से इस आश्चर्यजनक स्वप्न का मतलब पूछा। एक ने बताया कि वह स्वर्गनिर्मित मनुष्य बुद्ध कहे जाने वाले पश्चिम (भारत) के महात्मा थे। सम्राट् मिङ्-ती इस स्वप्न से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने सेनापति त्साई-यिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दीवान वाङ्-त्सुआन को बौद्ध धर्मग्रन्थ और भारतीय पंडितों को लाने के लिये सदलबल भारत भेजा।

सम्राट् मिङ्-ती का दूतमंडल जब (६४ ई० में) खोतान पहुँचा तो वहाँ उसे दो भारतीय पंडित चीन की ओर जाते हुए मिले। ये ही दोनों काश्यप मातंग और धर्मरत्न थे। चीनी राजदूत को इन से पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि ये दोनों बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिये 'पूर्वी देश' (चीन) जा रहे हैं। यह जानकर राजदूत बहुत प्रसन्न हुआ और इन भारतीय पंडितों के साथ वह चीन वापस आ गया। चीनी सम्राट् इन पंडितों को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस ने राजधानी लो-याङ् में ही इन के लिये एक मठ बनवा दिया। भारतीय पंडित अपने साथ अनेक संस्कृत ग्रन्थ और मूर्तियाँ सफेद घोड़ों पर लाद कर चीन लाये थे, इसलिये इन के निमित्त निर्मित मठ का नाम भी "श्वेताश्वविहार" ही पड़ा। चीन का यह सब से पहला भरतीय मठ है और आज भी हुनान प्रान्त के लो-यांङ् शहर के बाहर अपूर्व सज-धज के साथ कायम है।

आचार्य काश्यप मातंग और धर्मरत्न ने किसी विशेष भारतीय ग्रन्थ का चीनी में अनुवाद शायद नहीं किया। इन्हें यद्यपि अनेक संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद का श्रेय प्राप्त है, परन्तु आज कल इन की केवल एक ही पुस्तक मिलती है और इसे हम संग्रह या संकलन कहें तो अधिक अच्छा रहेगा। इस पुस्तक का नाम है "बयालीस अध्याय का सूत्र।" संस्कृत या पाली में अब तक इस पुस्तक का मूल नहीं मिला है।

आचार्य काश्यप मातंग का "बयालीस अध्याय का सूत्र" उस समय की चीनी जनता के मनोनुकूल ही था। प्रो० तानयून-शान ने लिखा है, "चीनी भाषा के प्राचीन ग्रन्थों के साथ इस पुस्तक का पूरा मेल था। अगर 'भगवान् ने कहा' शब्द निकाल दें तो पाठक उसे सिर्फ बौद्धधर्म की ही पुस्तक नहीं समझेगा। यह पुस्तक चीनी प्रकृति को ध्यान में रख कर तैयार की गई मालूम पड़ती है। दो हजार वर्ष गुजर चुके हैं फिर भी चीनी जनता इस ग्रन्थ का पारायण करती आ रही है।"

आचार्य काश्यप मातंग और धर्मरत्न के बाद जो भारतीय पंडितों का चीन जाना शुरू हुआ सो ग्यारहवीं सदी तक जारी रहा। स्थल और जल—दोनों ही रास्तों का उपयोग किया गया। हजारों भारतीय ग्रन्थों को प्रचारक अपने सिर पर या घोड़ों पर लाद कर चीन पहुँचाते रहे चीनी भाषा संसार की कठिन भाषाओं में से एक है। पर इन भारतीय पंडितों ने उसे सीख कर भरतीय साहित्य के विभिन्न अंगों का चीनी अनुवाद तैयार किया। समस्त चीनी जनता को संस्कृत पढ़ाना संभव नहीं था, इसलिये उन्हीं की भाषा में अपनी बात कही। वास्तव में आचार्य काश्यप मातंग और उन का प्रिय मित्र एवं सहयोगी धर्मरत्न भारतीय संस्कृति के आकाश में सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं।

आचार्य कुमारजीव

आचार्य कुमारजीव के विषय में चीनी स्रोतों से हमें काफी जानकारी मिलती है। उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों द्वारा चीनी भाषा की अभूतपूर्व सेवा की थी। इसलिये चीनी भाषा में उन का जीवन-चरित्र मिलना स्वाभाविक ही है। कुमारजीव के पिता कुमारायण का वंश किसी भारतीय राजा का मंत्रिपद सुशोभित करता आ रहा था। कुमारायण घुमक्कड़ स्वभाव के थे; इसलिये अपना देश छोड़ कर घूमते-फिरते पामीर के अत्यन्त कठिन और भयानक पठार को पार कर कूचा पहुँचे। कुछ ही समय में वे अपने गुणों के कारण इतने प्रसिद्ध हुए कि कूचा के राजा ने उन्हें अपना राजगुरु बना लिया। कूचा के राजा की बहन जीवा बड़ी विद्यानुरागिणी थी। धीरे धीरे कुमारायण के प्रति उस का आकर्षण बढ़ा और यह प्रेम में परिणत होगया। अन्त में दोनों का विवाह हुआ। इसी दम्पति के प्रतिभाशाली पुत्र थे कुमारजीव। कहते हैं, पुत्रोत्पत्ति के कुछ दिनों बाद ही जीवा भिक्षुणी बन सात्विक जीवन व्यतीत करने लगी।

जीवा भगवान् तथागत की अनन्य उपासिका थी। उसे विद्या से बहुत प्रेम था। वह चाहती थी कि उस का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र एक पंडित बने । इसलिये बचपन से ही उस ने अपने पुत्र की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था रखी । जब कुमारजीव कुछ बड़े हुए तो जीवा उन्हें अच्छी शिक्षा दिलाने के विचार से काश्मीर ले आई । काश्मीर उन दिनों विद्या का बहुत बड़ा केन्द्र था । कुछ वर्षों तक वे वहीं रह कर अध्ययन करते रहे । शिक्षण समाप्त कर अपनी माता के साथ कुमारजीव कूचा लौट आये ।

बहुत थोड़े समय में ही कुमारजीव की प्रतिभा और गहरे अध्ययन की प्रसिद्धि कूचा के बाहर भी फैलने लगी । पूर्वी तुर्किस्तान, खोतान, काशगर, यारकंद आदि प्रदेशों से लोग अपनी ज्ञानपिपासा मिटाने के लिए कूचा आने लगे । किन्तु कुमारजीव बहुत समय तक वहाँ शान्ति से नहीं रह सके। कूचा चीन के व्यापारिक मार्ग पर पड़ता था । छोटा होते हुए भी देश धनधान्यपूर्ण था । चीन सदा इस देश को अपने अधीन रखने का प्रयत्न करता था । जिन दिनों कुमारजीव के नेतृत्व में कूचा मध्य-एशिया में विद्या का एक महान् केन्द्र बन रहा था, उन्हीं दिनों चीन के राजा ने एक बड़ी सेना भेज कर उस पर हमला कर दिया । शक्तिशाली शत्रु के सामने कूचा को हार खानी पड़ी । कुमारजीव बन्दी बना कर ३८३ ई० में चीन ले जाये गये । जब ये कूचा ही में थे तभी इन की विद्वत्ता की ख्याति चीन पहुँच चुकी थी । इसलिये थोड़े समय के बाद ही चीन सम्राट् ने इन्हें राजगुरु का उच्चपद प्रदान किया ।

यद्यपि कुमारजीव की मातृभाषा न संस्कृत थी और न चीनी, फिर भी वंश-परम्परा और शिक्षा के कारण वे संस्कृत के तो पंडित थे ही, कूचा उन का कार्यक्षेत्र होने से चीनी भाषा की साहित्यिक शैली से भी वे पूर्णतया परिचित होगये । चीनियों के लिये साहित्य में शैली का सौष्ठव और भाषा की प्राञ्जलता का बड़ा महत्व है । कुमारजीव से पूर्व अनूदित ग्रन्थों में सुन्दर शैली और कलात्मक भाव-प्रकाशन की उपेक्षा की गई थी । कुमारजीव इस की उपेक्षा नहीं कर सके और उन्होंने अपने पूर्व अनूदित ग्रन्थों का फिर से संशोधन और संपादन किया ।

कहते हैं, कुमारजीव की देखरेख में आठ सौ विद्वान् कार्य करते थे । कभी कभी सम्राट् स्वयं इन विद्वानों के सम्मेलन में उपस्थित होते थे । कुमारजीव द्वारा अनूदित ग्रन्थों की संख्या १०६ थी, जिन में से आज केवल ५६ ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं, शेष समय कि लम्बी दौड़ में नष्ट हो चुके हैं । कुमारजीव के पहले महायान के अन्यतम आचार्य नागार्जुन और आर्यदेव के ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद नहीं हुआ था । यह काम कुमारजीव ने ही पूरा किया । चीनी जनता को सब से अधिक आकर्षित करने वाले प्रज्ञापारमिता-साहित्य का भी चीनी अनुवाद इन्होंने प्रस्तुत किया । 'बुद्धचर' महाकाव्य के रचयिता अश्वघोष और महान् दार्शनिक एवं विचारक नागर्जुन तथा आर्यदेव का जीवनचरित्र कुमारजीव ने चीनी भाषा में लिखा । संभव है ये ग्रन्थ मूलतः संस्कृत में हों । कुमारजीव ने अपने बाद भी अपने साहित्यिक एवं धर्म-प्रचार के कार्य को जारी रखने के लिये चीनी और विदेशी विद्वानों की एक मंडली तैयार की । यद्यपि अपने जीवनकाल में ही उन्होंने प्रमुख संस्कृत-बौद्ध साहित्य का चीनी रूपान्तर देख लिया था, फिर भी उन के निर्वाण के पश्चात् भी सैंकड़ों संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में उन की शिष्य-परम्परा द्वारा अनुवाद होता रहा ।

आचार्य कुमारजीव ने अपने साहित्यिक कार्यों के अतिरिक्त एक और क्षेत्र में भी बड़ी सफलता पाई । चीन में अब तक भारतीय धर्म और संस्कृति को विदेशी मानकर घृणा करनेवालों की कमी नहीं थी । किन्तु कुमारजीव के उच्च व्यक्तित्व, प्रकाण्ड पाण्डित्य और निर्मल जीवन ने चीनी जनता को भारतीय ज्ञान-विज्ञान का अनन्य उपासक बना दिया । भारतीय धर्म और सभ्यता अब इने-गिने लोगों तक ही सीमित नहीं रही । कुमारजीव ने उसे झोपड़ी से लेकर महल तक पहुँचाने का प्रयत्न किया ।

सन् ४१३ ई० में बृहत्तर भारत के महान् पर्यटक तथा भारतीय ज्ञान-विज्ञान के इस अनन्य प्रचारक ने चीन में ही अपना शरीर-त्याग किया । जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, "मेरे कार्य को ग्रहण करो । मेरे जीवन को ही आदर्श मत स्वीकार करो । कमल कीचड़ में ही पैदा होता है । कमल को प्यार करो, कीचड़ को नहीं ।"

[क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

तहसीलदार

श्री विनायकराव विद्यालंकार

यह किस्सा आज से चालीस वर्ष पूर्व का है। उस समय के लोग निराले थे। गरीबों और अमीरों के कपड़ों में, रहन-सहन में, खाने-पीने में और बोल-चाल में बहुत अन्तर था; किन्तु एक दूसरे के लिये उन दिनों सहानुभूति रहा करती थी। शिक्षितों और अशिक्षितों में उस समय वही अन्तर था जो कि पहाड़ों की ऊंची चोटियों और नीचे की समतल भूमि में हो सकता है। अशिक्षित बहुत थे, शिक्षित बहुत कम थे, किन्तु शिक्षित अशिक्षितों की उपेक्षा नहीं किया करते थे। उन दिनों राज्याधिकारी और प्रजा में सेव्य-सेवक का सम्बन्ध था। अधिकारी स्वतः को स्वर्ग से उतरे हुए इन्द्र के प्रतिनिधि समझते थे और प्रजा भी उन्हें देवता मान कर पूजती थी। परन्तु कभी दोनों में ईर्ष्या, द्वेष या घृणा की भावना का आविर्भाव नहीं होता था। कारण उस समय अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य, तथा कर्तव्या-कर्तव्य की समयानुसार कुछ भावनाएँ थीं और लोग भी उसी के अनुसार आचरण करते थे। सच पूछा जाय तो भारतवर्ष में वह समय पुरानी और नई सभ्यताओं के लिये संध्या का समय था। रानी विक्टोरिया का शासन-काल समाप्त हो चुका था। किंग जार्ज अभी सिंहासन पर आरूढ़ नहीं हुए थे। ये दिन वे थे जब कुछ वर्षों के लिये भारत के सम्राट् किंग एडवर्ड बने थे। नई सभ्यता का प्रादुर्भाव हो रहा था और पुरानी सभ्यता उस के सम्मुख घुटने टेकती-सी नजर आ रही थी। विलायत से पढ़ कर बहुत से बैरिस्टर, आई. सी. एस. और दूसरे विद्वान् नये-नये विचारों को प्रथम बार भारत में फैला रहे थे जिसके कारण भारतीयों के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन प्रारम्भ हो चुका था। इसका एक उदाहरण आज से चालीस वर्ष पूर्व मनमाड से हैदराबाद जाती हुई गाड़ी के एक फर्स्ट क्लास के डिब्बे में उग्ररूप में दिखाई दे रहा था।

गाड़ी मिट्टूगुड़ा स्टेशन पर खड़ी थी। फर्स्ट क्लास के एक डिब्बे में एक नवयुवक बैरिस्टर एक अंग्रेज़ी मासिक हाथ में लिये कभी पढ़ता था तो कभी उसी से पंखे का भी काम ले लेता था। मुख में एक लम्बी चुरुट थी जिसकी ठहर ठहर कर निकलती हुई धुएँ की धारा उसके आन्तरिक उतावलेपन का प्रदर्शन कर रही थी। वह बार बार अपनी बास्कट की जेब से घड़ी निकाल कर देखता और फिर घड़ी जेब में रख लेता था। आखिरकार वह अपने डिब्बे से बाहिर निकला और छड़ी का आसरा-सा लेता हुआ स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँचा। वहाँ गाड़ी का गार्ड भी बैठा हुआ था।

"क्या कारण है, गाड़ी पन्द्रह मिनिट लेट है? और आप उसे छोड़ने का विचार करते भी प्रतीत नहीं होते?" बैरिस्टर साहब ने गार्ड से पूछा।

गार्ड ने कोई उत्तर नहीं दिया केवल स्टेशन-मास्टर की तरफ देख कर इस भाव को प्रकट किया कि गाड़ी इनकी आज्ञा के बिना आगे नहीं बढ़ सकती। अलबत्ता स्टेशन मास्टर ने, जो कि गाड़ी खड़ा करने का महत्व पूर्णतया जानता था, बैरिस्टर साहब को समझाने का प्रयत्न किया।

"अभी अभी सूचना प्राप्त हुई है कि मिट्टूगुड़ा के तहसीलदार हैदराबाद जाने वाले हैं, उन की प्रतीक्षा है। उन के आने तक गाड़ी खड़ी रहेगी।"

"व्हॉट नॉन सेन्स!" बैरिस्टर साहब ने गरजते हुए कहा, "आप को चाहिए कि आप गाड़ी समय पर छोड़ दें। तहसीलदार तो क्या उस से भी किसी बड़े अधिकारी के लिये ट्रेन लेट नहीं की जा सकती। आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं समझते कि गाड़ी लेट होने से दूसरों को किस तरह तकलीफ होती है। हमें हैदराबाद जल्दी पहुँचना है। आप गाड़ी शीघ्र छोड़िये।"

उस समय के कर्मचारी समय के महत्व से अनभिज्ञ थे। वे अंग्रेजी पोशाक से घबराते थे, किन्तु तहसीलदार के लिबास से आतंकित होते थे। नासमझी, घबराहट और आतंक की विविध भावनाओं से विक्षुब्ध स्टेशन मास्टर सिवाय इस के कुछ उत्तर न दे सका कि "अभी आते ही होंगे। यह लीजिये आ ही गये। उन के म्याने के धीवरों की आवाज आ रही है। कुछ ही देर में आजायेंगे। आप अपने डिब्बे में बैठ जाइये। अभी गाड़ी छुड़वा देता हूँ।"

यह वादविवाद चल ही रहा था कि छः धीवरों के कंधों पर लदा हुआ तहसीलदार का म्याना सीधा उस फर्स्ट क्लास के डिब्बे के सामने पहुँच गया, जिस में से अभी अभी बैरिस्टर साहब उतरे थे। उनके पीछे कपड़ों से भरे हुए चार सन्दूक, मोटे मोटे तीन बिछौने, फलों से भरे दो टोकरे, एक तोबादान, एक टूटीदार लोटा, एक मुर्गियों की छाबड़ी और एक हुक्का भी था। यह सारा सामान अन्दर रखा ही जा रहा था कि बैरिस्टर साहब दौड़ते हुए अपने डिब्बे के समीप आकर हमालों से कहने लगे—

"यह डिब्बा रिजर्व है। इस में आप लोग दूसरों का सामान नहीं रख सकते।"

"हमें कुछ मालूम नहीं, सरकार की आज्ञा है। आप की कोई तकरार हो तो उन से कहो।" हमालों ने उत्तर देते हुए अपना काम जारी रखा।

"यह क्या बात है!" बैरिस्टर साहब ने तहसीलदार से कहा, "आप देखते हैं कि डिब्बे पर रिजर्व का लेबल है और फिर भी आप अपना सामान इस में रखवा रहे हैं। यह बात ठीक नहीं है। आप अभी से दूसरी तरफ बैठ जाइये, अन्यथा आप को अगले स्टेशन पर उतरना पड़ेगा।"

"बड़ा आया उतारनेवाला।" तहसीलदार ने कहा, "कहना है डिब्बा रिजर्व है, होगा किसी ऐरे-गैरे के मुकाबले में, क्या तहसीलदार के मुकाबले में भी डिब्बा रिजर्व करने का किसी को अधिकार है?" फिर हमालों को सम्बोधित करते हुए उस ने कहा—"चलो जल्दी करो, रखो सब सामान, गाड़ी को देर हो रही है।"

"मैं कहता हूँ आप को इस डिब्बे में बैठने का अधिकार नहीं है।" बैरिस्टर साहब ने बड़े आवेशपूर्ण शब्दों में जताया।

"कौन कहता है कि हमें बैठने का अधिकार नहीं है। जैसे कि हम ने टिकट ही नहीं लिया हो।" यह कहते हुए तहसीलदार ने अपनी शेरवानी की जेब में से टिकट निकाला और उसको बताते हुए अपना कथन जारी रखा। "यह देखो, हमारे पास भी टिकट है और हमें भी गाड़ी में बैठने का उतना ही अधिकार है जितना तुम्हें है।"

टिकट देखना ही था कि बैरिस्टर साहब का खून खौल उठा। यह टिकट सैकन्ड क्लास का था और तहसीलदार बैठ रहे थे फर्स्ट क्लास में।

धीरे धीरे सारा सामान धरा जा चुका था। तहसीलदार डिब्बे में चढ़ चुके थे। और उन के दो चपरासी दोनों दरवाजों पर खड़े थे। बैरिस्टर साहब ने उनसे तकरार करना बेसमझी की बात जान कर दूर खड़े हुए स्टेशन मास्टर और गार्ड से ही शिकायत करना उचित समझा। बैरिस्टर ने उन दोनों की तरफ रुख किया। दोनों ताड़ गये कि बैरिस्टर साहब उनकी तरफ क्यों आ रहे हैं। उनको ज्ञात था कि तहसीलदार का टिकट दूसरे दर्जे का है। साथ ही वे यह भी जानते थे कि न तो वे बैरिस्टर साहब की मांग पूरी कर सकते हैं और न तहसीलदार को, जिसके पास दूसरे दर्जे का टिकट है, पहले दर्जे से उतार सकते हैं। अपनी निर्बलता को अनुभव करते हुए दोनों एक दूसरे से अलग हो गये। गार्ड ने गाड़ी के पिछले डिब्बे की तरफ रुख किया और स्टेशन मास्टर दौड़ता हुआ इंजिन की तरफ चल दिया। जाते जाते बैरिस्टर साहब की तरफ मुँह फिराते हुए कहता गया—

"डिब्बे में चढ़िये, गाड़ी चल रही है।"

बैरिस्टर साहब विचार ही कर रहे थे कि किधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाऊँ—गार्ड की तरफ या स्टेशन मास्टर की तरफ—कि इतने में गार्ड ने सीटी बजा दी और मास्टर ने हरी झण्डी फहरा दी। इंजिन का भोंगा भी जोर से बज उठा। बैरिस्टर साहब के लिए सिवाय इसके कोई चारा नहीं रहा कि वे शीघ्रता से डिब्बे में घुस जायँ।

डिब्बे में चढ़ने के बाद बैरिस्टर साहब के सम्मुख एक दूसरा प्रश्न उपस्थित हो गया। एक सीट पर तहसीलदार खुद बैठे हुए थे और उनके दोनों ओर दो बड़े बड़े बिछौने पड़े हुए थे, दूसरी सीट पर चारों सन्दूक थे और उन पर तीसरा बिछौना था। बैरिस्टर साहब के बैठने के लिए कोई स्थान खाली नहीं था। डिब्बे के बीच तहसीलदार के दोनों नौकर बचे हुए सामान को इधर से उधर और उधर से इधर करते हुए गड़बड़ मचा रहे थे। बैरिस्टर साहब ने देखा कि अब तहसीलदार से डाँट डपट करने का मौका नहीं है। इसलिए वे एक तरफ डिब्बे की दीवार से पीठ लगाये चुरुट का धुआँ खींचते हुए चुपचाप एक योगी की दृष्टि से इस मायाजाल को देख रहे थे और सोच रहे थे कि इससे अलिप्त रहने में ही सुख है, इस में फँसने में दुःख है। बैरिस्टर साहब की इस अवस्था को देख कर तहसीलदार को तरस आया। उस ने बड़े ही सौजन्य से कहा—

"मियां, खड़े क्यों हो; बैठ जाओ न!" जैसे यह तो डिब्बे का मालिक है और बैरिस्टर साहब पर कृपा दृष्टि कर रहा है।

इतने में तहसीलदार ने देखा कि दूसरी सीट तो सामान से भरी पड़ी है और बैरिस्टर साहब के बैठने के लिये कोई स्थान ही नहीं है। वे तुरन्त अपनी सीट से उठ खड़े हुए और कहने लगे—

"मियां! लो, यहाँ बैठो। मैं दूसरी तरफ बैठता हूँ।" इतना कहते हुए उन्होंने अपने नौकरों से बाजू की सीट खाली करने को कहा और बैरिस्टर साहब को दोनों कन्धों से पकड़ कर अपनी सीट पर दबा मारा। यह बात उन दिनों के विनयानुसार थी। सीट खाली हो जाने पर दूसरी तरफ वे खुद बैठ गये।

× × ×

गाड़ी तेज़ी के साथ आगे बढ़ रही थी। बैरिस्टर साहब का मुख खिड़की के बाहर था। तहसीलदार सीट के बीचोंबीच दोनों हाथ सीट की पीठ पर पसारे बैठे हुए थे। अपने साथी यात्री की तरफ देखते हुए वह सोच रहे थे कि इससे क्यों कर बातचीत प्रारम्भ की जाय।

"मियां! कहां से आ रहे हो?" तहसीलदार ने पूछा।

"लखनऊ से।" खिड़की से गर्दन घुमा कर बैरिस्टर ने उत्तर दिया और अपना मुख खिड़की के बाहर कर लिया।

"क्या करते हो मियां, लखनऊ में?" तहसीलदार ने फिर पूछा।

इस समय बैरिस्टर साहब ने अपनी गर्दन नहीं मोड़ी। वे तो पहिले प्रश्न पर ही तंग आ गये थे और ऐसे गँवार से, जो बिना पहचानत के बातचीत जारी रखना चाहता हो, बात करना नहीं चाहते थे।

"वह तो बड़ा नगर है। ऐतिहासिक नगर है। नवाबों और जमींदारों का नगर है। आपकी भी जमींदारी होगी, तभी तो सैर के लिये इधर निकले हो?" तहसीलदार ने अपनी बौछार जारी रखी।

न जाने बैरिस्टर साहेब को जमींदार का उपपद क्यों अखरा, वे उसको सुन कर चुप न रह सके और कह उठे—

"नहीं।"

तहसीलदार ने देखा किला डसक रहा है। दो चार और हल्ले हुए कि इस सूट बूट वाले व्यक्ति का मुँह निश्चय ही उन की तरफ फिर जायेगा। वे पुराने जमाने के व्यक्ति थे और रेल के डिब्बे में, जब कि उन के साथ कोई दूसरा व्यक्ति बैठा हो, चुपचाप बैठ नहीं सकते थे।

"डाग्दर हो?" तहसीलदार ने पूछा।

"नहीं।"

"सरकारी ओहदेदार हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं।"

"फिर क्या कोई व्यापार धंधा करते हो या किसी कम्पनी के एजेण्ट हो?"

"नहीं।" एक ही शब्द में बैरिस्टर साहब ने अपना उत्तर दोहराया।

"अजी, बोलो तो सही; दुनिया में आकर फिर क्या करते हो? कहीं कालेज में परफेसर वरफेसर तो नहीं हो, जो छुट्टियों में हैदराबाद की सैर के लिये निकले हो?"

"नहीं।" फिर वही एक शब्द में उत्तर।

बैरिस्टर साहब सोच रहे थे कि इस बूढ़े को मैं कौन हूँ, क्या करता हूँ, कहां रहता हूँ, इससे क्या मतलब। मैं, मैं हूँ। और वह, वह है। भला आदमी चुप क्यों नहीं बैठता, समझ नहीं आता। परन्तु तहसीलदार थे पुरानी पीढ़ी के। उस की पीढ़ी के दो व्यक्ति जहां बैठे वहीं उन में आत्मीयता उत्पन्न हो जाती थी। दस ही मिनिट में दोनों एक दूसरे के बाल-बच्चों, चचा-भतीजों और बहिन-भाइयों से परिचित हो जाते थे। कभी कभी तो चार-पाँच पीढ़ी ऊपर निकल गये तो उन के पुराने सम्बन्धी होने का भी पता लग जाता था। फिर यदि किसी के घर नौजवान छोकरा हो और दूसरे के घर विवाह के योग्य पुत्री हो तो यों ही एक ही बैठक में मंगनी भी हो जाती थी। परन्तु आज तहसीलदार को बड़े ही खूसट से पाला पड़ा था, जो कि 'नहीं' के सिवाय कोई जवाब ही नहीं जानता था। तब तो तहसीलदार ने एक दूसरा पैंतरा सोचा। दिन के बारह बज चुके थे। भोजन का समय हो चुका था। तहसीलदार ने डिब्बे के फर्श पर दो सन्दूकों को जमाकर उस पर दस्तरखान बिछवाया और तोषेदान में से एक एक तश्तरी दस्तरखान पर जमाकर कहा—

"अजी वकील साहब, आईये! बिस्मिल्लाह! खाना हाज़िर है, नोश फरमाईये।"

"वकील साहब!" यह सम्बोधन सुनते ही बैरिस्टर चौंक कर उठ खड़े हुए और बोले—

"आपने कैसे जाना मैं वकील हूँ।"

"अजी मियां! जो ज़मीदार नहीं, परफेसर नहीं, ओहेदेदार नहीं, डाग्दर नहीं और फिर भी सूट बूट पहन सकता है तो वह वकील नहीं तो क्या हो सकता है। 'जिसका कोई धन्धा नहीं उस का धन्धा वकीली,' हमारे यहां की कहावत है।"

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

"हाँ, तो बैठिये; शुरु कीजिये।" तहसीलदार ने आग्रह किया।

दस्तरखान पर दो बड़ी तश्तरियों में पुलाव व कबाब के ढेर थे। दोनों के बीच एक तश्तरी में रोटियां थीं। यह तश्तरी भिन्न भिन्न सालनों की चार तश्तरियों से घिरी हुई थी। सालनों की तश्तरियों के बीच बीच कटोरियाँ थीं। दस्तरखान के दो अडकोनों पर बादाम और पिस्ते की मिठाई और दूसरे दो कोनों पर खीर से भरे दो प्याले थे। कबाब, पुलाव और सालनों की महक, चटनियों की चहक, वर्कदार मिठाइयों की चमक, घी से चुपड़ी रोटियों की दमक और खीर से भरे कटोरों की लपक ने बैरिस्टर साहब का मन लुभा लिया।

"अच्छा, आप का इतना आग्रह है; तो दो निवाले आपके साथ खा ही लेता हूँ।" बैरिस्टर साहब ने कहा और दस्तरखान की तरफ मुँह करके बैठ गये।

"हां! हां! मियां! जरूर खाओ। इस से बढ़ कर किसी पर क्या उपकार हो सकता है कि उसको मेज़मान-दारी का मान दिया जाय। मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूँ।" आज से चालीस वर्ष पूर्व बुढ़ापा पाए हुए तहसीलदार ने विनीत भाव से बैरिस्टर से कहा—"लो, यह पुलाव लो; बड़ा मजेदार है। यह सालन, इसके साथ जो भी आप को पसन्द हो; मगर मियां! हां! अभी से कहे देता हूँ, मिठाई के लिये पेट में स्थान रखना। घर की बनी हुई है। तुम्हारी चची के हाथ की। और खीर! बस पूछो मत, उसके लिये भी पेट में गुंजायश रख ही लेना।"

दोनों ने एक एक पदार्थ खाना प्रारम्भ किया।

"हां! तो आप लखनऊ में वकीली करते हैं! हम ने भी वकीली की परीक्षा पास की थी। परन्तु वह उर्दू में थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तो बहुत से वकील बम्बई व कलकत्ता जाकर अंग्रेजी में परीक्षा पास करते हैं। आपने अपनी परीक्षा कहां पास की है ?" खाते खाते तहसीलदार ने पूछा।

"मैंने यह परीक्षा लन्दन में पास की है।" बैरिस्टर ने उत्तर दिया।

"ओह, ओ! तब तो आप बैरिस्टर हैं। बहुत पैसा खर्च किया होगा। हमारे यहां भी दो चार बैरिस्टर हैं। मगर खर्च के माफ़क कमाते नहीं। आपकी तो बैरिस्टरी अच्छी चल रही होगी ?"

"चलती है, गिरते पड़ते चार पांच सौ महीना कमा लेता हूँ।"

"आप से तो हमारे यहां के तहसीलदार अच्छे रहे, जिनकी आमदनी एक हज़ार महीना से कम कभी होती ही नहीं। बीच-बीच कभी कभी साल में दो चार बार चार-चार, पांच-पांच हजार हाथ लग ही जाते हैं।" तहसीलदार ने उत्तर दिया।

"ऐसा क्यों ? आप के यहां तहसीलदारों का कोई निश्चित वेतन नहीं है ?" फिर बैरिस्टर साहब ने पूछा।

"अरे मियाँ! क्या कहते हो! वेतन तो भोजन को बस नहीं होता। फिर कपड़े हैं, बच्चों की पढ़ाई है, नौकरों की तनख्वाह है, शादी-ब्याह है, घोड़ा-गाड़ी है, यह सारा खर्च तो ऊपर से निकालना पड़ता है।" उस ज़माने की साफ़दिली के साथ तहसीलदार ने अपना सारा हाल खोल दिया। "अच्छा, यह तो कहो हैदराबाद कैसे तशरीफ़ लाये हो ?"

इस प्रश्न ने बैरिस्टर साहब को थोड़ा-सा चक्कर में डाल दिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे सही बताने में हिचकिचाते थे और झूठ बोलना नहीं चाहते थे। थोड़ी देर विचार करने के बाद उन्होंने कहा—

"कुछ नहीं, नौकरी की तलाश में आया हूँ। यदि कोई नौकरी मिल गई तो यहीं रह जाऊँगा।"

"नौकरी की तलाश में बड़ी दूर आये मियाँ! कोई पहचानत ? किसी की सिफ़ारिश ? कहीं का वसीला ? कुछ लाये हो ?"

"नहीं, मेरी यहां न तो किसी से पहचानत है और न किसी की सिफ़ारिश ही लाया हूँ। मुझे किसीका वसीला भी नहीं है।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

"तो फिर केवल बैरिस्टरी के भरें पर चले आ रहे हो ? यदि बैरिस्टरी पर ही नौकरी मिलनी होती तो वहीं लखनऊ में न मिल जाती। यहां तक आने की क्या ज़रूरत थी ?" थोड़ी देर ठहर कर पानी का एक गिलास पीने के बाद तहसीलदार ने अपना कथन जारी रखा। "चलो अच्छा ही हुआ, आपकी मेरे साथ मुलाकात हो गई। बोलो, तहसीलदारी करोगे ?"

"कर लूँगा, यदि वेतन पर्याप्त हो। यहाँ तहसीलदार को क्या मिलता है ? हमारी तरफ़ ढाई सौ रुपये मासिक वेतन है।"

"वेतन! वेतन! वेतन! फिर वही बात। अरे, वेतन में क्या धरा है।" स्वतः की तरफ़ इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "तहसीलदार को देखो और फिर सोचो तहसीलदार होना है या नहीं। इसके लिये उसका खाना देखो, उसका सामान देखो, ज़रा विचार करो उस म्याने का जिसमें मैं आया था, ज़रा सोचो उन नौकरों की संख्या को जो मेरे साथ थे, ज़रा दृष्टिपात करो उस भीड़ पर जो मुझे छोड़ने आई थी, ज़रा याद करो उस बात को जब मैं तुम्हारे डिब्बे में बावजूद रिज़र्व होने के चढ़ पड़ा, तो न तो गार्ड की, न स्टेशन मास्टर की हिम्मत हुई कि वह तहसीलदार को उतार सके। यह होती है तहसीलदार की शान, यह होता है तहसीलदार का मान। बोलो, तहसीलदारी करोगे ?"

"फिर भी मालूम तो हो कि यहां तहसीलदार का क्या वेतन है ?" बैरिस्टर साहब ने पूछा।

"फिर वही एक बात, वेतन! वेतन आपके यहां से सौ रुपये कम अर्थात् डेढ़ सौ मासिक मिलता है।"

"डेढ़ सौ रुपये में तो हमारी गुज़र न होगी"। बैरिस्टर साहब गुनगुनाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फिर वही बात। हजारों रुपये खर्च किये मगर नासमझ के नासमझ ही रहे। तुम्हारी ही बात नहीं मियां, विलायत से पढ़ कर आनेवालों की सब की यही दशा होती है। अरे भाई! तहसीलदारी तनख्वाह के लिए नहीं, तोफे के लिए की जाती है। बोलो, करोगे तहसीलदारी?"

"समझो, करेंगे। परन्तु यहां पराये मुल्क में हमें तहसीलदारी कौन देने लगा?"। बैरिस्टर साहब ने मुस्करा कर कहा।

"इसकी चिन्ता तुम मत करो, तुमने हमारे साथ आज भोजन करके हम पर असीम कृपा की है। इसके बदले तुम्हारे लिये नौकरी की चिन्ता हम करेंगे"। तहसीलदार ने बड़े ही सन्तोष, उत्साह और आत्मविश्वास के साथ कहा। ऐसा प्रतीत होता था कि कर्तव्य-बुद्धि से प्रेरित यह व्यक्ति अपने साथी की भलाई का कोई मार्ग सोच रहा है। "हमारे मामा यहां के सदरुलमहाम माल (भूविभाग के मन्त्री) हैं। हम तुम्हारे लिये उन से कह देंगे और काम बन जायेगा। सही बात तो यह है कि उन्हें तुम्हारे जैसे योग्य बैरिस्टर तहसीलदारी के लिये कहां से मिलने लगे?"

बातें करते करते दोनों का भोजन समाप्त हो चुका था। दस्तरखान समेटा गया। उसका स्थान पानदान ने लिया। उधर चुन्नू ने हुक्का भी सुलगा दिया था। बैरिस्टर साहेब चुरुट पीना चाहते थे। यह देख कर तहसीलदार ने कहा—

"अरे मियां, छोड़ो इस मनहूस चुरुट को। न जाने तुम विलायत से वापस आये लोगों को सूखी तम्बाखू में क्या मजा आता है।" हुक्के की नली को सामने करते हुए तहसीलदार बोले, "यह लो, तुम्हारे यहां की लखनवी गुड़ाकू है। एक कश ली, तो हजार चुरुट याद आजायें।"

बैरिस्टर साहब ने नली हाथ में ली। दो चार कश लिये। फिर नली तहसीलदार को वापिस दे दी। इस बीच तहसीलदार ने पान के दो बीड़े लगा लिये थे। एक उन्होंने बैरिस्टर साहब को पेश किया और दूसरा अपने मुख के हवाले किया। फिर डिब्बे की दीवार की तरफ सीट की पीठ से अपनी पीठ जमा कर और पैरों को सीट की पूरी लम्बाई में फैला कर आधे बैठे और आधे लेटे तहसीलदार चार-पांच मिनिट तक हुक्के के गहरे कश लगाते रहे।

× × ×

भोजन करके, पांच मिनिट हुक्का पीने के उपरान्त बेहोशी, उन्माद, उमंग और जीवन इन सब चेतनाओं का मिश्रण उनके चेहरे पर दिखाई दे रहा था। इन सब चेतनाओं से अभिभूत उन्होंने कहना प्रारम्भ किया।

"अच्छा हुआ, तुमने तहसीलदारी करना स्वीकार कर लिया। नहीं तो तुम्हारे जैसे नई रोशनी के लोग वेतन की कमी के कारण अस्वीकृत कर देते हैं।"

"हम ने तो स्वीकार कर लिया है।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

"हाँ, जरूर करना बेटा! तहसीलदारी एक जादू है। चलाना आना चाहिये, फिर सदरुलमहामी (मंत्रिपद) भी इस के सम्मुख झक मारती है।"

"ठीक है, आपके हाथ के नीचे सब जादू सीख लेंगे।" बैरिस्टर साहब ने अर्थ-पूर्ण उद्गार निकाले।

"सच कहते हो, बेटा! सच कहते हो! होशियार हो। शनैः शनैः सब सीख लोगे। मगर मियां, हम ने तो तुम्हारा नाम ही नहीं पूछा, क्या नाम है? कहां ठहरोगे?"

"मेरा नाम इब्राहीमखां है। ठहरूँगा किसी सराय में। आप अपना पता दे दें तो वहीं आकर मिलूंगा।" बैरिस्टर साहब ने उत्तर दिया।

"बैरिस्टर इब्राहीमखां। ठीक है, याद रहेगा। मुझ गुलाम को नजीरअली कहते हैं। मेरा गरीबखाना मच्छीगली में है। कोई भी बता देगा।" तहसीलदार ने कहा।

× × ×

हैदराबाद का स्टेशन समीप आ रहा था और गाड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
079517

का वेग धीमा पड़ रहा था। प्लेटफार्म पर बहुत बड़ी भीड़ देख कर तहसीलदार ने बैरिस्टर साहब से कहा—

"देखा ! यहां पर भी मेरे स्वागत के लिये कितने लोग जमा हैं।"

तहसीलदार ने खुदा को दुआएँ दीं कि इब्राहीमखां के दिल में उस के लिये इज्जत बनी रहेगी। गाड़ी स्टेशन पर पहुंच गई। सारा स्टेशन पताकाओं से सजा हुआ था। दूर बैण्ड भी बज रहा था। आश्चर्य की बात यह थी कि भीड़ में तहसीलदार के मामा भू-विभाग के मन्त्री भी थे। वे लपक कर तहसीलदार के समीप आये और पूछा—

"अबे, नज़ीर ! गाड़ी में इब्राहीमखां हैं ?"

"यही तो हैं।" इशारे से बताते हुए तहसीलदार ने मामा को उत्तर दिया।

भूविभाग के मन्त्री ने चांदी की थाली में से ज़री का एक बड़ा हार इब्राहीमखां के गले में डाला। "इब्राहीमखां ज़िन्दाबाद" के नारों से सारा स्टेशन गूंज उठा। बैण्ड ने "गाड सेव दि किंग" की धुन प्रारम्भ की। बैरिस्टर साहब एक हाथ में हैट लेकर पुतले की नांई खड़े हो गये। कुछ देर के लिये चारों तरफ शान्ति थी। अवसर पाकर तहसीलदार ने एक परिचित सज्जन से धीमी आवाज़ में पूछा—

"यह क्या माजरा है ?"

"वाह ! तुम साथ आ रहे हो और तुम्हें मालूम नहीं कि इब्राहीमखाँ साहब नये मदारुलमहाम (प्रधान-मन्त्री) नियुक्त होकर आये हैं।"

दूसरा कोई होता तो सम्भव है बेहोश होकर वहीं गिर जाता, मगर तहसीलदार सधा हुआ था। एक लम्बी सांस लेकर वह डिब्बे में वापिस चला गया।

बैण्ड की धुन समाप्त होने पर भू-विभाग के मन्त्री ने जब अपने भांजे को डिब्बे में देखना चाहा तो उन्होंने देखा कि प्लेटफार्म के दूसरी तरफ रेलवे लाईन की पांच पंक्तियों को पार करके उनका भांजा अहाते की तार को फलांग रहा है और पुलिस के दो जवान उसे बिला टिकट सैर करने की शंका में पकड़ने का प्रयत्न कर रहें हैं।

पुस्तकालय
079517
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रिय प्रवास' की राधिका

श्रीमती सुशीलादेवी विद्यालंकृता

रूपोद्यान प्रफुल्लप्रायकलिका, राकेन्दु बिम्बानना ,
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका, क्रीड़ाकलापुत्तली ।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी, लावण्यलीलामयी ,
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी, माधुर्य्य की मूर्ति थी ॥

राधा और कृष्ण की प्रणय कहानी हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है । श्रीयुत् अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी का 'प्रिय प्रवास' वियोगी हृदयों के उच्छ्वासों की झाँकी है । रास की फाँस में गोपियों को डाल कर अपना परम माधुरी रस राधा के अन्तः-स्थल पर छिड़ककर नन्द और यशोदा को अपनी बाल लीलाओं से लुभाकर अन्त में गोकुल के प्राण नटनागर गोकुल छोड़ कर चले गये । गोपियां तड़पतीं, यशोदा मैया बिलखती तथा राधा कुहुंकती रह गई पर कृष्ण कन्हैया न लौटे । 'योग' की आंधी लाकर कृष्ण जी के दूत 'उद्धव' ने उन की विरहानल को और भी प्रज्वलित कर दिया । 'प्रेमी हृदयों की विरह कहानी' यही 'प्रिय प्रवास' का विषय है । इस में 'राधा' को अनन्या प्रेयसी के रूप में अंकित किया गया है । प्रिय प्रवास के चतुर्थ सर्ग में राधा की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए आप लिखते हैः—

"सुवर्ण की कान्ति, कुञ्चित लम्बमान अलकें, हरिण-सी बड़ी-बड़ी आँखें, सौन्दर्य सागर की अनमोल मणि-सी, लीलामयी, तरह तरह के हाव-विभाव में कुशल, सद्वस्त्रा, वीणा के तारों पर कुशलतापूर्वक अठखेलियाँ करने-वाली, सुमुखी, सर्वत्र सम्मानिता, रोगी और वृद्धजनों की सेवा में सदा तत्पर रहने वाली, सुमना, प्रसन्नवदना, स्त्रीजाति-रत्नोपमा—ऐसी थीं हमारी राधा । उन्हें बचपन से ही कृष्ण के प्रति आकर्षण था । दोनों की पारस्परिक प्रेम-क्रीड़ायें दोनों को मदहोश बनाये हुए थीं । परन्तु समय चक्र तो सदा चलता ही रहता है । कभी दिन है, तो कभी रात । कभी सुख है, तो कभी दुःख । कभी मिलन, तो कभी वियोग । कृष्ण जी का भी गोकुल छोड़कर मथुरा जाने का समय आ पहुँचा । प्रिय के प्रवास का समाचार बिजली की तरह सारे व्रज में फैल गया । यशोदा माँ तथा सभी व्रजवासी मतवाले से होकर विलाप करने लगे । राधा ने भी यह समाचार सुना । जैसे बर्फ के गिरने से खिली हुई कली मुरझा जाती है, वही दशा राधा की हुई ।

यह सकल दिशाएँ आज रो-सी रही हैं ।
यह सदन हमारा है हमें काट खाता ॥
मन उचट रहा है, चैन पाता नहीं ।
विजन विपिन में है, भागता सा दिखाता ॥

प्रिय विरह की घटायें घहर-घहर कर कलेजे को कंपाने लगीं । जिस का मुख देखे बिना एक क्षण भी चैन न होता था, अब लम्बे लम्बे दिन उस के वियोग में कैसे बीतेंगे । हृदय की वेदना विश्व के कण कण में साकार हो उठी । तारावृन्द सहमे-से, वृक्ष, पल्लव, लताएँ कुम्हलाई हुई-सी दृष्टिगोचर होने लगीं । वे सोचती हैं तारे क्यों छिप रहे हैं । क्या उन में उस का दुःख देखने की सामर्थ्य नहीं ? अथवा अपने आप को उस का दुःख निवारण करने में असमर्थ पाकर लज्जा से मुख छिपा रहे हैं । ये सूर्य की किरणें क्यों फूट पड़ीं ? क्या उस के किंकर्तव्यविमूढ़ मन में ज्ञान का उदय करने आई हैं । आखिर कन्हैय्या चले गये । राधा घनश्याम की चातकी बनकर ज्यों त्यों दिवस व्यतीत करने लगी ।

काव्य का आदि रस है शृंगार । प्राणियों में पारस्परिक हृदय का आर्कषण ही अनेकता में एकता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान कराने का प्रथम साधन हुआ था। वही आकर्षण श्रृंगार का माधुर्य है। परन्तु श्रृंगार का भी प्राण है विरह। जिस तरह जीवन में वेदना का महत्व है उसी भांति श्रृंगार रस में विरह का। मिलन का माधुर्य विरह में ही प्रस्फुटित होता है। मिलन में तो प्रियतम एक है। परन्तु विरह में वह प्रियतम विश्व के अणु-अणु में केन्द्रित हो उठता है। मिलन में प्रेम ससीम है, परन्तु विरह में असीम। जिधर देखती हूँ उधर तू ही तू है। वियोगी चर में अचर में, कीड़ी में कुंजर में, नदी में पहाड़ों में, चाँद में सितारों में, वृक्षों में लताओं में, पवन में तूफ़ान में सर्वत्र अपने प्रेमी की झाँकी पाता है। यही स्थिति विरहविधुरा राधिका की थी।

शीतल मन्द समीर बह रही थी। राधा गृह में अकेली बैठी अपने सांवले-सलोने की याद में आँसू बहा रही थी। हवा रह रह कर उसे छेड़ती थी। आखिर राधा को एक बात सूझी। इस हवा से दूती का कार्य लिया जाय। मेघदूत के यक्ष ने भी तो बादल को दूत बनाया था। राधा समीर से कहती है कि मेरी विरह कहानी श्याम से कहना। पर अरे, तू तो बोल नहीं सकती। खैर, तू एक काम करना। जिस कमरे में श्याम बैठे हों, वहां जाना। उस कमरे में यदि किसी विरहिणी का चित्र टंगा हो तो उसे इतनी जोर से हिलाना कि श्याम की दृष्टि उस चित्र पर घूम जाय और इस तरह मुझ विरहिणी की याद आ जाय। अथवा कहीं कोई कुम्हलाया हुआ फूल पड़ा हो उसे लाकर श्याम के चरणों पर डाल देना और कहना कि एक फूल-सी बाला इसी तरह मुरझाकर तुम्हारे चरणकमलों का स्पर्श करने के लिए व्याकुल हो रही है। यदि वे किसी उपवन में खड़े हों तो किसी बांस की नली के छिद्र में घुसकर ऐसी आवाज़ करना कि कन्हैया को बांसुरी की धुनि सुन कर उत्कण्ठित होने वाली गोपियों की स्मृति आ जाय। कमल दल को श्याम के सामने लाकर जल में डुबोना और इस तरह उन्हें बताना एक कमलनयनी अपने नयनकमल को विरह वारि में डुबो रही है। किसी सूखी लतिका को श्याम के चरणों के पास ले जाकर कहना कि तुम्हारी राधा भी तुम्हारे विरह में इसी तरह म्लान होती जा रही है। ऐ पवन, मेरे प्रियतम के शरीर में जो अंगरागादि लेप हों उन के कण तू मुझे ला देना। मैं इसी में प्रिय-मिलन का सुख अनुभव कर सकूंगी।

ताली एक हाथ से नहीं बजा करती। दिल की दिल से ही राह होती है। उधर कृष्ण भी राधा के विरह से व्यथित हो रहे थे। एक दिन व्रजवासियों को सान्त्वना देने के लिए वे अपने मित्र उद्धव को व्रज में भेजते हैं।

आप कहते हैं:—

जो राधा वृषभानुभूपतनया, स्वर्गीय दिव्यांगना।
शोभा है व्रज प्रान्त की अवनि की, स्त्री जाति की वंश की॥
होगी हा वह मग्नभूत अति ही, मेरे वियोगाब्धि में।
जो हो संभव तात पोत बन कर, तो त्राण देना उसे॥

मेरे वियोग वारिधि में डूबती उतराती राधा को, हे तात! तुम पोत बन कर पार लगा देना और मेरा यह संदेश भी उसे देना कि—

प्राणाधारे परमसलिले, प्रेम की मूर्त्ति राधे।
निर्माता ने प्रथक् तुम से यों किया क्यों मुझे है?

जो दो हृदय दूध और पानी की तरह मिल कर एक हो गए थे, आज इतनी दूर हैं। पर फिर भी निराश मत होना। सोने की चमक अग्नि में तपने से ही होती है। और

जो होता है निरत तप में, मुक्ति की कामना से।
आत्मार्थी है कह न सकते हैं उसे आत्मत्यागी॥
जी से प्यारा जगत हित औ, लोक सेवा जिसे है।
प्यारा सच्चा अवनितल में, आत्मत्यागी वही है॥

उद्धव के मुख से कृष्ण के-अपने प्राणेश के-संदेशों को सुन कर उसकी हृत्तंत्री के तार झंकृत हो उठते हैं। राधा कहती है—"मैं प्यार से वंचिता, तरलहृदया, वेदना-व्यथिता नारी हूँ। फिर यदि विकल और उद्विग्न होऊँ तो क्या आश्चर्य? रजनीनाथ के वियोग में रजनी, वसन्त के विरह में वाटिका जिस तरह श्रीहीन हो जाती है, वही स्थिति चन्द्र तुल्य मुखवाले श्याम के अभाव में मेरी हो रही है। ज्ञानी और देव शायद उद्वेगों से उद्वेलित न हों, पर हम तो संसारी जन हैं। वायु के थपेड़ों से तो समरस प्रवाही जल भी चंचल हो उठता है, फिर विरह के आघात से हमारा हृदय क्यों न आहत हो? पर बचपन से ही कृष्ण के सहवास से मेरी आत्मा में जो ज्ञान का बीज बोया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था वह आज अंकुरित हो रहा है। 'वासुदेवः सर्वमिति' सर्वत्र अपने श्याम को पाने का प्रयत्न करती हूँ। पूर्णिमा के चाँद में अपने प्यारे के मुख की छवि, सरोवर के कमलों में उन के चरणकमलों के चिन्ह, तारों से छिटके आकाश में उन के मुक्तालसित वक्षःस्थल की स्मृति हो आती है। पवन के स्पर्श से श्याम के मृदुल कर के स्पर्श का, पुष्पों की सुरभि से उन के सुवासित मुख की वासना, उच्च-शिखर उन के चित्त की उच्चता, मेरु पर्वत उन की दृढ़ता कालिन्दी का श्यामल-जल उन के सांवले-सलोने तन की याद दिलाता है। संध्या में श्याम की कान्ति, रजनि में श्याम की भ्रान्ति, उषा में श्याम की लालिमा, खंजन और मृगों में नयनों का साम्य, कलभकरों को देख कर श्याम के भुजयुगल, तोते को देख कर उन की लम्बनासिका, अनार में उन की दन्तछवि, बिम्ब में अधरों की लालिमा, केलि-कुंज में जघ्नों की मंजुता, पक्षियों के संगीत में साँवरिया की मनमोहनी वंशी की ध्वनि की झलक देखती हूँ। पहले प्रकृति के यह उद्दीपन मुझे विरहाग्नि में जलाते थे, पर अब शान्ति पहुँचाते हैं। आप कहती हैं कि मुझे विश्व के कण कण में अपने प्रियतम की छवि देखने से दो तरह के लाभ हुए। १-विश्वप्रेम हृदय में जागृत हो गया। २-अपने प्राणेश में ही मैंने प्रभु के दर्शन पा लिये। अब सब कुछ श्याममय ही दीखता है, तो मैं उन सब से कैसे न प्यार करूँ!

"व्यापी है विश्व प्रियतम में, विश्व में प्राणप्यारा।
यों ही मैंने जगत्पति को, श्याम में है विलोका॥"

वस्तुतः श्रृंगार की परिपूर्णता भक्ति है। धीर-समीरे यमुनातीरे, कुंजकुटीरे अपनी मुरली की टेर से गोपियों को आकृष्ट कर रास रचानेवाला कन्हैया आज इन भौतिक आँखों से दूर है। पर मेरे मन के मन्दिर में उसकी झाँकी अंकित है। जब चाहूँ दर्शन करती हूँ। विरह ने राधा के प्रेम को तपे हुए सोने की भाँति निखार दिया है। मैंने कृष्ण से अभिधा-भक्ति, सख्य-भक्ति, अर्चना-भक्ति, तथा पदसेवना-भक्ति का रहस्य पाया था। आज उस भक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ करूंगी।"

उद्धव चले गए। पर राधा अपने व्रजवासियों को प्रेम तथा सेवा के द्वारा जीवन दान करने लगी। यशोदा तथा नन्द की रात-दिन सेवा करती। बालकों को उदास देखती तो उनके साथ कृष्ण की बाललीलाएँ करवाकर खुश करती। गोपिकाएँ उदास होतीं तो उन्हें कहती—भोली, क्या प्यारे की वदनछवि तू इन्दु में है न पाती। नन्द को शास्त्र सुनाती। कीट, पतंग, पशु, पक्षी सभी को अन्नजल दान करती। इस तरह राधा विश्वप्रेम की राधिका बन अपने प्रेम का प्राणिमात्र में विस्तार कर आदर्श नारी का पद प्राप्त कर सकी। नारी की महानता आत्मोत्सर्ग में है। वे तिमिराच्छन्न घनघोर रात्रि में चाँद की चाँदनी की तरह कृष्ण के विरह की घटाओं से आच्छादित व्रज में अपने निर्मल प्रेम का प्रकाश कर रही थीं। हरिऔध जी के ही शब्दों में :—

वे छाया थीं सुजन शिर की,
शासिका थीं खलों की,
कंगालों की परम निधि थीं,
औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थीं बहिन,
जननी थीं अनाथाश्रितों की।
आराध्या थीं व्रज अवनि की,
प्रेमिका विश्व की थीं॥

इस तरह राधा दीन-दुखियों की कामधेनु, क्षत-विक्षतों की औषधि, अनाथ और असहायों के लिए मातृ-स्वरूपा, व्रजवासियों की अर्चनास्पदा तथा विश्व की प्रेमिका थीं। वे कृष्ण की अनन्यप्रेमिका बन कर 'भक्तिः परमप्रेमरूपा' को सार्थक कर रही थीं। अपने आराध्य के प्रति सम्पूर्ण क्रियाकलापों का अर्पण करना तथा उस की क्षणमात्र भी विस्मृति में व्याकुलता का अनुभव करना ही तो भक्ति है न। राधा इसी भक्ति की साकार प्रतिमा थी। जिस अमर बेल को मीरा ने प्रेम के आँसुओं से सींचा था, जिस अमरत्व की प्राप्ति के लिए मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य की दौलत को ठुकराया था, जिसकी प्राप्ति के लिए ऋषि मुनि आजीवन साधना करते रहे उसी को राधा ने अपनी सहज सेवा और दीन दुखियों के आँसू पोंछ कर प्राप्त कर लिया। यही राधा की उत्कृष्ट प्रेम-साधना का नमूना है। इस अनन्य प्रेम और उत्कृष्ट भक्ति के कारण ही राधाकृष्ण के रूप में आज भी कृष्ण जी के साथ राधा का नाम आज तक जन गण मन का अभिनन्दन कर सका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकरी

तेलुगु कविता

मोक्ष कहाँ है ?

मोक्षमु गलदा भुविलो जीवन-मुक्तुलु गानिवारलकु ?
साक्षात्कार ! दीनि सद्भक्ति संगीत-ज्ञानविहीनुलकु
प्राणानला संयोगमुवलना प्रणव नादमु सप्त स्वरमुलै परगे
वीणा वादन लोलुदौ शिवु मनोरथमु एरुगरु त्यागराज विनुता !

संसार में मोक्ष कहाँ है ?
उसे केवल जीवन-मुक्तों में ही देखा जा सकता है ?
जो तुम्हारी भक्ति से विमुख हैं—
उन्हें संसार में उसका साक्षात्कार नहीं हो सकता ।
प्राण और अग्नि के सम्मिलन से
प्रणव-नाद सात स्वरों में प्रकट हुआ ।
त्यागराज कहता है, ये लोग उस हृदय को नहीं जानते जो
उसकी वीणा से झंकृत हो रहा है ।

—कवि त्यागराज

कुलकान्ता तोडा नेप्पुडु
कलहिंपकु, वट्टि तप्पु घटियिंपकुमी
कलकण्ठ कण्ठि कन्नी
रोलिकिनसिरि यिंट नुंड नोल्लदु सुमती ।

धर्मपत्नी से कभी कलह मत करो, उस पर यों ही दोष मत लगाओ । अरे, सुमति, यदि कोयल के समान मधुर कंठवाली पत्नी की आँखों से आँसू टपकेंगे तो घर से लक्ष्मी चली जायगी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूरिमिगला दिनमुल लो
नेरमुलेन्नडुनु गलुग नेरवु; मरि या
कूरिमि विरसवननु
नेरमुले तोचुचुंडु; निक्कमु सुमती।

मित्रता के दिनों में बुराई भी बुराई नहीं लगती, किन्तु जब मित्रता टूट जाती है तो, अरे सुमति, सभी अच्छाइयाँ बुराइयों में बदल जाती हैं।

चेतुलकु दोडवु दानमु
भूतलनामुलकु दोडवु बोंकमि, धरलो
नीतिय तोडवेव्वारिकि;
नातिकि मानंवु तोडवु नयमुग सुमति।

हाथों का भूषण दान है, राजा का आभूषण सच बोलना है। प्रत्येक व्यक्ति का आभूषण सदाचार है। अरे सुमति, नारी का अलंकार एकमात्र लज्जा है।

तनयूरि तपसितनमुनु,
तन पुत्रुनि विद्यापेंपु दनसति रूपुन;
दन पेरटि चेट्टु मंदुनु
मनसुन वर्णिपरेट्टि मनुजुलु सुमती।

हे सुमति, अपने गाँव में की गई तपस्या, अपने पुत्र की विद्या में की गई कुशलता, अपनी पत्नी के सौन्दर्य और अपने खेत की जड़ी-बूटी की कोई भी प्रशंसा नहीं करता।

सुमति-शतकम्
अनुवादकः- सूर्यदेव

कन्नड

स्मृति

विवाह का मंगलवाद्य बज रहा है। द्वार के सम्मुख हरीतिमा से शोभित मंडप स्वागत के लिए तैयार है। रंग-बिरंगी साड़ियों से सुशोभित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारियाँ बाहर-भीतर आ-जा रही हैं। वयोवृद्ध पुकार रहे हैं—समय हो गया, समय हो गया। वधू भीतर बैठी है।

सहेलियाँ वधू के बनाव-सिंगार में लगी हैं। बीच-बीच में उससे उसके पति का नाम पूछती जाती हैं। घूँघट के पट से वधू की अश्रुधारा दिखाई दे रही है।

बाहर मंगलवाद्य शुभ-वेला का सन्देश दे रहा है। पुरोहित सूचना दे रहा है—वर आ गया, वधू को उपस्थित करो। किन्तु, इधर दुःखित वधू आँचल से अपनी आँखें पोंछ रही है। वधू के सौभाग्य से अपने अनुकूल वर प्राप्त हुआ है। किन्तु इस शुभ अवसर पर उसकी आँखों में आँसू क्यों हैं?

वधू की माता जीवित नहीं है! यदि इस समय उसकी माता जीवित होती? तो·······

कवि—श्री शिवरुद्रप्पा डावणगिरि
अनुवादक—श्री बाँजरे

मराठी

कन्या ससुरासि जाये। मागें परतोनी पाहे।
तैसें झालें माझ्या जिवा। केव्हाँ भेटसी केशवा॥

× × ×

दुष्काळें अन्नें पीडिलें क्षुधार्थी। मिष्टान्न देखिलें तेणें जैसे
तैसें तुझे पायीं लाचावलें मन। झुरे माझा प्राण भेटावया
माँजरे देखिला लोणियाचा गोळा। लावुनियाँ डोळा बैस लेंसे
'तुका' म्हणे आतां झडी घालूँ पाहे। पांडुरंगे माये तुझे पायीं॥

संत तुकाराम

कन्या ससुराल को जा रही है। बार बार पीछे अपने पितृगृह को देखती है। मेरा मन भी वैसा ही हो रहा है। हे केशव, आप की भेंट कब होगी?

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस तरह अकाल के दिनों में भूख से पीड़ित व्यक्ति मिठाई देखे, उसी तरह मेरा मन आप के चरणकमलों में लुब्ध हो रहा है। मिलने के लिये मेरा मन व्याकुल हो रहा है। बिल्ली ने नवनीत देख लिया, वह उस पर दृष्टि गाड़ कर बैठ गई। हे पांडुरंग! तुम्हारे चरणारविन्दों को मैं एकटक देखना चाहता हूँ।

तेलुगु कहावतें

अंगटिलो अन्नि वुन्नवी अल्लुनि नोटिलो शनि वुन्नदि।

बाजार में तो सब कुछ है किन्तु जँवाई के मुँह में शनिश्चर है।

अंगिट बेल्लमु अंतमलो विषमु।

बातें मीठी हैं, किन्तु मन में विष भरा है।

अंत्य निष्ठुरमु कंटे आदि निष्ठुरमु मेलु।

अंत में कठोर बनने की अपेक्षा आदि में ही कठोर बनना अच्छा होता है।

तन नीड तन तोवुंठुन्नदि।

अपनी छाया अपने साथ रहती है।

तेने वुन्न चोट ईगलु प्रोगवुतवि।

जहाँ शहद रहता है वहीं मक्खियाँ जमा होती हैं।

अरचे कुक्क करवदु।

जो कुत्ता भोंकता है, वह काटता नहीं है।

आचारानकु अंतमु लेदु अनाचारानकु आदि लेदु।

सदाचार का अन्त नहीं, अनाचार का आदि नहीं।

इंटि दीपमनि मुद्देट्टु कोंटे, मूति मीसालन्नि तेग कालिन वट।

दीपक अपना ही है, मानकर उसका चुम्बन लिया गया तो अपनी ही मूछें जल गई।

इल्लू कट्टि चूडु, पेंड्लि चेसि चूडु।

घर बना कर देखो, शादी करके देखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इल्लु इर्कटं आलु मर्कटं ।

घर छोटा है, पत्नी बन्दर है ।

इसंत रम्मंटे इल्लंत चेसि कोन्नट्टु ।

निकट आने के लिए कहा था, सम्पूर्ण घर पर अपना ही अधिकार जताने लगा ।

ऊपिरि पाट्टुते बोज्ज निंडुना ।

साँस रोकने से कहीं पेट भरता है ।

काशिकि पोगाने कर्रि कुक्क गंगि गोवु अवुना ?

काशी-यात्रा से काला कुत्ता गाय बन सकता है ?

चिन्न पामु नयिना पेद्दा कर्रातो कोट्ट वलेनु ।

साँप चाहे छोटा हो, उसके मारने के लिए लकड़ी बड़ी लेनी चाहिए ।

<u>तमिल</u>

"संसार को यदि मैं तुम्हारे भक्त की तरह दिखाई दूं, तब भी मैं भक्त नहीं हूं, यह सब कुछ छल है । आपके स्वरूप की ओर मेरा मन वेग से दौड़ रहा है । आप कृपा कीजिए । आप के चरणों में मेरा अटूट प्रेम हो और प्रेम से आर्द्र होने वाला अन्तःकरण दें ।

"उसे सब खोज रहे हैं, किन्तु कोई भी यथार्थ रूप से उसे नहीं जानता । वह अत्यन्त निर्मल और परम मंगल है । मनुष्य की दृष्टि से दिखाई न देने वाला है । किसी के भी कान से सुनाई न देनेवाली बात उस ने मुझे सुनाई । उस ने मेरी जन्म-मरण की शृंखला को तोड़ दिया है । उसने मुझे स्नेह में बांध लिया है । ऐसा जादू उसके पास है ।"

—श्री तिरुक्कोवैय्यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति का मूल-स्रोत आर्य संस्कृति

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

स्वाधीन भारत बीसवीं शती के उपयुक्त और यान्त्रिक और वैज्ञानिक युग के अनुकूल भारतीय संस्कृति के निर्माण में प्रयत्नशील है। दिल्ली और बम्बई में कुछ दिनों के अन्तर से हुए सांस्कृतिक सम्मेलन यदि कुछ सूचित करते हैं, तो यही प्रगट करते हैं। भारतीय संस्कृति विश्व-संस्कृति का एक अंश है, एक भाग है, यह मानते हुए भी यह न भूलना चाहिये, कि मानव समाज के अन्दर एकसूत्रता और एकता स्थापित होना अभी शेष है। इसके अभाव में विश्व-संस्कृति का विकास भी सम्भव नहीं। मानव समाज की एकता जिस प्रकार आज कल्पना में है और विचार का विषय है, उसी प्रकार वैदिक ऋषियों के समय से विश्व-संस्कृति भी अभी कल्पना में है और अभी विचार का विषय है। भूमण्डल का एक महादेश अफ्रीका अभी तक शेष दुनिया से अलग है; जिस प्रकार भारत की वन्य जातियाँ और आदिमवासी भारतीय जीवनप्रवाह से अलग हैं। इसलिए भारतीय संस्कृति के विकास की बात संकीर्ण मनोवृत्ति की सूचक नहीं और न अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में बाधक है। आखिरकार विश्व-संस्कृति का निर्माण अभाव से तो होगा नहीं। 'नाभावो विद्यते सतः' यह नियम प्रकृति के साथ जिस प्रकार लागू है उसी प्रकार संस्कृति के साथ भी लागू है। जगत् के विभिन्न भागों में संस्कृति के जो रूप दिखाई देते हैं, उन्हीं के सम्मिलन और समन्वय से ही विश्व-संस्कृति का निर्माण होगा। इस दृष्टि से भी भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास अभीष्ट है। 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' की कल्पना जब तक साकार मूर्तरूप धारण नहीं करती तब तक ही नहीं, अपितु 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के आधार परनिर्मित विश्व-संस्कृति में योगदान करने के उद्देश्य से भी भारतीय संस्कृति का निर्माण आवश्यक है।

विश्व-संस्कृति का निर्माण हमारी कल्पना, हमारे विचार और हमारी परम्परा के अनुकूल हो, इस भावना और इस दृष्टि से नहीं प्रत्युत सद्यःप्राप्त भारतीय स्वाधीनता और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए भी भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास आवश्यक है। भारतीय एकता के स्थायित्व और उसकी दृढ़ता के लिए यह आवश्यक है। केन्द्रीय सरकार का शक्तिशाली होना इसके लिए पर्याप्त नहीं। राजनीतिक एकता और शासन द्वारा स्थापित एकता छिन्न-भिन्न हो सकती है, परन्तु संस्कृति द्वारा स्थापित एकता कभी भी नष्ट न होगी। इस देश के अन्दर जातीय, साम्प्रदायिक और प्रान्तीय भावनाओं का बल न बढ़ने देने के लिए केवल राजनीतिक एकता पर्याप्त नहीं। भारत के विभिन्न प्रदेशों, इस देश में बसी विविध जातियों और नस्लों और नाना भाषा-भाषी जनता को मिलाकर एक महान् भारतीय राष्ट्र में परिणत करना भारतीय संस्कृति के निर्माण और विकास पर ही सम्भव है। हम भारतीय हैं, पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी और दक्खनी नहीं; पंजाबी, बंगाली, मराठी, मद्रासी, दक्खनी नहीं और इसके सिवाय और कुछ नहीं, यह भारतीय संस्कृति के निर्माण और विकास से ही सम्भव है। इससे भारतीय दृष्टिकोण उत्पन्न होगा, भारतीय जीवन-धारा प्रवाहित होगी और हम भारत की शब्दावली में ही सोचेंगे और विचारेंगे। इसलिये भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है और इस ओर सर्वप्रथम ध्यान देना आवश्यक है।

एक दिन में नहीं

संस्कृति क्या है? इसके इतने अधिक लक्षण किए गए हैं, फिर भी इसको ठीक ठीक अभी प्रगट नहीं किया जा सका। सब ने जीवन के विविध रूपों का जो मूल्यांकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है, उस रूप में संस्कृति की व्याख्या की गई है। संस्कृति मूर्त वस्तु नहीं, बल्कि अमूर्त है। वायु हमें दीखती नहीं, परंतु उसको हम अनुभव करते हैं। इसी प्रकार संस्कृति भी दृश्यमान न होते हुए भी हम उसका अस्तित्व और प्रभाव पग पग पर अनुभव करते हैं। यह जन्मजात नहीं। यह प्रयत्नों द्वारा प्राप्त की जाती है। संस्कारगत भी होती है। पर यह विरासत में मिली वस्तु के समान है। चारों ओर का समाज और हमारे घर और कुल का वातावरण भी इस के निर्माण में सहायक होते हैं। इसका एक रूप नहीं। हमारी सामाजिक आदतें, आचार-व्यवहार, जाति-पांति, परिवार, विवाह-प्रणाली ये जीवन के उपरले स्तरमात्र हैं, ये जीवन नहीं। संस्कृति इसलिए वह जीवन-मूल्य है जो रीति-रिवाजों, उपाख्यानों, लोक-कथाओं, जीवन-यापन, रंग-ढंग, रहन-सहन, सामाजिक परम्पराओं और संस्थाओं, भाषा और साहित्य, जीवन के सिद्धान्तों, आदर्शों और उसके ध्येय, सामाजिक भावनात्मक और आदर्श तत्वों द्वारा प्रगट होती है और समाज को सब से अलग विशिष्टता प्रदान करती है तथा जीवनमय एवं सजीव विकासशील ऐन्द्रियिक संस्था बनाती है। इन मूल्यों का निर्माण एक दिन में, कुछ वर्षों में नहीं होता। प्रभावशाली और प्रभुत्वपूर्ण विचारों द्वारा जीवन प्रभावित होता है। ये ही जीवन-मूल्यों का निर्माण करते हैं और संस्कृति का आधार बनते हैं। इसलिये सम्भवतः प्रश्न होता है कि भारतीय संस्कृति का आधार क्या है और उस का रूप क्या है? क्या आज भी वह हमें प्रेरणा देने में समर्थ है? क्या आज भी उस में मार्ग-दर्शन की शक्ति है? उस की वह क्या विशेषता है जिस के कारण वह आज भी अस्तित्वमें है; जब कि उसकी समकालीन संस्कृतियाँ पुस्तकों में ही रह गईं और खोज का विषय हो गईं?

भारतीय संस्कृति का मूलस्रोत आर्य संस्कृति है, यह एक निर्विवाद सत्य है। गंगोतरी में पानी सूख जाने से जैसे भागीरथी का प्रवाह सूख जायगा, उसी प्रकार आर्य संस्कृति के मूलतत्वों के नष्ट हो जाने से भारतीय संस्कृति भी न रहेगी। सरस्वती का प्रवाह सूख गया। क्यों कि भूगर्भ में परिवर्तन होने के कारण सरस्वती नदी के प्रवाह का उसके मूलस्रोत से सम्बन्ध छिन्न-विच्छिन्न हो गया। इसलिए आज जब हम भारतीय संस्कृति का निर्माण और उसका विकास करने के लिये प्रयत्नशील हैं, उसके मूलस्रोत पर भी नजर रखना आवश्यक है। प्रश्न यह है कि आर्य संस्कृति के मूल तत्व क्या हैं?

मूल-तत्व

प्राचीन काल की संस्कृतियों से आर्य-संस्कृति को जो तत्व भिन्नता और विशिष्टता प्रदान करते हैं, वे मुख्य रूप से इस प्रकार हैं। यथा— (१) संयुक्तकुटुंब-प्रणाली (२) वैवहिक-जीवन (३) वर्णाश्रमधर्म (४) आर्यावर्त्त की कल्पना और देश के प्रति उत्कट प्रेम (५) संस्कृत की प्रधानता और (६) ऐतिहासिक नैरन्तर्य।

आर्य संस्कृति का पहला मूलतत्व परिवारिक जीवन है। अर्यों का समाज पशुपालकों और कृषकों का था। आर्य का मूल अर्थ ही खेती करना है। प्रो० मैक्समूलर के अनुसार खेती से प्रेम दिखाने और तूरानियों से अपने को अलग करने के लिये आर्यों ने यह शब्द गढ़ा। आर्य शब्द उन को यहाँ पहले बसे 'दस्यु' से ही अलग नहीं करता था, बल्कि उनके भूमि और खेती प्रेम को भी सूचित करता है, और ऋग्वेद के ऋषि इस बात को भूले नहीं थे यथाः—

"हे दोनों अश्विन! तुम ने आर्यों को हल जोतना और बीज बोना सिखाया है। अनाज पैदा करने के लिये वृष्टि देकर और अपनी बिजली से दस्यु का नाश कर अपना प्रभाव दिखलाया है।" (१. ११७. २१)

क्षेत्रपति की स्तुति में कहा गया है—

"हम लोग इस खेत को 'क्षेत्रपति' की मदद से जोतेंगे बोयेंगे। वह हमारे जानवरों और घोड़ों की रक्षा करके हमें सुखी करें।" और एक जगह कहा गया है—

"हल के फाल जमीन को आनन्द से खोदें। मनुष्य बैलों के पीछे आनन्द से चलें। पर्जन्य पृथ्वी को मीठे मेह से तर करें। हे, शुन और सीर! हम लोगों को सुखी करें।"

आर्यों का खेती-प्रेम देखने योग्य है:-

"हलों को बांधो, जुओं को फैलाओ, और इस तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हुई भूमि पर बीज बोओ। अनाज हम लोगों के सूक्तों के साथ बढ़े। आस पास के उन खेतों में हंसुए चलें जहाँ कि अनाज पक गया है।"

"हल बांध दिए गए हैं। मजदूरों ने जुए फैला दिए हैं। बुद्धिमान लोग देवताओं की प्रार्थना कर रहे हैं।"

कहना न होगा कि खेती की समृद्धि के लिए संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली आवश्यक है। यही नहीं खेती का कार्य सुचारु और व्यवस्थित रूप से हो, इस के लिए एक व्यक्ति की प्रधानता भी आवश्यक है, जिसके आदेशों का सब ठीक ठीक पालन करें। मातृमूलक सभ्यता को न अपनाकर आर्यों ने पितृमूलक सभ्यता अपनाई। वैदिक समाज जनों या कबीलों का था। उन के संघटन से यह समाज बना था। जन की मूलभावना का विकास परिवार के आधार पर होता है। प्रत्येक जन के लोग यह मानते थे कि उनका मूल पुरुष एक है। इसलिए परिवार में वृद्ध पुरुष की प्रधानता रहती थी। राज्य के विकास की कल्पना भी इसलिए गृहपति से मानी गई है। यथा:—

विराड् वा इदमग्रं आसीत्।
तस्या जातायाः सर्वमविभेदि यमेवेदं भविष्यतीति
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत॥
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद॥
(अथर्व ८-१०-१-३)

राजसंस्था भी आर्यों की इस कारण पितामहतन्त्र थी। पितृ-पूजा चलाने का यही कारण है। पिता की आज्ञा मानना और पितृभक्ति ही पर्याप्त नहीं। 'पितृ देवो भव', 'मातृ देवो भव' का अर्थ जीवित माता-पिता की भक्ति से नहीं बल्कि पूर्वजों से और मूलपुरुषों से भी है। इससे यह सदा अनुभूति बनी रहती थी कि हम कौन हैं और क्या थे। तीन पीढ़ी पहले तक का श्राद्ध-तपर्ण इसी भाव से किया जाता था। तीन ऋणों की कल्पना भी इस कारण की गई। दूसरी बात यह थी कि माता अपने को पूर्णतः पिता में विलीन कर देती थी। पाणिनी ने इसी को सूचित करने के लिये सूत्र बनाया और 'मतापितरौ' का समास यही सूचित करता है कि घर में द्वैध-शासन नहीं चलता था, बल्कि केवल 'गृहपति' का शासन और आदेश चलता था। ग्रीस और रोम ने पहला भाव अपनाया। उन्होंने भी पितृमूलक सभ्यता अपनाई और पितृ-पूजा के वे उपासक बने। परन्तु भारत में इन दोनों भावनाओं को जोड़ा गया और संस्कारों, रीति-रिवाजों विश्वासों और कानूनों में इसको स्थान दिया गया। इस प्रकार जन्म होते ही बच्चे का सम्बन्ध पूर्वपुरुष के साथ जुड़ जाता था और कुल और गोत्र के सुन्दर घेरे में बंध जाता था। पूर्वजों और आश्रितों के साथ उसकी एकता सजीव थी। इसी प्रकार स्त्री पूर्णतया अपने पति के साथ पूर्ण और सजीव ऐक्य स्थापित करती थी। विवाह के समय इसलिए उसको पिता उपदेश देता था— 'यदि कभी पतिकुल और पितृकुल में से एक को चुनने का अवसर आए तो पतिकुल को चुनना, पितृकुल को नहीं।' यथाः—

"प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति॥"

नर नारी और पति और पत्नी की यह एकात्मता भौतिक यथार्थता नहीं, बल्कि सृजनात्मक कल्पना का यह एक प्रयत्न है। भगवान् को जिस कल्पना ने 'अर्द्ध-नारीश्वर' के रूप में देखा, उसके मूल में भी स्त्री पुरुष के बीच एकात्मता स्थापित करने का यह महत् प्रयत्न निहित है। नर के समान नारी भी एक व्यक्ति है। विशिष्ट इच्छाओं, मनोरथों और कल्पनाओं से युक्त है। परन्तु प्रयत्नपूर्वक सृजनात्मक क्रियाशीलता द्वारा वह पति की अर्द्धांगिनी बन जाती है। आर्य आदर्शों से प्रभावित और अनुप्राणित व्यक्तियों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी के वैयक्तिक प्रयत्नों द्वारा हमारा पारिवारिक जीवन इस प्रकार का बनाया जा सका जो शतियों के प्रहारों, आघातों और धक्कों को सह सका और आज भी जीवित है।

दूसरा मूलतत्व वर्णाश्रमधर्म है। यह जन्म के आधार पर नहीं। इसका निर्माण 'गुणकर्मविभागशः' किया गया। ये परस्पराश्रित हैं। ये एक दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकते। यह चार भागों में विभक्त है—(क) सृजनात्मक बौद्धिक आदर्श प्राणिवर्ग, (ख) संरक्षणात्मक और संगठनात्मक कार्य करने वाला वर्ग, (ग) सम्पत्ति का उत्पादक और वितरक वर्ग, (घ) समाज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सेवा करने वाला वर्ग। समाज की रचना की कल्पना देश और काल की सीमाओं का विचार न करके की गई। वर्णाश्रमधर्म की व्यवस्था जब कल्पना में थी, या जब आर्यों ने इसकी रचना की थी तब इस देश में दो जातियाँ थीं, एक विजयी और दूसरी पराजित। उन दोनों की अलग अलग सभ्यता और संस्कृति थी। आर्य गौरवर्ण और ऊँची नासिका के थे। दस्यु कृष्णवर्ण और चपटी नाक के थे। आर्य अपनी राजनीतिक विजय को सांस्कृतिक विजय में परिणत करने में प्रयत्नशील थे। इसलिए वे अपनी रीतियों और परम्पराओं की सुरक्षा के लिए अधिक व्यग्र और चिन्तित थे। यहाँ के निवासियों द्वारा जीते न जाँय, इसलिए रक्तशुद्धि का उनको विशेष रूप से ध्यान था। परन्तु वर्णभेद कड़ा न था। वशिष्ठ विशुद्ध आर्यवंश के सम्भवतः नहीं थे। पराशर की भी यही बात समझनी चाहिए। कृष्णद्वैपायन की माता तो मछली मारने वाले की कन्या थी। कवश ऐल्यूस, वत्स, सत्यकाम, जाबाल, महिदास, ऐत्रेय ये सब प्रसिद्ध ऋषि हैं। इनकी नसों में शुद्ध रक्त बहता था। इस से प्रकट है कि कोई वर्ग और श्रेणी तुच्छ और क्षुद्र नहीं समझी जाती थी। सब की सामाजिक स्थिति समान थी। अनार्य लोग भी बाद में आर्य बना लिए गए। वे भी इन चार वर्णों और आश्रमों के अन्दर सम्मिलित कर लिए गए। 'व्रात्यस्तोम' की रचना इसी उद्देश्य से की गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का भेद और वर्गीकरण केवल एक श्रेणी-भेद तथा दार्शनिक वर्गीकरण था। दूसरी ओर आश्रम मानव जीवन को चार पड़ावों में बाँटने के लिए था। पहले दो आश्रम सर्वसाधारण के लिए थे। पिछले दो परिपक्व, अनुभव-स्पष्ट, निर्भीक और निष्पक्षपात विचार और अध्ययन तथा सर्वत्याग कर जनसेवा के लिए थे। आर्य जीवन को एक आदर्श जीवन बनाने के लिए यह विभाग किया गया था।

कर्ममय जीवन

आर्य संस्कृति का एक मूलतत्व है कर्ममय जीवन। प्रवाह-पतित तृण के समान जीवन व्यतीत करना आर्य संस्कृति की शिक्षा नहीं। आर्य संस्कृति का आधार कर्मवाद है। 'कर्म में बसते हैं भगवान्', यह उसके मूल में निहित है। प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोत्तम पाने के लिए, सर्वोत्तम जीवन-यापन करने के लिए, जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जीवन एक ध्येय की पूर्ति और एक लक्ष्य की सिद्धि के लिए होना चाहिए। कर्मफल का सिद्धान्त आर्य संस्कृति की एक मुख्य विशेषता है। कृतकर्म कभी नष्ट नहीं होता। छोटे से छोटा काम भी अवश्य फल देता है। आर्य संस्कृति इस विश्वास से ओत-प्रोत है:—

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥"

आर्य संस्कृति में निराशा और हताशा का कोई स्थान नहीं। निष्क्रियता के लिए इस में कोई जगह नहीं। मृत्यु भी अविरत प्रयत्न और कर्म में बाधक नहीं। क्योंकि कविकुलगुरु कालिदास का विश्वास है कि मरण प्रकृति है, और जीवन ही विकृति है:—

"मरणं प्रकृति शरीरिणां।
जीवनं विकृतिरिति उच्यते॥"

परन्तु इसका आधार अपना देश है, अपनी जन्मभूमि है। आर्यावर्त्त की सुन्दर कल्पना और इसकी परिभाषा समय समय पर निर्धारित की गई। इसकी सीमा इस बात का प्रमाण है कि प्रचीन आर्यों को अपने देश के प्रति कितना उत्कट अनुराग था और उसके प्रति कितनी अगाध भक्ति थी। मातृभूमि के प्रति आर्यों की भावना के कुछ उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगाः—

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यंते पृथिवी स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।

"पर्वत हिमदल से आच्छादित और डूंगर तेरे माता,
हरियाले अरण्य आदि हों हम को सबविधि सुखदाता।
हे पृथ्वी, ध्रुवभूमि तुम्हारी सुन्दर भूरे रंगवाली,
लोहित वर्ण इन्द्र रक्षिता है जो बहुरङ्गी काली,

उस में ही हम बसें, बने वह हम सब का अतिसुन्दर घर,
अक्षत अजित अहत होकर हम रहें अधिष्ठित माँ उस पर।"

और देखियेः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यामश्विनाव मिमात्व विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपति ॥
सन्ना नो भूमि विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ।
अर्थात्—

"जिस पर विष्णु चले, जिसको था अश्विनियों ने नाप लिया,
इन्द्र शचीपति ने जिसको अपने हित शत्रुविहीन किया,
हम पुत्रों के लिये सदा माता-सी जो है सुखकारी,
मीठा दूध प्रदान करे वह महती भू-माता प्यारी ॥

आर्य संस्कृति का देशप्रेम एक आवश्यक अंग है । क्योंकि आर्य संस्कृति से अनुप्राणित जीवन का एक चरम लक्ष्य है । लक्ष्य भी साधारण नहीं । अत्यन्त ऊँचा और महान् है । जीवन के बन्धनों से जन्म और मरण के चक्र से मुक्ति पाना है । आर्य संस्कृति से अनुप्राणित जीवन इस लक्ष्य की पूर्ति में लगना चाहिये । इसके लिये देश की स्वाधीनता आवश्यक है । देश के पराधीन रहते हुए जीवन अपने लक्ष्य की ओर आगे नहीं बढ़ सकता ।

संस्कृत भाषा में हमारे पूर्वजों का संचित ज्ञान और अनुभव सुरक्षित है । संस्कृत ही अपने पूर्वजों के साथ हमारा सम्बन्ध जोड़ती है और ज्ञान गंगा के प्रवाह को अटूट रखे हुए है, इसलिए उस की उच्चता और योग्यता स्वीकार की गई और संस्कृत को देववाणी कहा गया ।

पूर्वजों और प्राचीन पितरों के प्रति उत्कट श्रद्धा और अगाध भक्ति प्रकट करने के लिये उनकी वाणी को 'देववाणी' कहा गया और वेद को अपौरुषेय बाद में माना गया । पूर्वजों से सतत सम्बन्ध बनाए रखने, भूत पर दृष्टि रख कर आगे बढ़ने और भविष्य का निर्माण करने के लिये यह उपाय किया गया । फलतः घोर विपत्ति में भी हमने अपने आप को कभी निरवलम्ब और निराश्रय नहीं पाया और विषम और विपरीत स्थितियों में भी हमारा पग आगे बढ़ता गया । इसी का यह परिणाम है कि पराधीन होने पर भी इस बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में भारत ने विश्व को रवीन्द्र, अरविन्द और गाँधी सरीखी ओजस्वी और प्राणवान् विभूतियाँ प्रदान कीं और विश्व-साहित्य में महत्त्वपूर्ण अंशदान किया । एशिया के अन्य देश यह नहीं कर सके । इस एक बात से आर्य संस्कृति की महत्ता समझी जा सकती है ।

इसका यह अर्थ नहीं कि हम इसको मूलरूप में ही आज भी अपनाएँ । काल के अनुसार इसको बदलना आवश्यक है । पर इसके आवश्यक और मूल अंगों की रक्षा करके यदि हम आगे बढ़ेंगे तो हमारा पैर सदा भूमि पर रहेगा और हमारी दृष्टि आकाश में दूर क्षितिज पर रहेगी और हम स्थिरता और दृढ़ता के साथ बढ़ सकेंगे । संस्कृति अन्ततोगत्वा एक माध्यम है, जिससे अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ और मानस शक्तियाँ विभिन्न रूपों में प्रकट होती हैं । इसलिये बाह्यरूप का मोह त्याग करके इसका वह रूप ही हमें ग्रहण करना चाहिये, जो आज भी जीवन-दायी है, शक्तिवर्द्धक है और प्राणवान् है । आर्य संस्कृति में आज भी वह तेज और प्रकाश है जिससे हमें नया तेज और प्रकाश प्राप्त हो सकता है । अतः भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास करते हुए उसके मूल-स्रोत को न भूल जाना चाहिये और न उसकी उपेक्षा करनी चाहिये । भारतीय जीवन को सरस और बहुविध प्रकार का और विविधतामय बनाए रखने के विचार से भी उसका आदर और सम्मान होना आवश्यक है । वह एक अनमोल निधि है । उसको खोना अपनी पूंजी को गंवा देना है । अतः हम जिस नवीन भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास करें उसकी नींव में आर्य संस्कृति को स्थान देना न भूलें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा शिवप्रसाद

'सितारे हिन्द'

श्री के. सजनलाल, एम० ए०

[श्रीयुत कासिम अली सजनलाल एम० ए० उस्मानिया विश्वविद्यालय में इतिहास के प्राध्यापक हैं—सं०]

बाबू शिवप्रसाद भारत के एक विशिष्ट पुरुष थे। विद्वानों में उनके कार्य का उचित आदर नहीं हुआ। वे कवयित्री श्रीमती रतन कुँवर के पोते और सर सैयद अहमद खां के समसामयिक थे। अंग्रेज़ों की छत्रच्छ या में पले हुए तथा शिक्षाप्राप्त बाबू शिवप्रसाद को उनके गुण दोष पहिचानने तथा अंग्रेज़ों को निकट से अध्ययन करने का बहुत अवसर मिला। उनकी सच्चाई और कार्यपरायणता के कारण भारत में रहनेवाले अंग्रेज शीघ्र ही उनके प्रशंसक बन गये और हेनरी केर टकर सदा उनकी बड़ी प्रशंसा करते थे। श्री एच० सी० टकर ने एक घटना का ज़िक्र किया है जिससे शिवप्रसादजी की कर्तव्यपरायणता और विद्याप्रेम का पता लगता है। सन् १८५२ की बात है। एक बार तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौज़ी अपने कुछ नौकरों, ज़िले के कलक्टर तथा नवयुवक विद्यार्थी शिवप्रसाद के साथ कालका से शिमला जा रहे थे। गवर्नर जनरल रास्ते के एक डाक बंगले में ठहरे और कलक्टर और उनके साथी पास ही के एक ज़मींदार के घर गुलछर्रे उड़ाने के लिए चले गए। इस नवयुवक विद्यार्थी ने बंगले के एक कोने में अपना कपड़ा बिछाया और कड़ाके की सर्दी में थकावट और भूख की परवाह किये बिना वह अपनी पढ़ाई में लग गया। गवर्नर जनरल की अचानक उस पर दृष्टि पड़ गई और वे इस विद्यार्थी की तत्परता से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने उसे प्रोत्साहन दिया और अपनी प्रसन्नता को प्रदर्शित करने के लिए कुछ पुस्तकें भेजने का वचन दिया।[1]

आप कुछ समय तक महाराजा भरतपुर के वकील रहे और बाद में बहुत से तत्कालीन शिक्षाशास्त्रियों के संसर्ग में रहने से प्राप्त विशाल अनुभवों तथा शिक्षा के बारे में अपने प्रगतिशील विचारों के कारण पाठशालाओं के निरीक्षक नियुक्त कर दिये गये। जनता की नैतिक और सांस्कृतिक प्रगति तथा उन्नति में उन्हें विशेष रुचि थी। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। वे 'बनारस अख़बार' का सम्पादन भी करते रहे।[2] वे तत्कालीन समस्याओं पर निरन्तर भाषण करते और लिखते रहते थे और जनमत को जागृत करने में उन्होंने बहुत कार्य किया। परन्तु लोगों को उनके अंग्रेज़ी विचार पसन्द नहीं थे, इसीलिए 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' तथा 'बंगाल पत्रिका' ने उन्हें अंग्रेज़ों का एक "जी हुज़ूर" लिखा था। कुछ व्यक्ति उनकी हिन्दी-समर्थक योजनाओं के कारण भी उनसे असन्तुष्ट थे।[3] सन् १८८३ में उनके विरुद्ध वायसराय के पास स्मृति-पत्र भेजे गये थे जिनमें लिखा था कि वे उत्तर-पश्चिमी-प्रान्त के लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इन्हें तत्कालीन उर्दू समाचारपत्रों ने प्रकाशित किया था। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि उनके अपने नगर में उनका पुतला बनाकर जलाया गया था।[4]

---

१. देखिए के० सजनलाल का लेख "ओमदातुल-अकबर" आइ० एच० आर० पी० १९४८ पृ० १०८

२. ब्रजरतनदास खड़ी बोली "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ११४-११५

३. गार्सिन-तास्सी का भाषण, देखिए उर्दू ० एप्रिल १९४० पृ० २६६-२६८ और सर सैयद का पत्र, उर्दू अक्तूबर १९४४

४. डब्ल्यू० सी० ब्लंट, इण्डिया अण्डर रिपन, पृ० १२० और दब्दाबाई सिकन्दरी, तिथि ३० जुलाई १८८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं एक पत्र-सम्पादक होने के नाते वे देशीय भाषाओं के समाचार पत्रों पर अंकुश रखने के पक्ष में थे। उन्होंने देवनागरी लिपि में उर्दू का समर्थन किया, अतः देशवासियों का एक भाग उन से रुष्ट हो गया। यह बड़ी विचित्र बात है कि इल्बर्ट विधेयक के बारे में उन्होंने अंग्रेज़ों का पक्ष लिया जब कि सैयद अहमद और क्रिस्टोपाल ने विधेयक का विरोध किया।[1]

परन्तु वे अंग्रेज़ों के अन्ध-भक्त नहीं थे और वे उनके प्रति अत्यधिक आदर, प्रेम और श्रद्धा होते हुए भी जिस चीज़ को अन्यायपूर्ण और ग़लत समझते थे उस बारे में अंग्रेज़ों की आलोचना करने से नहीं चूकते थे। अंग्रेज इतिहासकार स्वभाविकतया सन् सत्तावन के ग़दर का सारा दोष भारतीयों के सिर मढ़ते थे परन्तु उन्होंने सिंह के समान अपना साहस प्रदर्शित कर स्पष्ट शब्दों में इसकी निन्दा की और उसका तीव्र प्रतिवाद किया। सम्भवतः वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने १८५८ में यह कहा था कि भारतीय सेना के सब सैनिकों को हिन्दी पढ़ाई जाए। उस समय यह एक असाधारण सुझाव था। वे जिसमें भारत की भलाई समझते थे उसे साहसपूर्वक स्पष्ट कह देते थे चाहे वह किसी को पसन्द आए या न आए। उन्होंने विद्रोह के समय अंग्रेज़ों के अपनी मनमानी करने की तीव्र निन्दा की, तथापि वे इसे "सिपाही विद्रोह" ही कहते थे। उन्होंने इस बात को नहीं माना कि यह एक राष्ट्रीय-विद्रोह था।

अपने समकालीन राजा जयकृष्णदास तथा सलामत अली के साथ २८ मई १८७० को उन्हें सी. एस. आई. की सम्मानजनक उपाधि से विभूषित किया गया। सर सैयद अहमद को १० मास पूर्व ही यह सम्मान प्राप्त हो चुका था।

भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व एक खूनी क्रान्ति हुई। खून, मारकाट, पाशविकता, लूट, गोली मारना और हत्याएँ प्रतिदिन की साधारण घटनाएँ होगईं। स्थान-स्थान पर अंग्रेज़ों से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों से सैकड़ों इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते थे। विद्रोह के बारे में उनके क्या विचार हैं? इसके कारण क्या थे? क्या ईरानियों और रूसियों का इसमें कोई हाथ तो नहीं था? क्या चपातियों का कुछ विशेष अर्थ नहीं था? क्या दिल्ली के बादशाह ने विद्रोह को नहीं भड़काया? क्या लखनऊ का भूतपूर्व नवाब इस में सम्मिलित नहीं था? लोगों ने विद्रोह क्यों किया? कारतूसों से इस का क्या सम्बन्ध था? विद्रोह के इतिहास से उनका क्या तात्पर्य है? अन्ततः ऐसा क्या हो गया था जिससे सिपाही अपने अधिकारियों तथा निर्दोष स्त्रियों और बच्चों की हत्या के लिये उठ खड़े हुए? लोगों में सरकार की नीयत पर सन्देह कैसे पैदा हुआ? क्या यह उचित नहीं है कि ऐसे राष्ट्र को जितनी जल्दी समाप्त कर दिया जाय उतना ही अच्छा है? भारतीय अपनी शिक्षा की ओर स्वयं ध्यान क्यों नहीं देते? क्या सरकार जनता को शिक्षित बनाने के लिये इतनी बड़ी धनराशि खर्च कर सकती है? यह धन कहाँ से आएगा?

इसमें आश्चर्य नहीं कि अपने यूरोपियन मित्रों और हितैषियों के सुपरिचित श्रीयुत शिवप्रसाद भी विद्रोह के बारे में "क्यों और कैसे" के प्रश्नों से नहीं बच सके। लोगों के लिए उनसे यह आशा करना स्वाभाविक था कि वे सारा दोष भारतीयों के मत्थे मढ़ देंगे। परन्तु शिवप्रसाद जी का रोम-रोम देश भक्ति से परिपूर्ण था और इसीलिए वे अपनी भावनाओं को दबा नहीं सके। यदि उनसे अपने व्यक्तिगत विचारों को व्यक्त करने के लिये कहा गया होता तो वे शायद इस प्रकार आरंभ करते—"मैं अपने मन को आप के सामने खोल कर रख देना चाहता हूँ। मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि आप मुझ से कुछ ऐसी बात कहने की आशा रखते होंगे जिसे कि मैंने कहा ही नहीं था अथवा मैं समझता हूँ कि मैंने कहा ही नहीं था।" वे भारत माता के एक महान् सुपुत्र थे। वे असत्य को सहन नहीं कर सकते थे। श्री एच. सी. टकर को, जो कि उनका बड़ा आदर करते थे और उनकी सच्चरित्रता तथा सच्चाई के बड़े प्रशंसक थे श्री शिवप्रसाद ने लिखा था "मैं आप को वह स्मृति-पत्र भेज रहा हूँ जिसका कि मैंने वचन दिया था। मुझे आशा है कि आप इसे बिलकुल गुप्त रखने की चेष्टा करेंगे क्योंकि यदि यह किसी अन्य के हाथ लग गया तो इससे मुझे बहुत क्षति पहुँचेगी और

---

१. अल्ताफ़ हुसेन हाली, हयाते-जावेद, भाग २ पृ० १०९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे कहीं का न रहने दिया जाएगा।[1]" निस्सन्देह, परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि यदि शिवप्रसाद जी का वह पत्र अंग्रेजों के हाथ लग जाता तो बहुत संभावना थी कि उन्हें गोली मार दी जाती। टकर एक सच्चा मित्र सिद्ध हुआ और उसने अपने वचन को निभाया तथा इस रहस्य को उसने अपने तक ही सीमित रखा, किसी को एक शब्द भी नहीं बताया गया; क्योंकि वह अच्छी तरह जानता था कि दीवारों के भी कान होते हैं। भारतीय जनता से सहानुभूति रखने के कारण "Friend of India" पत्र को टकर से भी घृणा थी। शिवप्रसाद जी अपने पत्र में लिखते हैं, "मैं यह स्पष्टतया कह सकता हूँ कि आपको इस पत्र में बहुत-सी अनुचित धारणाएँ, मूर्खतापूर्ण विचार, कटु शब्द तथा धृष्टतापूर्ण वाक्य और अपने विपरीत सम्मतियाँ मिलेंगी। परन्तु श्रीमन्, आप जानते ही हैं......मैं असत्य के अतिरिक्त, जो कि अक्षम्य है, अपने सब अपराधों के लिए क्षमा की आशा रखता हूँ।" क्या ये विचार अर्थहीन थे? जब कि कोई इसे पढ़ता है तो उसे इसमें लेखक के हृदय की धड़कन सुनाई देती है। क्योंकि शिवप्रसाद जी ने उपरोक्त कारणों से "विद्रोह के कारणों तथा उसके उपचार के विषय में एक उत्तर–भारतीय के विचार" नामक विख्यात लेख या स्मृतिपत्र पर लेखक के रूप में अपना नाम नहीं दिया था, इसलिये किसीने लेखक का नाम जानने की चेष्टा नहीं की और साधारणतया अज्ञात पत्र या स्मृतिपत्र, चाहे वे कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न हों अपना सारा महत्व खो देते हैं। यह विदित है कि सर सैयद अहमद खां ने "विद्रोह के कारण और उपचार" शीर्षक से १८५८ में उर्दू में एक पुस्तिका निकाली थी, जो कि आगरा के Mufasalite Gazette Press से प्रकाशित हुई थी। संसद् के सदस्यों को इसकी ५०० प्रतियाँ भेजी गईं थीं और भारत सरकार को केवल एक प्रति। कर्नल ग्राहम ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद कर इसे १८७३ में प्रकाशित किया था। भारत में भारतीयों और अंग्रेजों में विद्यमान खाई को पाटने में इस पुस्तिका से कितनी सहायता मिली इसका मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' ने अपनी "हयात-ए-जावेद[2]" में विशद वर्णन किया है।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इतने ही महत्वपूर्ण एक अन्य पुस्तिका के लेखक श्री शिवप्रसाद अज्ञात ही रहे। यदि वे इसके लेखक के रूप में प्रसिद्ध होते तो उनका भी कोई जीवनी-लेखक होता, जो कि उन के लिये भी वही कुछ करता जो कुछ हाली और ग्राहम ने सर सैयद अहमद खां के लिये किया है।

उन्होंने टकर से कहा, "आपके कल के प्रश्न के विषय में कि अब क्या किया जाना चाहिए, यह बिना जाने कि यह किस मनुष्य द्वारा किया जाना चाहिए कुछ नहीं कहा जा सकता। इस देश में क्या कार्य है इसको जानने की अपेक्षा हमें यह जानना चहिए कि जिसने इस कार्य को किया है वह कौन है और उसकी इस कार्य को करने की क्या क्षमता और योग्यता है? आगे चलकर वे कहते हैं, "यदि सरकार जनता को क्रुद्ध करने के लिये दृढ़ निश्चय कर चुकी है और अपने हाथ और हृदय को उन पर आतंक जमाने के लिये प्रयुक्त करना चाहती है तो मैं नहीं समझता कि तीन लाख अंग्रेज सिपाही भी भारत को शान्त रख सकेंगे, यद्यपि इसे संपूर्ण रेगिस्तान बनाने के लिये इन में से केवल पचास हजार ही काफ़ी हैं।[3]

शिक्षा के विषय में श्री शिवप्रसाद ने कहा था, "मेरा यह दृढ़ विचार है कि यदि इस देश में जनता और सरकार दोनों को किसी चीज़ से लाभ पहुँच सकता है तो वह धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षा है। चाहे मैं सरकार की दानशीलता पर निर्भर रहूँ या अपने व्यक्तिगत साधनों पर, चाहे मेरे अधीन बड़े बड़े ज़िले हों या अपने सम्बन्धियों के ही केवल कुछ लड़के, मैंने इसे अपने जीवन का कार्य बना लिया है और इस में मुझे भगवान् से सहायता की आशा है।"

[आगामी अंक में समाप्य]

---

१. The thoughts of a nature of Northern India, P. 7.
२. अल्ताफ़ हुसैन 'हाली', हयात-ए-ज़ावेद, भाग १० ३ ६५
३. The thoughts of a Native of Northern India, P. 7.
The Cambridge History of India, Vol. 5, dose not even make a reference to it in its bibliography on the Mutiny, vide, Pp. 618 to 619.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाहिक उपन्यास

रज़ाकार

श्रीराम शर्मा

●

(२)

हैदराबाद कँाग्रेस का अधिवेशन क्या समाप्त हुआ राज्य भर का वातावरण ही बदल गया। हैदराबाद ही क्यों उस समय पूरा भारत ही किसी बहुत बड़े परिवर्तन की तैयारी में लगा हुआ था। इसमें अब कोई सन्देह नहीं रह गया था कि अंग्रेज़ जल्दी ही भारत छोड़ जाएँगे। अंग्रेजों के भारत छोड़ने की तिथि भी निश्चित हो चुकी थी। यद्यपि देश में कुछ पढ़े-लिखे लोग भी कहते सुनाई देते थे-"भला अँग्रेज़ हिन्दुस्तान यों ही छोड़ देंगे ? जर्मनी का हिटलर तो अँग्रेज़ को हटा नहीं सका, यह कँाग्रेस उसे हिन्दुस्तान से क्या हटायेगी। इसमें भी अँग्रेजों की गहरी चाल होगी।"

एक ओर युद्ध समाप्त होने पर भी मँहगाई कम नहीं हुई थी। चीजों के दाम बढ़ते ही जा रहे थे। गेहूँ, शक्कर और यहाँ तक कि जवार और मोटा कपड़ा बाजार से एकदम गायब हो चुके थे और काले बाजार में खुल्लम-खुल्ला बिक रहे थे। देश का मध्यम-वर्ग और ग़रीब लोग बहुत ही परेशान थे। लड़ाई के ज़माने में लोगोंको काम मिल जाता था, जिससे रुपया खर्चने में कुछ बुरा नहीं लगता था। रुपये की जगह दो रुपये खर्चने में जी हिचकता नहीं था। किन्तु आज स्थिति बदल गई थी। फ़ौज, कारखानों यहाँ तक रेल-विभाग से भी हजारों कर्मचारी पृथक् किये जानेवाले थे। दिल्ली की पुलिस ने नोटिस दे दिया था कि अगर उनकी तनख्वाह न बढ़ाई गई तो वह हड़ताल कर देगी।

पुलिस हड़ताल कर देगी ? बहुत ही विचित्र समाचार था। जिस हड़ताल को रोकने में आज तक पुलिस अपना खून-पसीना एक करती रही उसी के चक्रव्यूह में हड़ताल पहुँच चुकी थी। दूसरी तरफ़ रेल के कर्मचारियों ने ऐलान कर दिया अमुक तिथि से पूरे भारत के रेल-कर्मचारी अनिश्चित समय के लिए हड़ताल कर देंगे। लोगों में इस घोषणा से बड़ी घबराहट फैल गई। यदि रेलें रुक गईं तो काम कैसे चलेगा।

आँधी-मेह टल जाय लेकिन अंग्रेज़ सरकार की रेल और डाक नहीं रुक सकती, किन्तु इस सरकार की ये दोनों चीजें ही काम करने से इनकार कर रही थीं। इस बात की अफ़वाह भी ज़ोरों पर थी कि डाक-तार भी बिलकुल बन्द हो जाएँगे।

इन बातों को सुन सुन कर लोग चिन्तित दिखाई देते थे। बड़े-बूढ़ों का कहना था—"रानी विक्टोरिया ने बहुत तप करके वर माँगा था कि मेरी तीन पीढ़ियाँ भारत में एकछत्र राज्य करें।" सो उसकी तीन पीढ़ियों का राज्य समाप्त हो चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई कहता था— अंग्रेज़ों के पुण्य प्रताप से भारत-वासी सुख चैन से रहते रहे। लोग स्वराज्य माँग रहे थे और जब अंग्रेज़ों ने कहा अच्छा लो स्वराज्य तो अब सभी परेशान हैं। बात दर असल यह है जो राज करता आया है उसीका राज्य होगा। ऐरे गैरे क्या राज्य करेंगे?

जब इस तरह पूरे देश में एक भयानक ज्वालामुखी फूट पड़ने के लिए अपनी शक्ति बटोर रहा था; पुलिस, रेल, डाक, सेना सभी पेट के सवाल पर अंग्रेज सरकार के खिलाफ़ बग़ावत करने की तैयारी में थे, तभी अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान को दो भागों में बाँट कर इस देश से चले जाने की बात कही।

अंग्रेज़ों के भारत से विदा होने की तारीख़ ज्यों ज्यों निकट आने लगी त्यों त्यों पूरा दृश्य ही बदलने लगा। जो स्वतंत्रता आ रही थी उसके बारे में लोग तरह तरह की कल्पना करते थे, गान्धीजी नित्य प्रति अपनी प्रार्थनाओं में कहा करते थे "हमारी स्वतंत्रता ऐसी होगी जिसमें न आँसू होंगे और न किसी के मुँह से दुःख के कारण आह निकलेगी।" उन दिनों गाँधीजी जहाँ जाते संध्या समय अवश्य प्रवचन करते थे और उस प्रवचन को भारत के सभी समाचारपत्र छापा करते थे। गाँधीजी किसी दिन कहते थे "मैं भारत के प्रथम राष्ट्रपति के आसन पर किसी हरिजन कन्या को आसीन करूँगा" तो किसी दिन कहते "वाइसराय के इतने बड़े भवन को मैं हरिजन कालोनी में बदलवा दूँगा।"

आनेवाली स्वतंत्रता की कल्पना के कारण मजदूर-वर्ग और भूखे-प्यासे बहुत ही आशावान् दिखाई देते थे। ऐसे किसानों की कमी नहीं थी जो रात को सोते समय स्वप्न लिया करते थे जैसे उनके खेतों के पास से लहराती हुई नहर जा रही है। आषाढ़-सावन में पानी नहीं बरसा फिर भी उनके खेत लहलहा रहे हैं, अब उनकी ज़मीन पर उनका अधिकार है। उसे वर्ष की समाप्ति पर कोई छीन नहीं लेगा। किसान के पूरे परिवार ने उस ज़मीन को अच्छी तरह जोता है, उसमें खूब खाद दी गई है और अब फ़सल काटने का अवसर आ रहा है। फ़सल पहले से दसगुनी होगी। अब वह सरकार को बहुत कम मालगुज़ारी देगा। सारा पैसा उसके पास रहेगा! छप्पर की जगह वह एक सुन्दर हवादार घर बनवायगा, जिसके एक कोने में छोटी-सी फुलवारी होगी। घर के पिछवाड़े उसकी गाय-भैंस बँधी रहेंगी। तब चोरों का तो डर रहेगा नहीं, फिर जानवरों को बन्द रखने से क्या फ़ायदा? सोते-सोते किसान स्वप्न लेते थे जैसे गाँव भर में एक भी कच्ची झोंपड़ी नहीं रह गई। गाँव में अच्छा दवाखाना है। बच्चों के पढ़ने के लिए पाठशाला है। जब किसान प्रातः उठते ही अपनी झोंपड़ी को वर्षा ऋतु में टपकता पाते तो अपने मन को समझाते, कोई बात नहीं, अब यह हाल अगले साल नहीं रहेगा। जवाहरलाल का राज होने वाला है।

किन्तु कुछ स्थानों के लिये १५ अगस्त सन् १९४७ का दिन जैसे मृत्यु और विनाश का सन्देश ला रहा था। पंजाब में इस विनाश के ताण्डव के लिए डमरू पर थाप दी जा रही थी और हैदराबाद में भी उसके घुंघरू अपनी भयानक ध्वनि से जनता को विचलित कर रहे थे।

शंकर एक दिन रात को जब घर लौटा तो उसकी माँ ने बड़े ही रोब से कहा—'कल से बेटा संध्या होते ही घर आ जाया करो। तुम्हें मेरी सौगन्ध, कुछ दिन सँभल कर चलो। समय बड़ा बुरा आ रहा है।"

शंकर माँ की बातों को सुनी-अनसुनी करके भोजन करने बैठ गया। शंकर चुपचाप खा रहा था। उसे बहुत ज़ोर से भूख लगी थी। वह अन्दर ही अन्दर कोई बात गंभीरता से सोच रहा था। शंकर की चुप्पी माँ की समझ में नहीं आ रही थी। माँ ने कुछ झिड़की देते हुए कहा—

"क्या सोच रहा है बेटा, तुझे तो जैसे घर की कोई चिन्ता ही नहीं। अपना मुहल्ला खाली हो रहा है। कुछ लोग अपने परिवार को हैदराबाद से बाहर भेज रहे हैं और कुछ लोगों ने सुलतानबाजार में घर किराये से लिया है। मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं, दिन भर अकेली पड़ी रहती हूँ, पर तुम्हारे कारण हृदय धड़कता रहता है। तुम कोठी पर कहीं प्रबन्ध कर लो, यहाँ आना छोड़ दो।"

इस बार शंकर का मौन टूटा। उसने कहा— "तुम तो पगली हुई हो। तुम समझती हो कोठी या सुलतान बाजार कोई क़िला है जिसमें रक्षा हो जायगी। अगर लड़ाई हुई तो सभी जगह होगी। यहाँ वहाँ जाने से कोई लाभ नहीं।"

शंकर किसी तरह माँ को समझा नहीं सका। इस बात को लेकर माँ बेटे में बहुत कुछ कहा सुनी भी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। अन्त में जब माँ ने आँखों में आँसू भर कर करुण स्वर से कहा—"बेटा मेरी आशा तुम ही हो। मैं तेरे कारण ही जीवित हूँ। मैंने कितने कष्टों से तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया है। बूढ़ी को किसी तरह दुखी मत बनाना।"

शंकर काफ़ी बड़ा हो चुका था फिर भी वह अपनी माँ के साथ एक ही खाट पर सोता था। माँ के लिए आज भी शंकर पाँच वर्ष का नन्हा बालक था और वह उसी तरह उसे थपक-थपक कर सुलाया करती थी। माँ के आँचल के नीचे शंकर अपनी सारी चिन्ताओं को भूल जाता था। शंकर जब तीन महीने का था तभी उसके पिता का देहान्त हो चुका था। माँ ने उसका कितने कष्टों से पालन किया है इसे केवल माँ ही जानती है। माँ ने दिन-रात परिश्रम कर के शंकर को सदा अच्छा खिलाया और अच्छा पहनाया है। शंकर को कभी अनुभव नहीं हुआ कि उसके पिता नहीं हैं या पिता के रहने से उसका कोई विशेष हित होता। माँ ने उसे हाई-स्कूल तक पढ़ाया भी। हाईस्कूल में पढ़ते समय उसके साथियों को कभी इस बात का पता नहीं चल सका कि शंकर पितृहीन है और वह ग़रीब माँ का लड़का है। कुछ भी होता शंकर की माँ महीने की तीस-इकतीस तारीख़ को स्कूल की फ़ीस चुका देती और सब से पहिले बाज़ार से पुस्तकें लाने के लिए पैसे मुहैया कर देती। उसके पास एक की जगह चार कापियाँ रहती थी।

शंकर को किसी बात की चिन्ता नहीं थी। बाहर स्वतन्त्र रहते हुए भी वह अनुभव करता था जैसे उसकी माँ की छाया साथ साथ चल रही है और माँ के स्नेह ने जैसे उसके जीवन को पूर्ण बना दिया है, यही कारण है कि उसने अपनी स्वतन्त्रता का कभी दुरुपयोग नहीं किया। उसने अपने समय को कभी यों ही व्यर्थ नहीं खोया। ज्यों ज्यों उसकी आयु बढ़ती गई वह माँ के परिश्रम को समझने लगा। उसके साथियों को यह जानकर आश्चर्य होता था कि दसवीं श्रेणी तक पहुँचने पर भी शंकर ने केवल भरत-मिलाप और रामराज्य नामक सिनेमा देखे थे और वे भी अपनी माँ के साथ। उसके साथी बहुत ही आग्रह करते थे किन्तु न जाने माँ ने उसके मन में सिनेमा के प्रति कैसी घृणा भर दी थी कि वह लाख प्रयत्न करने पर भी सिनेमा-घर में जाने का नाम नहीं लेता था। हाईस्कूल की पढ़ाई समाप्त करके शंकर ने एक निजी पाठशाला में अध्यापन का काम शुरू किया। साठ-सत्तर में माँ-बेटे मज़े से दिन गुज़ार रहे थे।

माँ सन्तुष्ट थी। वह भगवान् से प्रार्थना करती थी—"भगवान् तुमने मुझे जो कुछ दिया है, मेरे लिए बस है। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं आप को अधिक के लिए कष्ट नहीं दूँगी। लेकिन जो कुछ मिला हुआ है उसे कभी छीनना मत।"

शंकर को एक मात्र व्यसन था पढ़ने का। यद्यपि उसने केवल हाईस्कूल की परीक्षा पास की थी किन्तु कई विषयों में उसका ज्ञान किसी स्नातक से कम नहीं था। बचपन से ही वह अपने अवकाश का समय आसफ़िया लाइब्रेरी में बिताता था। अच्छे अच्छे मासिक पढ़ने से उसकी भाषा बहुत सुधर गई थी। उसने हिन्दी और तेलुगु कभी पढ़ी नहीं थी, केवल समाचार-पत्रों और मासिकों के सहारे उसका इन भाषाओं पर भी अच्छा अधिकार था। वह नयें नये विषयों पर भी पढ़ा करता था और जो बात समझ में नहीं आती उसे अपने साथियों से पूछ लिया करता था। आयु के साथ उसका मातृ-स्नेह कम होने के स्थान पर बढ़ता ही गया।

यही कारण है जब माँ ने अलग रहने के लिए अनुरोध किया तो वह अपने प्राणों के मोह में पड़ कर माँ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ। माँ के सामने सबसे बड़ी चिन्ता यह थी कि यदि वह भी चली गई तो घर का सामान चोर-उचक्के ले जाएँगे। पूरा सामान तो नई जगह ले जाया नहीं जा सकता। सामान क्या था, टूटी-फूटी दो चारपाइयाँ, कुछ बर्त्तन और बिछौने, लेकिन सामान का भी कोई ठिकाना है। ग़रीब हो या अमीर जब तक घर का सामान घर में रहता तो आँखों में नहीं जँचता और जब उसे एक जगह जमा किया जाय तो मालूम होता है इस सब को ढो कर कैसे ले जाया जाए?

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-विवेचन

(समालोचना के लिए पुस्तक की दो दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम भेजी जानी चाहिएँ)

पुस्तक..............**हिन्दी काव्य धारा।**
लेखक...............राहुल सांकृत्यायन।
प्रकाशक.............किताब महल, इलाहाबाद।
मूल्य.................सात रुपए।

(गताङ्क से आगे)

जिस प्रकार संस्कृत के नाटकों में प्राकृत की छाया संस्कृत भाषा में दी जाती है उसी प्रकार श्री राहुलजी ने यह सिद्ध करने के लिए कि अपभ्रंश भाषा हिन्दी ही थी, बाएँ पृष्ठ पर अपभ्रंश की कविता को प्रकाशित किया है और दाएँ पृष्ठ पर कविता में ही उसके हिन्दी रूप को। क्योंकि गोरखनाथ की कविता की भाषा हिन्दी ही है—अपभ्रंश नहीं इसलिए उनकी कविता को और इसी प्रकार चन्द बरदाई की कविता के संग्रह को बिना किसी प्रकार की छाया के प्रकाशित किया गया है। गोरखनाथ की कविता की भाषा में किसी प्रकार की विशेष क्लिष्टता नहीं प्रतीत होती परन्तु चन्द बरदाई की कविता में क्लिष्टता स्पष्ट ही अनुभव होती है। संस्कृत के नाटकों में प्राकृत से संस्कृत की छाया व्याकरण के सिद्धान्तों के अनुसार की जाती है और उसमें प्राकृत में छन्द ठीक रहता है, संस्कृत की छाया में नहीं परन्तु यहाँ जो हिन्दी का रूप लिखा गया है वह अपभ्रंश की छाया नहीं-उसका रूपांतर है जो अपनी इच्छा के अनुसार कर दिया गया है। इस रूपान्तर के कारण अपभ्रंश भाषा के स्वरूप को यथार्थ रूप से समझने में न केवल सहायता ही प्राप्त नहीं होती अपितु उससे कई प्रकार के भ्रम भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस रूपान्तर के कारण एक तो बहुत-से पाठक अपभ्रंश के रूप का गम्भीरता से अध्ययन करने का प्रयास नहीं करते दूसरा उनके इस हिन्दी रूपान्तर को कई लोग अपभ्रंश जितना प्रामाणिक समझने लग जाते हैं जब कि वह उतना प्रामाणिक नहीं है। संग्रह-कर्ता महोदय ने पुस्तक के अन्त में "कुछ ख़ास देहाती और तद्भव" शब्दों की एक छः पृष्ठों की छोटी-सी सूची दी है। पता नहीं उन्होंने इन शब्दों को क्यों "ख़ास और देहाती" समझा है। इन शब्दों पर कहीं-कहीं उन्होंने कुछ छोटी-सी टिप्पणियाँ भी लिखी हैं जो अपर्याप्त हैं और शब्दों के वास्तविक रूप को प्रदर्शित नहीं करतीं। इन टिप्पणियों में तद्भव शब्दों के तत्सम रूपों को भी प्रदर्शित नहीं किया गया है। कविताओं के नीचे कहीं-कहीं उन्होंने कुछ शब्दों के अर्थ दे दिए हैं। उन के हिन्दी रूपान्तर भी कई जगह क्लिष्ट हैं और इस प्रकार के नहीं हैं कि उनका अर्थ यथार्थ रीति से समझ में आ जाए। कई जगह तो उस रूपान्तर को पढ़ते हुए अनुभव होता है कि जैसे उसे हिन्दी का किसी-न-किसी प्रकार रूप प्रदान कर दिया गया है। उनके इस संग्रह में न तो अपभ्रंश भाषा के रूप को और विशेषताओं को समझाने का कोई विशेष प्रयत्न किया गया है और न उसके काव्य की विशेषताओं या क्रमबद्ध विकास को प्रदर्शित करने का।

लेखक ने अपभ्रंश के कवियों के काव्य का संग्रह करने लिए अपनी ओर से कुछ विशेष शीर्षक बना लिए हैं और उन्हीं शीर्षकों के नीचे कवियों की कविताओं के उद्धरण दिए हैं। इन शीर्षकों के बनाने में भी लेखक की एक विशेष मनोवृत्ति है जिसकी कि कविता के स्वरूप और अध्ययन के लिए कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उन्होंने "रामायण" के राम और इसी प्रकार कृष्ण आदि की समस्त कथा को "सामन्त-समाज" शीर्षक में रखा है। सम्भवतः वे प्रदर्शित करना चाहते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रामचन्द्र और रावण आदि जितने राजा थे वे सब "सामन्त" थे। इसी प्रकार उन्होंने "कवि का सन्देश" एक शीर्षक बनाया है। इस "सन्देश" के अन्तर्गत काव्य-संग्रह को पढ़ने से यह अनुभव नहीं होता कि कवि का यह "सन्देश" है—हो सकता है लेखक की अपनी सम्मति में वह लेखक के लिए सन्देश रूप हो। जिन दत्त-सूरी की कविता के संग्रह में उन्होंने "कवि का सन्देश" शीर्षक के नीचे लिखा है कि उनका पहला सन्देश यह है "जात-पाँत को मजबूत करो"। इसके लिए वे निम्न उदाहरण देते हैं—

"बेट्टा – बेट्टी परिणाविज्जहिं।
तेवि समाण धम्म-घरि दिज्जहिं॥"

इसका अर्थ यह है कि बेटा-बेटी का विवाह समान-धर्म के घरों में होना चाहिए। कहते हैं कि "समानशीले व्यसनेषु सख्यम्।" मित्रता समानशील और समान-व्यसन लोगों में ही होती है। विवाह में किसी-न-किसी प्रकार की समानता की आवश्यकता तो होती ही है। एकमात्र इन्हीं दो पंक्तियों के आधार पर यह कैसे कहा जा सकता है कि कवि का यह संदेश है कि "जात-पाँत को मजबूत करो।" लेखक ने अपने विचारों के आधार पर इन कवियों की कविता का जो संग्रह किया है उससे कवियों के विचारों को समझने में उतनी सहायता नहीं प्राप्त होती जितनी कि संग्रहकर्ता के अपने विचारों की। कवियों के जीवन का भी जो उन्होंने परिचय दिया है वह भी अत्यन्त स्वल्प है। दो तीन पंक्तियों में वे उनका परिचय दे देते हैं। इस परिचय के लिए भी उन्होंने कुछ शीर्षक बना लिए हैं और उन्हीं के आधार पर वे उनका परिचय दे देते हैं। इस परिचय से उनका कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता। दो-तीन "अज्ञात कवियों" का काव्य-संग्रह भी दिया गया है। ये कवि तो "अज्ञात" हैं परन्तु उनका समय "ज्ञात" है। उन्होंने उनके समय का उल्लेखमात्र कर दिया है। एक कवि के विषय में उन्होंने लिखा है—"अज्ञात कवि या वृन्द कवि"। परिचय में कुछ नहीं बतलाया गया है कि इस कवि को "अज्ञात कवि" कहकर फिर "या वृन्द-कवि" क्यों कहा गया? फिर इस "अज्ञात कवि" के "कुल शीर्षक" में लिखा गया है—"दरबारी, भक्त।" क्या किसी का 'कुल' दरबारी या भक्त होता है? इस अज्ञात कवि की "कृतियाँ" शीर्षक में "स्फुट कविताएँ" दी गई हैं। इन "स्फुट कविताओं" का संग्रह "प्राकृत पिङ्गल" पुस्तक में से लिया गया है। "उन्होंने "स्फुट कविताओं" के शीर्षक स्वयं बना लिए हैं।

अपभ्रंश के इस कविता के संग्रह को पढ़ने से न तो कवियों की विचारधाराओं का सम्यक् रूप से ज्ञान होता है; न अपभ्रंश की भाषा का वैज्ञानिक रूप से परिचय प्राप्त होता है, न अपभ्रंश की कविता के प्रारम्भ, क्रमबद्ध विकास और अन्य विशेषताओं का पता चलता है और न इस संग्रह से अपभ्रंश की कविता का यथार्थ रसास्वादन ही प्राप्त होता है। हाँ, उनके कुछ विचारों का आभास-सा प्राप्त होता है और कहीं-कहीं कुछ कविताओं को पढ़ने में आनन्द अनुभव होता है। यदि उन कविताओं को जरा कुछ विस्तृत रूप से और काव्य की दृष्टि से साहित्य के आधार पर ही संगृहीत किया जाता तो उस में रस का आस्वादन हो सकता था। अपभ्रंश की भाषा और कविता आदि के अध्ययन का महत्व भाषा के इतिहास और साहित्य के 'तुलनात्मक अध्ययन' के लिए विशेष उपयोगी है– परन्तु यह संग्रह इस दृष्टि से भी नहीं लिखा गया है– हाँ उस के लिए इस पुस्तक में कुछ सामग्री प्रस्तुत कर दी गई है। हमें तुलसीदास के "रामचरितमानस" के तुलनात्मक अध्ययन के लिए स्वयंभूदेव की "रामायण (पउमचरिउ) का पढ़ना आवश्यक है। स्वयंभू ने अपनी भाषा को "देसी भाषा" कहा है:—

" देसी - भासा - उभय - तडुज्जल।
कवि-दुक्कर - घण - सद्द - सिलायत॥
... ...
राम कहा सरि एँह सोंहती...... ॥"

राम-कथा की सरिता "देसी-भाषा" के तटों में प्रवाहित की गई है। स्वयम्भू का समय ७९० ई० दिया गया है। यह "देसी-भाषा" और 'अपभ्रंश' क्या एक ही भाषा हैं? स्वयम्भू की 'रामायण' के बहुत-से वर्णन सजीव प्रतीत होते हैं। "अग्नि-परीक्षा" के समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि में प्रवेश करते समय सीता की उक्तियों को पढ़ते हुए मन फड़क उठता है:—

"पुरिस-णिहीण होंति गुणवंति वि ।
तियहे ण पत्तिज्जंति मरंति वि ।
... ...
ससि सकलंकु तहि जे पह णिम्मल ।
कालउ मेहु तहि जे तडि उज्जल ।
उवलु अपुज्ज ण केणवि छिप्पइ ।
तहि पडिम चंदणेण विलिप्पइ ।
णर-णारिहिं एवड्डउ अंतर ।
मरणे वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवर ।
तुहु पेक्खंतु अच्छु वीसत्थउ ।
डहउ जलणु जइ डहिवि समत्थउ ।"

स्त्रियाँ चाहे कितनी ही गुणवती क्यों न हों—यदि वे पुरुषविहीन हों तो उनका कोई विश्वास नहीं करता। चन्द्रमा तो सकलङ्क है परन्तु उसकी चाँदनी निर्मल है, निष्कलङ्क है। बादल काला है परन्तु बिजली उज्ज्वल है। पत्थर अपूज्य है, उसको कोई स्पर्श नहीं करता परन्तु उसी की प्रतिमा पर चंदन का लेप लगाते हैं। पुरुष और स्त्री में यही भेद है। लता मर जाती है परन्तु वह वृक्ष को नहीं छोड़ती। तुम देखो और विश्वास करो। आग ! मुझे जलाओ यदि तुम मुझे जलाने में समर्थ हो।"

इसी प्रकार और भी कई प्रकरणों का उल्लेख किया जा सकता है। भक्ति की निर्गुण विचारधारा की परम्परा अपभ्रंश से निकाली जा रही है। यदि अपभ्रंश के कवियों की रामायण और कृष्णकाव्य का अध्ययन किया जाएगा तो हमें यह भी ज्ञात हो सकेगा कि संभवतः यह परम्परा भी अपभ्रंश साहित्य में से आई है। अभी तक जयदेव के 'गीत-गोविन्द' से कृष्ण के गीतिकाव्य का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। अपभ्रंश में 'पुष्पदन्त' कवि ने जिनका काल ९५७ ईस्वी दिया गया है, कृष्ण-काव्य लिखा है। उन्होंने कृष्ण की लीला का वर्णन गीतों में किया है और उनकी कविता में कृष्ण-चरित्र लिखा गया है। पूतना-वध, ओखल-बन्धन, गोवर्धन-धारण, कालिय-दमन और कृष्ण-महिमा आदि का वर्णन है।

"कावि गोवि गोविन्दहु लग्गी ।
एण महारी मंथणी भग्गी ॥
एतहँ मोल देउ आलिङ्गणु ।
णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु ॥"

कोई गोपी कृष्ण से शिकायत कर रही है कि उसने उस की मंथनी को तोड़ दिया है और वह उसका दाम आलिङ्गन के रूप में माँग रही है और कहती है कि नहीं तो मेरे आँगन में मत आओ।

इस कवि की द्विपदियाँ जयदेव के पदों से कुछ मिलती-जुलती हैं:—

"धूलीधूसरेण वर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा ।
कीला-रस-वसेण गोवालय-गोवी-हियय-हारिणा ॥"

अपभ्रंश होते हुए भी इसमें संस्कृत के ढंग की रचना है। गोवर्धन-धारण का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है यद्यपि वह पूरी तरह समझ में नहीं आता। उस में प्रवाह है। मूसलाधार वर्षा पड़ रही है। कैसी प्रवाहमयी शब्द-रचना है:—

"जलु गलइ, झल झलइ,
दरि भरइ, सरि सरइ ।
तडयडइ, तडि पडई,
गिरि पडई, सिहि णडई ॥
मरु चलइ, तरु धुलइ,
जल थलु वि, गोउलि वि ।
णिरु रसिउ, भय तसिउ,
थरहरइ, किरमरइ ॥"

झर झर पानी पड़ रहा है; गड्ढे भर गए हैं—नदियाँ बह रही हैं। बादल गरजते हैं, बिजली चमकती है—पहाड़ फटते हैं—मोर नाचते हैं। मरु कम्पित हो रहा है, वृक्ष गिर रहे हैं—गोकुल जलमय हो गया है। सर्वत्र भय व्याप्त हो गया है—सब थरथर काँप रहे हैं। इसी प्रकार और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं। राहुलजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने लिखा है कि 'पुष्पदन्त' यद्यपि व्रज या यौधेय (दिल्ली) (?) में उत्पन्न हुए परन्तु उन्होंने अपनी रचना मान्यखेट (मालखेड़, हैदराबाद दक्षिण) में की जो ८१५ से ९७२ ई० तक राष्ट्रकूटों की राजधानी रहा ।

यदि इस पुस्तक के काव्य को साहित्य के आधार पर संगृहीत किया जाता और उसकी भाषा और काव्य के पहलुओं पर भाषा और कविता की दृष्टि से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता तो इससे साहित्य के अध्ययन करनेवालों को अपभ्रंश भाषा के ज्ञान और तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में बड़ी सहायता प्राप्त होती। श्री राहुलजी ने इस काव्य-संग्रह द्वारा विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है । इस पुस्तक को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि अपभ्रंश के साहित्यको गहराई से अध्ययन करने की कितनी आवश्यकता है । इस के लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। यह एक महान् कार्य है और यह कार्य कई भारतवर्ष के प्रान्तों के विद्वानों को मिलकर करना पड़ेगा क्योंकि अपभ्रंश भाषा एक प्रान्त की नहीं कई प्रान्तों की भाषा थी । इस काव्य-संग्रह को पढ़ने से अपभ्रंश के साहित्य को गम्भीर और क्रमबद्ध रूप में अध्ययन करने की अभिलाषा होती है। इसी कारण यह पुस्तक संग्रहणीय है । परिशिष्ट १ में उन पुस्तकों की सूची दी गई है जिनके आधार पर यह काव्य-संग्रह तैयार किया गया है

वंशीधर विद्यालङ्कार

FIRE: ACCIDENT: MARINE:
The HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,
A PURELY MULKI CONCERN
Post Box No. 164, Abid Road, Hyderabad-Dn.
Telegram: 'HUICOL' Telephone: 5579
Chairman: L. N. GUPTA Esq., I.A.S.,
General Manager: H. D. MEHTA Esq.,
BRANCHES: Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Mancherial.
'HIND'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

टण्डन बनाम नेहरू

"अखिल भारतीय काँग्रेस में टण्डनजी और नेहरू जी का पारस्परिक संघर्ष चरम-सीमा तक पहुँच चुका है। बहुत-से लोग संघर्ष को व्यक्तिगत संघर्ष मानकर इस प्रयत्न में हैं कि दोनों नेताओं में किसी तरह समझौता करा दिया जाय।

जहाँ तक नेहरूजी और टण्डनजी का अपना व्यक्तिगत सम्बन्ध है इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि एक नगर-प्रयाग-के इन श्रेष्ठतम दो नागरिकों में जो त्रिवेणी-तट की पवित्र वायु में जन्मकाल से साथ साथ समान रूप से साँस लेते रहे हों उनमें किसी प्रकार का व्यक्तिगत मनोमालिन्य हो सकता है या कोई ऐसी बात है जो एक दूसरे को समझने में कोई भ्रम उत्पन्न हो गया है।

नेहरूजी इस समय सरकार में हैं। जनता में एक ऐसा वर्ग रहता है जो किन्हीं सिद्धान्तों या आदर्शों की पूजा करने की अपेक्षा सदा से सत्ता की उपासना करता आ रहा है। इसी प्रकार के लोग स्वभावतः 'नेहरूजी की जय' से आकाश गुँजा देना चाहेंगे, इसी प्रकार कुछ लोग टण्डनजी की जयजय कार करना चाहते हैं। कुछ लोग यह प्रस्ताव रख रहे हैं कि जवाहरलालजी प्रधान मन्त्री के साथ साथ काँग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार कर लें तो यह पूरा संकट टल जाएगा।

यदि काँग्रेस के वर्त्तमान संकट को टालने के लिए एकमात्र औषधि पण्डितजी का कांग्रेस को अध्यक्ष पद स्वीकार करना है तो निस्सन्देह निदान और चिकित्सा दोनों में कहीं ग़लती अवश्य है।

कुछ दिन पहले कांग्रेस देश की एकमात्र प्रातिनिधिक संस्था थी। वह किसी वर्ग-विशेष के हितों को ध्यान में न रख कर जन-हित को महत्व देती थी और इस जन-हित के सम्पादन के लिए बड़ा से बड़ा त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहती थी।

आज कांग्रेस की स्थिति बदल गई है। दुर्भाग्य से अथवा सौभाग्य से उसका गठबन्धन सरकार से हो गया है और उसे कई बातों में जनता की अपेक्षा सरकार का साथ देना पड़ता है। जनता अपना अभाव-अभियोग व्यक्त किये बिना नहीं रह सकती, अतः कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं का निर्माण आवश्यक हो गया है जिन्हें जनता का समर्थन अवश्य प्राप्त होगा। कांग्रेस गान्धीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों से पृथक् हो गई है और आज उसके अधिकांश प्रभावशाली सदस्य इस प्रयत्न में हैं कि किसी तरह निर्वाचन में सफलता प्राप्त करके शासन में महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण पद प्राप्त किया जाए। कांग्रेसकर्मियों का अधिकांश समय इसीमें बीतता है, परिणामस्वरूप उनका सम्बन्ध जनता से विच्छिन्न होता जा रहा है।

कांग्रेस ज्यों ज्यों निर्बल होती जा रही है, देश में दो प्रकार की विचार-धाराएँ प्रबल होती जा रही हैं। एक विचार-धारा देश में हिन्दू-राज्य की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। पाकिस्तानी मनोवृत्ति ही इस विचार धारा का पोषण नहीं कर रही है, अपितु हमारे देश का एक विशेष वर्ग इस विचार-धारा का अनायास ही अधिक पोषण करने लगा है। दूसरी ओर वह विचार-धारा है जो केवल स्वतन्त्रता की प्राप्ति से ही सन्तुष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। वह एक नई आर्थिक व्यवस्था चाहती है और समाज तथा अन्य क्षेत्रों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की इच्छा रखती है।

यदि कांग्रेस सक्रिय रहती तो वह अपनी परम्परा के अनुसार इन दोनों विचार-धाराओं के पनपने का अवसर ही नहीं देती। सरकार के चलाने में कांग्रेस-संस्था का बहुत बड़ा योग नहीं है और एक प्रकार से शासन-तंत्र स्थायी सेवकों के बल पर चल रहा है, किन्तु कांग्रेस इस सरकार के लिए ढाल का काम करती रही है। यही कारण है कि जनता जब सरकार की बुराइयों से बचने के लिए सरकार पर आक्रमण करती है तो कांग्रेस की ढाल आगे आती है। परिणामस्वरूप जनता का क्रोध इस समय सरकार की अपेक्षा इस ढाल पर ही अधिक है और उसके विरोधी किसी-न किसी-तरह इन दो विचार-धाराओं के अनुयायी बन गए हैं।

कांग्रेस आज अपने में बहुत शक्तिशाली नहीं रह गई है। वह अपने अस्तित्व के लिए किसी न किसी विचार-धारा का आश्रय अवश्य लेगी चाहे वह विचार-धारा कांग्रेस का अस्तित्व सदा के लिए समाप्त ही क्यों न कर दे। कांग्रेस में यदि कुछ लोग ऐसे हैं जो इन साम्प्रदायवादियों की इच्छापूर्ति करके या उनकी पीठ थपक कर उनका सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं तो दूसरी ओर कुछ लोग प्रगतिशील विचारधारा के अनुयायियों का आश्रय लेकर सत्ता अपनाए रखना चाहते हैं।

यह बात अवश्य स्मरण रखने योग्य है कि कांग्रेस के दोनो प्रकार के लोग दो प्रकार की विचार-धाराओं में से किसी एक के अनुयायियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए लालायित तो हैं किन्तु इसके लिए भी चिन्तित हैं कि कांग्रेस का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहे।

टण्डनजी और नेहरूजी इन दो दलों के प्रतीत के स्वरूप में ही आज संघर्ष कर रहे हैं। यह आसानी से हो सकता है कि टण्डनजी की जगह पण्डितजी कांग्रेस के अध्यक्ष बनें किन्तु यह आसान काम नहीं है कि कांग्रेस की इन दोनों प्रवृत्तियों में मेल हो जाय या किसी एक को वहाँ से सदा के लिए समाप्त कर दिया जाए। कांग्रेस महासमिति शीघ्र ही विधान में परिवर्त्तन करने जा रही है और जब तक यह पत्र पाठकों के हाथ में पहुँचेगा तब तक इस सम्बन्ध में बहुत-सी नई जानकारी भी उपलब्ध हो जाएगी किन्तु यह निश्चित है कि इस प्रकार के परिवर्त्तन या मेल-जोल कांग्रेस को समर्थ नहीं बना सकेंगे। वह किसी के व्यक्तित्व को पाकर स्वयं तो शायद ही बलिष्ठ हो सकती है किन्तु हो सकता है वह उस व्यक्तित्व के प्रभाव को भी कम कर दे।

जब कोई नाव डूबने लगती है तो प्रायः देखा गया है कि उसे बचानेवाला डूब जाता है और छोड़नेवाला प्रायः बच जाता है।

शिक्षा-विभाग और हिन्दी

भारत-सरकार के शिक्षा-विभाग ने हिन्दी की उन्नति के लिए एक योजना स्वीकार की है जिस पर सत्रह लाख रुपये खर्च होंगे। अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में जो संस्थाएँ हिन्दी का काम कर रही हैं, उन्हे आर्थिक सहायता दी जाएगी। कोष का निर्माण होगा। हिन्दीतर भाषाओं का साहित्य हिन्दी में अनुवादित किया जाएगा।

इस योजना में एक साथ इतने काम सम्मिलित कर दिये गये हैं कि किसी एक की पूर्णता सन्देहास्पद है। आज सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हमारी उच्च-से-उच्च कोटि की शिक्षा का माध्यम हिन्दी बन सके और उस में सभी विषयों की पुस्तकें उपलब्ध कर दी जायँ। यदि शिक्षा-विभाग अपना पूरा ध्यान इसी एक आवश्यकता पर केन्द्रित करता तो हिन्दी की एक कमी पूरी हो जाती।

हिन्दी-प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता ही होगी कि हमारा शिक्षा-विभाग इस कठिन समय में भी राष्ट्र-भाषा की उन्नति के लिए कुछ प्रयत्न कर रहा है।

बम्बई की राजभाषा

बम्बई राज्य शीघ्र ही अपनी राजभाषा हिन्दी बनाने जा रहा है। इस सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि जिलों का काम वहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् गुजराती, मराठी और कन्नड़ में होगा। ज़िलों से ऊपर का काम हिन्दी में होगा।

जहाँ तक राष्ट्रभाषा-सेवियों का प्रश्न है वे इस बात का समर्थन नहीं कर सकते कि हिन्दी-राज्यों या केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त किसी भी अहिन्दीराज्य की सरकारी भाषा हिन्दी हो। हम लोगों की यह मान्यता रही है कि अहिन्दी-भाषी राज्य का सम्पूर्ण कार्य वहाँ की स्थानीय भाषाओं में ही होना चाहिए। यदि अहिन्दी-भाषी प्रदेशों में हिन्दी को राजभाषा बनाया जाता है तो राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में लोग तरह तरह की शङ्का करने लगेंगे और इस बात की संभावना भी है कि उसके विरोध में प्रान्तीय भाषाओं को ला खड़ा किया जाए, किन्तु बम्बई की विधान-सभा में प्रायः सभी अहिन्दी-भाषी हैं और वे बहुत बड़े बहुमत से या एकमत से हिन्दी को राजभाषा स्वीकार कर रहे हैं अतः उसके परिणाम का दायित्व हिन्दीसेवियों पर नहीं है।

यदि हिन्दी को बम्बई राज्य ने इसलिए राजभाषा स्वीकार किया है कि यह बहुभाषी राज्य एक ही सूत्र में गुँथा रहेगा और भाषाओं के आधार पर प्रान्त-रचना का प्रश्न इस व्यवस्था से समाप्त हो जाएगा तो हमारा विचार है कि इस प्रकार के विचारों को बहुत अधिक सफलता नहीं मिलेगी।

फिर भी प्रसन्नता की बात है कि एक विदेशी भाषा के स्थान पर बम्बई-राज्य अपने ही देश की भाषा में राज-काज करने की बात सोच रहा है।

एक घटना

एक घटना मेरे स्मृति-पटल पर अंकित है। रेलगाड़ी किसी बड़े स्टेशन पर ठहरी थी। टिकट-परीक्षक आया और उसने हमारे टिकटों को पंच किया। मुझे वह बड़े ध्यान से सन्देहास्पद दृष्टि से देखने लगा परन्तु उसने कहा कुछ नहीं। वह चला गया और बाद में कुछ अपने साथियों को लेकर आया। वे सब डब्बे के दरवाज़े के पास चक्कर काटते रहे और फिर चले गए। अन्त में स्टेशन मास्टर स्वयं आया। उसने पहले मेरे आधे टिकट को देखा और फिर कहा:—

"क्या यह लड़का १२ वर्ष का नहीं है?"

मेरे पिता ने कहा—"नहीं"

मेरी आयु उस समय ११ वर्ष की थी परन्तु मैं अपनी आयु से बड़ा मालूम होता था।

स्टेशन मास्टर ने कहा—"आप को इस लड़के का पूरा किराया देना पड़ेगा।"

मेरे पिता की आँखें चमक उठीं। उन्होंने बिना कुछ कहे अपने बक्स में से एक करंसी नोट निकाला और उसे स्टेशन मास्टर को दे दिया। जब उसने शेष रुपया मेरे पिता को वापस लाकर दिया तो उसे उन्होंने बेपरवाही से स्टेशन मास्टर पर फेंक दिया। स्टेशन मास्टर अपनी सन्देह करने की क्षुद्रता पर लज्जित खड़ा था।

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है० रा० हिन्दी प्रचार सभा

कार्य-विवरण

स्नेह-सम्मेलन

सभा द्वारा सञ्चालित हैदराबाद नगर के हिन्दी वर्गों का स्नेह-सम्मेलन श्री गोपालरावजी एकबोटे अड-वोकेट की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन मध्यान्ह में दो बजे प्रारंभ हुआ जिसकी समाप्ति रात को ९ बजे हुई। हिन्दी विद्यार्थियों का उत्साह देखते ही बनता था। सर्वप्रथम विद्यार्थियों में खेलों की प्रतियोगिता हुई। इस प्रति-योगिता में छात्र तथा छात्राओं ने सम्मिलित रूप से भाग लिया। हुतूतूतू, जलेबी की होड, नींबू की दौड़, कुर्सियों पर बैठने की प्रतियोगिता बहुत ही सफल रही। रस्सा खींचने की प्रतियोगिता तो बड़ी शानदार थी। एक ओर वर्ग के अध्यापक थे दूसरी ओर विद्यार्थी थे, अध्यापकों की छोर में अन्त में खड़े हुए श्री प्रोफेसर रंजन एम. ए. का साहस तो देखने ही लायक था। जब इस प्रतियोगिता में अध्यापक लोग हार गये तो विद्यार्थियों ने करतल-ध्वनि से अपने पराजित अध्यापकों का स्वागत किया।

अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए श्री गोपालराव जी एकबोटे ने कहा—"आज यहाँ पाँच सौ से अधिक विद्यार्थियों को देख कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। सभा के कार्यकर्त्ता किसी राजनीतिक वाद-विवाद में न पड़ कर आज तक निष्ठा से जो काम करते रहे हैं उसी का यह सुपरिणाम है।"

हिन्दी के सम्बन्ध में आपने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—"विधान परिषद् ने पन्द्रह वर्ष पश्चात् हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने की बात स्वीकार की है, किन्तु दो वर्ष बीतने पर भी हमें यह स्मरण नहीं कि अब अवधि केवल १३ वर्ष की है। हिन्दी को उचित स्थान नहीं मिल रहा है उसका कारण सरकार की सुस्ती नहीं है। वास्तविक कारण यह है कि काँग्रेस के बड़े बड़े नेता भी हिन्दी के बारे में कोई निश्चित विचार नहीं रखते। आज भी कुछ लोग हिन्दुस्तानी तथा दूसरी भाषाओं की बात कह कर जनता के मन में भ्रम पैदा करना चाहते हैं। हमें इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।"

सभा के प्रधान-मन्त्री ने हिन्दी का महत्व समझाते हुए कहा—"हमें किसी वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। हम हिन्दी की सेवा करते रहें, हमें अवश्य सफलता मिलेगी।

भाषणों के अन्त में विद्यार्थियों का मनोरंजक कार्यक्रम शुरू हुआ।

तुलसी-जयन्ती का सफल आयोजन

गतवर्ष के अनुसार इस वर्ष भी सभा की ओर से सिटी कालेज के सभा-भवन में गोस्वामी जी की जयन्ती सफलता पूर्वक मनाई गई। इस समारोह की अध्यक्षता करते हुए राज्य के स्वास्थ्य-मंत्री माननीय श्री फूलचन्द गांधी जी ने कहा—"तुलसीदास जी का भारतीय जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। जब मैं बालक था तो हमारे पड़ोस का एक बूढ़ा मुसलमान तुलसी-रामायण सुनने के लिए बहुत लालायित रहता था। वह आग्रह करके मुझ से तुलसी रामायण सुनता था। मैं जब रामायण पढ़ता तो उस वृद्ध की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगते। मुझे भी तभी से तुलसीदास जी के ग्रन्थ पढ़ने का अनुराग लगा।"

हिन्दी के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए आपने कहा—"हमारे विधान में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है। इस निर्णय के बारे में आज भी कुछ लोग सन्देह रखते हैं और हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक प्रकार से राष्ट्र और उसके विधान के साथ द्रोह है। हिन्दुस्तानी कोई भाषा नहीं है और न उसका कोई साहित्य है। ऐसी हिन्दी ती राष्ट्रभाषा बन सकती है जो प्रान्तीय भाषाओं के अत्यन्त निकट हो। यह निकटता तभी संभव है जब हम हिन्दी का सम्बन्ध संस्कृत के साथ रखें।"

तुलसी दासजी के साहित्य के सम्बन्ध में अपना अध्ययनपूर्ण भाषण देते हुए निज़ाम कालेज के हिन्दी प्राध्यापक श्री राजकिशोर पांडे एम. ए. ने कहा—"तुलसी दासजी जनता के कवि थे। उन्होंने संस्कृत में न लिख कर जन-वाणी में लिखा। उन्होंने उपमा तथा अलंकार भी बहुत कुछ जनता ही से लिया।"

यह समारोह श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित 'तुलसी-दास' नाटक के साथ समाप्त हुआ। इस नाटक को सभा के कार्य कर्ताओं ने ही अभिनीत किया। अभिनेताओं के लिए यह पहला ही अवसर था। फिर भी नाटक सफल रहा। नाटक में अभिनय करने वालें पात्रों के नाम इस प्रकार हैं—

तुलसीदासः- श्री श्रीराम शर्मा
रत्नावलीः- नगिनी, एम. ए, हिन्दी भूषण
कृष्णानन्दः- श्री अनन्त कुलकर्णी
ज्ञानमलजीः- श्री तुकाराम कुलकर्णी
नन्ददास;- श्री शंकरराव बाँजरे
सोमशंकरः- श्री श्रीधर कुण्डे
टोडरमल श्री बी. राम कृष्णाराव
रहीम खानः- श्री मोतिसिंह

श्री प्रभावती मुशरिफ़ ने गोस्वामी तुलसीदासजी के पदों को शास्त्रीय संगीत में प्रस्तुत किया।

परभणी में वर्गों का उद्घाटन

परभणी के पुलिस-निवास में जिलाधीश की अध्यक्षता में हिन्दी के वर्गों का उद्घाटन किया गया। हिन्दी-प्रचार सभा परभणी ने ये वर्ग पुलिस सिपाहियों को निःशुल्क रूप से हिन्दी सिखाने के लिए खोले हैं! पुलिस के जिलाधिकारी श्री हरिश्चन्द्र जी ने सभा के प्रयत्नों की सराहना की। आपने कहा हिन्दी का पढ़ना तथा पढ़ाना हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। श्री रंगनाथराव लाखकर वकील ने हिन्दी का महत्व समझाया। सभा के मंत्री श्री रतनलालजी मूंदड़ा ने सभी का परिचय देते हुए जिलाधिकारियों को धन्यवाद दिया।

इस वर्ग से लगभग दो सौ पुलिस-सिपाही लाभ उठा रहे हैं।

महबूबनगर में प्रमाण-पत्र-वितरणोत्सव

राज्य के खाद्य-मंत्री माननीय श्री विनायकरावजी वियालंकार के करकमलों से महबूबनगर केन्द्र के उत्तीर्ण छात्रों को प्रमान-पत्र वितरित किये गये। इस अवसर पर माननीय खाद्य मंत्री तथा सभा के प्रचार-मंत्री श्री लक्ष्मणाचार्य जी ने हिन्दी के महत्व के सम्बन्ध में भाषण दिए।

वरंगल

माननीय श्री फूलचन्दजी गांधी ने वरंगल केन्द्र के उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को प्रमाण-पत्र वितरित किए। इस अवसर पर माननीय मंत्रीजी ने हैदराबाद-राज्य-हिन्दी-प्रचार सभा तथा संचालित तीन हिन्दी वर्गों का नगर के विभिन्न स्थानों में उद्घाटन किया। इन वर्गों से लगभग पाँच सौ वियार्थी लाभ उठा रहे हैं।

नांदेड़ में तुलसी-जयन्ती

नांदेड़ हिन्दी-प्रचार-सभा की ओर से लक्ष्मी टाकीज में तुलसी-जयन्ती सम्पन्न हुई। सर्वश्री रामाधार शर्मा, बालाप्रसाद शुक्ल, भगवंताचार्य, नन्दकिशोर और मदनलाल बियाणी ने गोस्वामी तुलदासजी की जीवनी पर प्रकाश डाला।

"भाषण प्रतियोगिता"

स्थानीय हिन्दी प्रचार सभा की ओर से आगामी गांधी जयन्ती पर वियार्थियों के लिए एक "भाषण प्रतियोगिता" का आयोजन किया गया है। जिसमें एक 'शील्ड" रखी गई है। इसमें केवल मराठवाड़े के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाइस्कूल तक के विद्यार्थी ही भाग ले सकते हैं। भाषण प्रान्तीय भाषा एवम् राष्ट्र भाषा में ही दे सकेंगे। अन्तिम निर्णय नान्देड़ हिन्दी प्रचार सभा द्वारा नियुक्त उप-समिति ही दे सकेगी। प्रथम, द्वितीय एवम् तृतीय आने वाले विद्यार्थी को पदक पृथक् दिये जायेंगे। छात्राओं के लिए एक पदक पृथक् होगा। नाम भेजने की अन्तिम तिथि २७ रक्खी गई है। प्रत्येक पाठशाला से केवल दो विद्यार्थी भेजने होंगे। प्रवेश शुल्क प्रति विद्यार्थी २ रु० देना होगा।

भाषण का विषयः—"महात्मा गांधी एक युग पुरुष थे।

कलमनूरी

श्री गोपालराव पाठक, बी० काम० की अध्यक्षता में यहाँ का प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव हुआ। सर्वश्री पुरुषोत्तमराव पलगीटकर, चन्द्रकान्तराव देशमुख, माधवराव चिटणीस आदि के भाषण हुए।

नारायणपेठ में वितरणोत्सव

स्थानीय चनवस्वा टाकीज में श्री उपजिलाधीश के करकमलों से प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव सम्पन्न हुआ। अस्सी परीक्षार्थियों ने प्रमाणपत्र प्राप्त किया। केन्द्र व्यवस्थापक श्री महेन्द्रकर ने राष्ट्रभाषा को सीख कर राष्ट्रोन्नति में सहायक बनने के लिए जनता से अनुरोध किया।

केन्द्र के अध्यापन कार्य में सर्वश्री बालाजी ढगे, रामचन्द्रराव सरोदे, चिन्नप्पा बसूदे और नारायणराव बसूदे बहुत सहायता पहुँचा रहे हैं। अतः उन्हें धन्यवाद दिया गया।

हिन्दी, मराठी और अंग्रेज़ी की
सब तरह की छपाई के लिए
हमेशा याद रखिये

हिन्दी-प्रेस

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्री राम हिन्दी भवन
नामपल्ली ● हिन्दी मार्ग ● हैदराबाद दक्षिण
तार का पताः-हिन्दी
टेलीफोनः-४५०५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अजन्ता" के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य

दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा देव-नागरी लिपि के प्रचार के साथ सांस्कृतिक एकता, साहित्यिक समन्वय तथा मानवी तत्वों का विकास करना ही "अजन्ता" का प्रधान उद्देश्य है।

नियम

(१) विवादग्रस्त विषयों को छोड़कर "अजन्ता" में आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा स्वास्थ्य-सदाचार सम्बन्धी सभी प्रकार के लोकोपयोगी लेख, कहानी तथा कविताएँ प्रकाशित की जायेंगी।

(२) किसी भी लेख, कहानी, कविता एवं कृति को घटाना-बढ़ाना, प्रकाशित करना या न करना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में है। अप्रकाशित रचनाएँ डाक टिकट के साथ लौटाने की माँग आने पर लौटाई जा सकेंगी। रचनाएँ केवल ६ मास तक ही सुरक्षित रखी जाएँगी। लेखों में प्रकाशित मत तथा विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदाता न होंगे।

(३) लेख, कविता, कहानी तथा एकांकी नाटक आदि कोई भी रचना स्पष्ट अक्षरों में संशोधन, परिवर्धन या परिवर्तन के लिए स्थान छोड़कर कागज़ के एक ही ओर लिख कर भेजना चाहिए। मौलिक तथा स्थायी साहित्य में स्थान पाने योग्य उत्तम रचनाओं को यथाशक्ति पुरस्कृत करने का प्रयत्न किया जायगा। "अजन्ता" में प्रकाशित एवं पुरस्कार प्राप्त रचनाओं पर सभा का पूर्ण अधिकार होगा। लेखक महोदय उन रचनाओं को किसी भी रूप में न स्वयं प्रकाशित कर सकेंगे और नहीं अन्य किसी प्रकाशक को पुनः प्रकाशनार्थ प्रदान कर सकेंगे।

(४) "अजन्ता" का वर्ष जनवरी से दिसम्बर के अन्त तक माना जायगा।

पत्र का वार्षिक मूल्य भारत में ९) विदेश में १४) अर्थात् (१ पौंड) है। पत्र किसी भी मास से मँगाया जा सकता है किन्तु ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाया जाता है। अग्रिम मूल्य प्राप्त होने पर ही प्रायः पत्र भेजा जाता है।

(५) लेख, कविता, कहानी, समालोचनार्थ पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ तथा परिवर्तन के पत्र सम्पादक "अजन्ता" के नाम और विज्ञापन, एजेन्सी, पत्र का मूल्य एवं मनीआर्डर आदि सभी प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्रव्यवहार व्यवस्थापक "अजन्ता" हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद (दक्षिण) के पते पर करना चाहिए।

(६) "अजन्ता" प्रत्येक मास की १ तारीख को प्रकाशित होता है। १५ तारीख तक पत्र न मिलने पर अपने नगर के पोस्ट आफ़िस से पूछ-ताछ करके कार्यालय को सूचना देनी चाहिए। पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या लिखना अत्यावश्यक है।

(७) लेखकों, ग्राहकों तथा विज्ञापनदाताओं के अतिरिक्त "अजन्ता कार्यालय" से किसी प्रकार की पूछ-ताछ या जानकारी प्राप्त करने के लिए जवाबी कार्ड या टिकट आना अत्यावश्यक है। अन्यथा उत्तर से वंचित रहना पड़ेगा।

(८) दक्षिण भारत के एक मात्र हिन्दी मासिक "अजन्ता" में विज्ञापन छपाने की दर निम्न प्रकार है।

कवर का मुख पृष्ठ	रु.	१५०)	प्रतिमास
कवर का चतुर्थ पृष्ठ	रु.	१००)	,,
कवर का दूसरा और तीसरा पृष्ठ	रु.	८०)	,,
सधारण पृष्ठ पूरा	रु.	६०)	,,
साधारण पृष्ठ आधा	रु.	३०)	,,
साधारण पृष्ठ चतुर्थांश	रु.	१५)	,,
वर्ष भर के लिए पूरा पृष्ठ	रु.	७००)	,,

प्रतिष्ठित संस्थाओं के अतिरिक्त विज्ञापन-छपाई का रुपया अग्रिम लिया जायेगा।

व्यवस्थापक,
"अजन्ता"
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा,
नामपल्ली, हिन्दी मार्ग,
हैदराबाद (दक्षिण)

प्रकाशक:-**हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा**, मुद्रक:-हिन्दी प्रेस, श्रीराम हिन्दी भवन, नामपल्ली रोड, हैदराबाद-द०
"अजन्ता" का वार्षिक मूल्य ९) एक अङ्क का १२ आना (भा. मु.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के उत्तमोत्तम

साहित्य की

प्राप्ति के लिए

—* एकमात्र स्थान *—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली रोड ::: हैदराबाद—द०

टेलीफोन नं० ५४५०

तार—" हिन्दी "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजन्ता

वर्ष ३ दिसम्बर अङ्क १

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अंक में पढ़िए

श्री पं० चन्द्रबली पांडे एम. ए,
श्री पं० बनारसी दास चतुर्वेदी
श्री डा० सोमनाथ गुप्त
श्री डा० भगीरथ मिश्र एम. ए.
श्री डा० चन्द्रभान गुप्त
श्री आदित्य मिश्र एम. ए.
श्री जगमोहनलाल चतुर्वेदी
श्री प्रो. इन्द्र एम. ए.

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' एम. ए.
श्री निशंक, एम. ए.
श्री पुष्प, एम. ए.
श्री राजेन्द्र यादव, एम. ए.
श्री नवीनचन्द्र आर्य

अगले अंक में पढ़िए

श्री प्रो. ओ. सी. गांगुली
श्री डा० आचार्य रघुवीर
श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी
श्री के. सजनलाल एम. ए.
श्री के. शेषाद्रि एम. ए.

श्री रामेश्वर शुक्ल "अंचल"
श्री काज़ी नज़र-उल-इस्लाम
श्री कमल प्रसाद "कमल"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी निजाम शुगर फैक्टरी [लिमिटेड]

स्फटिकवत्, समरूप, मधुरतम

श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

प्रधान कार्यालय से प्राप्त करें।

* * * *

प्रधान कार्यालय	फैक्टरी
आबिद रोड,	शक्कर नगर
हैदराबाद – दक्षिण.	निजामाबाद.

केवल तथा तार } "शुगर" ● "शुगर" { केवल तथा तार

फोन नं० ४७०४, ४२९६, ४१३७, ४८७६

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड

आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण

के

मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,

दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड के लिए विक्रय विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE

Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : **4610**

Telegram : **DOMINBANK**

Sub Offices :

PATHER GATTI,
UNIVERSITY BRANCH
(Adickmet)

HeadOffice :

SHAHRAH-E-OSMANI
HYDERABAD-DECCAN.

Branches :

JADCHARLA (Dt, Mahboobnagar) THUNGABHADRA PROJECT (Munirabad)

1. CURRENT ACCOUNTS are opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVING DEPOSITES are accepted aud interest is allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 1½% per annum.
4. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTRES and within the HYDERABAD STATE.
5. PENSIONS, MANSABS, etc, are collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.
6. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULUTS are arailable at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

K. SUNDARAVARADACHARI.
GENERAL MANAGER.

RAI DILSUKH RAM.
CHAIRMAN.

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

The HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

Sponsored by the Govt. of HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, Hyderabad-Dn.

Telegram: 'HUICOL' *Telephone 5579*

Chairman:
L. N. GUPTA Esq., I.A.S.,

General Manager.
H. D. MEHTA Esq.

BRANCHES: Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Mancherial.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी की

सब तरह की

उत्तम

छ
पा
ई

के लिए

हमेशा याद रखिये

॥

★ हिन्दी - प्रेस ★

॥

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

श्री राम हिन्दी भवन

नामपल्ली ● स्टेशन रोड ● हैदराबाद दक्षिण.

तार का पताः—हिन्दी	टेलीफोनः—५४५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE OSMANSHAHI MILLS LTD.
NANDED

and

THE AZAM JAHI MILLS LTD
WARANGAL

SECRETARIES, TREASURERS AND AGENTS

THE INDUSTRIAL TRUST FUND
Government of Hyderabad

HYDERABAD-DECCAN.

Manufacturers of

COTTON FABRICS OF OUTSTANDING QUALITY AND DURABILITY.

For particulars and prices apply to:—

C. S. TYABJEE, Esqr., O. B. E.,

MANAGING AGENT-

159, Gunfoundry Road, Hyderabad-Dn.

Telegrams: "OSMANSHAHI" "AZAMJAHI"

Telephone: 4738

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर पश्चिमी और दक्षिण भारत का

एकमात्र हिन्दी दैनिक

★ हिन्दी मिलाप ★

जालन्धर और हैदराबाद से एक मात्र प्रकाशित

- समाचारों में सर्वाग्र
- विज्ञापन पत्र में सर्वोदयी
- विचारों में निर्भीक
- नीति में निष्पक्ष

विज्ञापन दाताओं के लिए जनता तक पहुँचाने का यह सर्वोत्तम साधन है।

यदि आप अभी तक इसके ग्राहक नहीं बने तो शीघ्रही बन जाएँ।

प्रबन्धक :— दैनिक हिन्दी मिलाप

मुकर्रमजाही रोड, हैदराबाद-द.

For

ENAMELLED WARE

of all descriptions

Please Contact

The

DECCAN PORCELAIN & ENAMEL WORKS, Ltd.

❋

Managing Agents:

D· D· ITALIA & SON

DIN LODGE,

Station Road, HYDERABAD-Dn.

Telephone No. 4612 OFFICE
4395 FACTORY

नव वर्ष के उपलक्ष में

लगभग ४०% कमीशन पर

उत्तमोत्तम

साहित्य पुस्तकों के सेट्स

टेबल गांधी डायरी

१९५२ के साथ

वि. सू. *ध्यान रहे कि सेट्स सीमित संख्या में ही हैं। अतः शीघ्रता कीजिए।*

विशेष विवरण के लिए तीन पैसे का टिकट भेजिए।

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्रीराम हिन्दी भवन
नामपल्ली रोड, हैदराबाद-द.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अजन्ता'

पर

कुछ पत्र

......'अजन्ता' के लेखों का स्तर ऊँचा है। इस पत्र में सब प्रकार की विचार धाराओं के लेख प्रकाशित होते हैं। इसके लेखों से प्रेरणा प्राप्त होती है......

आदित्य मिश्र, एम-ए.

:: :: ::

'अजन्ता' काफ़ी अच्छा पत्र है......। राजा शिवप्रसाद, 'सितारे हिन्द' का लेख निश्चित रूप से उच्च कोटि का लेख है......। नीर क्षीर में समालोचना Thought provoking है......

—बनारसीदास चतुर्वेदी

:: :: ::

'अजन्ता' के लेखों के स्तर ऊँचे हैं। इसके सम्पादन में काफ़ी परिश्रम करना पड़ता है......

—प्रो. इन्द्र, एम-ए.

:: :: ::

'अजन्ता' का नवम्बर का अङ्क मेरे सामने है। नाम "अजन्ता" पर है जनता के लिए। वास्तव में पत्र सुन्दर है। इसका भीतर-बाहर एक-सा है। इस अंक से मेरी जानकारी बढ़ी है। राजा शिवप्रसाद "सितारे हिन्द" के विषय में हमें इतना सब कहाँ मालूम है। ऐसे लेख अवश्य प्रकाश में आने चाहिएँ......। अ-हिन्दी प्रदेश का यह पत्र हिन्दी प्रदेश वालों को बहुत कुछ देता है......

—श्री वी. पी. दीक्षित बटुक,
एम-ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ३ दिसम्बर १९५१ अङ्क १२

तुम न बदलना......

दुनिया बदले, तुम न बदलना, तुम ऐसी ही रहना

निविड़ कालिमा बीच मुझे तुम गति की राह दिखाना
अँधियारी जीवन-रजनी में तुम दीपक बन जाना
थके उचटते टूटे मन में सपने नये सजाना
दे देना विश्वास कि टूटे सपनों का हरजाना
दुनिया भूले तुम न भुलाना सब दिन अपना कहना
दुनिया बदले, तुम न बदलना, तुम ऐसी ही रहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की सारी साधें गीतों में सिमट समाईं
आकुल बन्दी मन की तृष्णा पहुँच न तुम तक पाई
पर पूजा की रीति यही है प्रीति जली उफनाई
ऐसी जली हृदय की बाती राख नहीं हो पाई
विश्व बुझाए तुम न बुझाना रुके न मन का दहना
दुनिया बदले, तुम न बदलना, तुम ऐसी ही रहना

हुई न स्थापित मूर्ति पड़ा है मेरा मन्दिर खाली
मेरा जीवन एक रतजगा मेरी लगन निराली
तुमने भरी वेदनाओं से मेरी सुधि की थाली
लाज-लजी चितवन की छाँहों से दे दी हरियाली
मेरे ऊसर से जीवन में सरिता बन कर बहना
दुनिया बदले, तुम न बदलना, तुम ऐसी ही रहना

तुम ऐसी ही रह रह कर प्यासे प्राणों में बल भरना
मेरे जीवित उल्लासों को नित्य नया तुम करना
दे स्वर का वरदान मरे पत्थर की जड़ता हरना
रहे तुम्हारे स्नेह पाश में मेरा जीना-मरना
विश्व न बूझे तुम बूझोगी मेरे मन का सहना
दुनिया बदले, तुम न बदलना, तुम ऐसी ही रहना

—'अंचल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष के नीचे

[यह कविता उस्मान सागर के किनारे बैठ कर लिखी गई है ।]

हम नीचे तरु के सोते हैं ।
ज्यों तम में सब कुछ खोता है, त्यों हम अपने में खोते हैं ॥

(१) फैला ऊपर नीला अम्बर;
फैला नीचे नीला सागर ।
देखें नीचे देखें ऊपर;
इन इन दोनों की गहराई में हम ऊपर नीचे होते हैं ॥

(२) है घास हरी, काली, पीली;
कुछ है सूखी, कुछ है गीली ।
दिखती फूलों से चमकीली;
हम लेटे, भूली स्मृतियों के कितने ही हार पिरोते हैं ॥

(३) यह किसे पता है धरती के;
हम इस कोने में पड़े हुए—।
लगते हैं लघु तिनके जैसे;
विस्तृत असीमता के सम्मुख हम कितने छोटे होते हैं ॥

(४) दिन जितना बढ़ता जाता है;
उतना ही ढलता जाता है ।
रवि आता है या जाता है ?
हम दूर किनारे से हो कर नजदीक किनारे होते हैं ॥

(५) पत्तों की वंशी में मीठे;
जब वायु गीत गाती अपने ।
तब जीवन के सोए सपने;
दिल की वंशी में बज उठकर कुछ हँसते हैं, कुछ रोते हैं ॥

—वंशीधर विद्यालङ्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं मुस्कुराता ही रहा !

जिस दिन मेरी सुषमा–सजी
सौरभ-सनी पलकें खुलीं
जिस दिन मेरा शैशव चला
यौवन की अंगड़ाई लिए—
हर साँस में उल्लास था
उल्लास में थी वेदना !
उस दिन से ही चोरी-छिपे
काँटे मुझे चुभते रहे;
पर—मैंने उफ़ तक भी न की—
मैं मुस्कुराता ही रहा !

सौरभ समीरण ले उड़ा
भौंरों ने मधु लूटा मेरा
झंझा ने झिंझोड़ा मुझे
पर दम नहीं टूटा मेरा—
गर्मी ने झुलसाया कभी.
वर्षा ने सरसाया कभी,
जर्जर शरत् की श्वास से
पत्ती मेरी पीली पड़ी—
और डाल भी थर्रा उठी;
पर—मैंने उफ़ तक भी न की—
मैं मुस्कुराता ही रहा !

'पुष्प', एम. ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

परिचय हमारा

क्या करोगे पूछ कर परिचय हमारा ?

साधना का दीप प्रति पल
जल रहा मेरे हृदय में
हो रहा आलोक जिससे
तिमिर से परिपूर्ण उर में
किन्तु इस तूफ़ान में
अब कँप रहा वह दीप प्यारा
क्या करोगे पूछ कर परिचय हमारा ?

मिट सकी है आज तक क्या
प्यास वह चिरकाल की रे ?
मिट गई है आज जग से
पर प्रथा वह दान की रे
नित नवल घन बरसते हैं
पर न मिलता नीर प्यारा
क्या करोगे पूछ कर परिचय हमारा ?

कह रहे निज अश्रुकण से
प्यास तू अपनी बुझा ले
पर करूँ क्या हाय वह भी
सूख कर पत्थर बना रे
सो रहा है क्यों न जाने
भाग्य का मेरे सितारा
क्या करोगे पूछ कर परिचय हमारा ?

सह रहा हूँ कष्ट इतने
पर न मिटती आस है वह
छोड़ने पर भी न जाती
है अभीप्सित चाह वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों को दोष क्या दूँ
खुद बना नादान हूँ मैं
भाग्य से तो लड़ रहा हूँ
पा सकूँगा जीत यदि मैं
क्या करोगे व्यर्थ ही है
जानना परिचय हमारा
क्या करोगे पूछ कर परिचय हमारा ?

—रामजीतसिंह "मधुर"

[५]

गीत

लिखे लहरों ने गतिमय गीत, पवन ने गाए,
खिले मधुबन में सोए फूल, मधुप मुसकाए,
रात के लहरे, बिखरे केश, चाँद ने छूकर,
बहाई पीड़ा की रसधार, धरा के ऊपर।
चाँद के मन की मृदु मुसकान, नव वधू बनकर,
छिपाती रही दीप से गात, लता में छिप कर;
चाँदनी का पाकर मृदु स्पर्श, वेदना सोई,
नहीं कुछ ज्ञात हुआ नभ द्रवित, कि धरती रोई।
स्वप्न में कवि को छलती रहीं, किसी की बातें,
विवशता भरे दृगों में रुकी रहीं बरसातें,
हरिण शावक के लोचन सदृश, रूप का पानी,
उसे पी पी कर बनती रही प्यास दीवानी।
प्यार की दुनियाँ के ये फूल गगन के नीचे,
भ्रमर को पल पल छलते रहे नयन को मीचे,
बिदा के लोने लोने गीत, मिलन ने गाए,
उठी जब जब अंतर में पीर, नयन मुसकाए।

निशंक, एम. ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाँद

मध्य-निशा थी स्तब्ध तरणि-तट
ज्योतित स्वर्णिम किरण डाल-पर
एक विहग बैठा गाता था।
जिसके मधुमय मदिर स्वरों की
थपकी खाकर धीरे-धीरे
नींद हिंडोला झूल रहा था।
और खो रही मंत्र-मुग्ध बन
संज्ञहीन-सी संस्कृति
अवचेतन सपनों में।

चाँद हँस रहा था
सोने की नौका-सा
नीले सागर पर
काँप सुधा की लहरि
थिरक कर तारों में झिलमिल होती थी।
चाँद
कि जिस की मुख-मुद्रा पर
भ्रान्त मनों को
क्लान्त तनों की
स्नेह-सौख्य अतृप्त हृदयों को
निष्कलंक, निश्छल, आकर्षक
भोली, मोहक मधुर सान्त्वना
दिव्य संदेसा
शुभ्र हँसी थी।
अवगुण्ठित-सी नैश शान्ति में।
तारे टिमटिम कर हँसते थे।
किन्तु,
नहीं शशि जान सका था
नगर और जन-पद से हटकर
मधु रागों से त्यक्त
जगत् के हास विलासों से निर्वासित
शुष्क कँटीले झाड़ी से घिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई पुष्कर उमँग रहा था
सीने में छवि को सिमटा कर।
विस्मृत उल्लासों में डूबी
निश्चिल चिति की भाव-तरंगें।

विमल कल्पना के सतरंगी
विस्तृत फैले हृदय लोक में
विधु की प्रतिकृति चमक रही थी।
दिव्य अलौकिक सुकुमारी-सी
उसका मंगल मोद बनातीं
छोटी-छोटी अभिलाषाएँ
—मणि-सी यमुना तल में बिखरीं—
तारों-सी झिलमिल टिम-टिम थीं।

राजेन्द्र यादव एम. ए.

[७]

गीत

मानस में मिलकर मोह, प्रेम हो जाता;
प्रेमी से मिलकर क्षोभ, पेय हो जाता;
जल-जल ज्वाला में अब तक मैं यह सोचूँ—
यदि मेरे दिल का दर्द ध्येय हो पाता!

चल पड़ते उस पर चार प्रेम-पथ-राही;
कष्टों से लड़कर, बढ़ जाते उत्साही;
जो गिर जाते, टकरा कर बाधाओं से—
भरते तब आँसू, उनकी प्रेम-सुराही!

प्यासे आकर पीते उस प्रेम-सुधा को;
पीड़ित आ नित्य मिटाते, तीव्र क्षुधा को;
परवशता, क्रन्दन स्वयं मिट चले होते—
यदि निज मानस समझे होते वसुधा को!

नवीनचन्द्र आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नाट्यकला का प्रादुर्भाव

जब किसी वस्तु में किसी गुण या कौशल के कारण विशेष उपयोगिता और सुन्दरता आ जाती है, तब वह वस्तु कलात्मक हो जाती है। कला का लक्षण बतलाते हुए शुक्राचार्य अपने 'नीतिसार' में लिखते हैं कि जिसको एक गूँगा व्यक्ति भी, जो वर्णोच्चारण भी नहीं कर सकता, कर सके, वह 'कला' है—"शक्तो मूकोऽपि यत कर्तुं कलासंज्ञं तु तत् स्मृतम्।" कला के दो भेद होते हैं—एक उपयोगी कला और दूसरी ललित कला। उपयोगी कला के अन्तर्गत लुहार, सुनार, जुलाहे आदि के व्यवसाय आते हैं। ललित कला के पाँच भेद होते हैं—वस्तुकला, मूर्ति-कला, चित्रकला, सङ्गीतकला और काव्यकला। ललित-कलाओं में काव्यकला श्रेष्ठ मानी जाती है और काव्यकला में भी 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' के आधार पर नाट्यकला ही सर्वोत्तम समझी गई है।

भारतीय नाट्यकला का इतिहास रोचक है क्योंकि इसका विकास शुद्ध राष्ट्रीय है जो पाश्चात्य प्रभाव के बिना ही स्वतन्त्र रूप से हुआ है। परन्तु इसके उद्भव को समझने के लिए भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न वाद घड़े हैं। उनमें से कुछ का सम्बन्ध धर्म की धारणा से, कुछ का लौकिक लीलाओं से और कुछ का पाश्चात्य देशों के आधार पर भारत की प्रत्येक वस्तु के उद्भव दिखाने की प्रथा से है। उनके मतानुसार मुख्य वादों को प्रदर्शित कर तथा उनका खण्डन कर भारतीय नाट्य का शुद्ध पवित्र रूप रखना ही इस लेख का उद्देश्य है।

यूनानी उद्भववाद (Theory to Greek Origin):-

कुछ विद्वान् समझते हैं कि शायद भारतीय नाट्यकला से हुआ होगा। वैबर (Weber) और विंडिश (Windisch) इस मत के विशेष प्रवर्तक हैं। उन्होंने 'मृच्छकटिक' नाटक को भारत का सर्वप्रथम नाटक मानकर अपने मत का पोषण किया है। परन्तु यह बात खोज से सिद्ध हो चुकी है कि 'मृच्छकटिक' से पहले अश्वघोष, भास आदि नाटक भारत में उपस्थित थे। भारतीय नाटक आकार की दृष्टि से भी यूनानी रूपकों से मेल नहीं खाते हैं। 'मृच्छकटिक' का आकार ऐस्काइलस (Aeschyles) के प्रत्येक नाटक के आकार से तिगुना है। भारतीय नाटकों में यवनियों को राजाओं की अङ्गरक्षिकाओं के रूप में प्रदर्शित किया गया है, परन्तु यूनानी नाटकों में यह बात नहीं पाई जाती है। यवनिका जिसका प्राकृत रूप जवनिका है और जिस शब्द की उत्पत्ति 'युञ् बन्धने' से हुई है पर्दे का द्योतक है जो दर्शकों से किसी दृश्य को आवरण करता है 'युञ्, युनाति, बध्नाति- आवृणोति अनया इति।' हाँ, यह माना जा सकता है कि भारतीय रंगशालाओं के पर्दे विदेशी वस्त्र या रंग से कदाचित् ईरानी बेल-बूटेदार क़ालीन की जाति के किसी वस्त्र विशेष से तैयार किए जाते होंगे। यूनानी नाटकों में पर्दे का प्रयोग नहीं है। अन्तरात्मा, कथावस्तुक्रम तथा निर्माण सिद्धान्त की दृष्टि से यूनानी और भारतीय नाटक एक दूसरे से बिलकुल ही विपरीत हैं।

पर्ववाद (May Pole Theory):—

पर्ववाद के अनुसार इन्द्रध्वज पर्व जिस पर नाटकों के खेले जाने का उल्लेख मिलता है, यूरोप के मे पोल (May Pole) त्यौहार के सदृश कहा गया है। परन्तु मे पोल (May Pole) त्यौहार का समय जब कि शरद् के पश्चात् वसंत में होता है, इन्द्रध्वज का त्यौहार, जो इन्द्र की वृत्र (मेघ) विजय का सूचक है, वर्षा के अन्त में पड़ता है।

मृतात्माओं के प्रति श्रद्धा का वाद (Theory of cult of the dead):—

प्रोफेसर रिजवे (Ridgeway) कहते हैं कि भारत में वस्तुतः सारे जगत् में ही, नाटक का जन्म मृतात्माओं के प्रति प्रकट की हुई लोगों की श्रद्धा से हुआ है। भारतीय नाटकों में हालां कि श्रीराम या श्रीकृष्ण आदि वीर पुरुषों के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले नाटक लिखे गए हैं परन्तु अधिकांश भाग में भारतीय नाटक शृंगारपूर्ण हैं और वीर रस का निरूपण उसी सीमा तक किया गया है जिससे नायक अपनी नायिका को प्राप्त कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठपुतलियों के नाच का वाद (Theory of puppet Play):—

जर्मन विद्वान् डाक्टर पिशेल (Pischel) भारत में नाटक की उत्पत्ति पुत्तलिका नृत्य से मानते हैं। भारतीय साहित्य में पुत्तलिका, पुत्रिका, दारुमयी इत्यादि के नाम से इनका उल्लेख मिलता है। भारतीय नाटकों में सूत्रधार तथा स्थापक शब्दों का प्रयोग इस मत के पक्ष में सहायक होता है। जिस प्रकार कठपुतलियों के नाच में कठपुतिलियों का सूत्र किसी संचालक के हाथ में रहता है तथा एक व्यक्ति उनको स्थापित करता है, वैसे ही भारतीय नाटक के सूत्रधार और स्थापक नाटकीय पात्रों का ठीक प्रकार से संचालन करते हैं। यह वाद भी ठीक नहीं क्योंकि कठपुतलियों के नाच से पहिले नाट्यकला जिसमें अभिनय, नृत्य आदि सम्मिलित हैं अवश्य विद्यमान होगी और यह वाद 'सूत्रधार' शब्द पर निर्धारित हो कर भी नहीं अपनाया जा सकता क्योंकि सूत्रधार एक ऐसे व्यक्ति का नाम है जो सूत्र रूप से नाटक के कथा-वस्तु, नायक तथा रस का वर्णन करता है।

छायावाद (Theory of Shadow Play):—

प्रोफ़ेसर लूडर्स (Luders) का कथन है कि भारतीय नाटक के विकास में मुख्य भाग छाया द्वारा खेल दिखाने की प्रथा का है। परन्तु प्राचीन काल के 'इताङ्गद' नाटक के अतिरिक्त भारत में कोई अन्य छायावादी नाटक उपलब्ध नहीं है। 'उत्तररामचरित' में छाया सीता का उल्लेख मिलता है परन्तु इतने से ही यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय नाटक का उद्भव 'छाया नाटक' से हुआ है। हमारे प्राचीन नाट्य-ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त इस मत से गद्य पद्य के मिश्रण का तथा संस्कृत, प्राकृत के प्रयोग का कोई कारण नहीं बताया जा सकता है।

उपरोक्त वादों का निरूपण तथा खण्डन कर अब यह दिखाया जाएगा कि भारतीय नाट्यकला का उद्भव कैसे हुआ और इसके प्राचीनतम चिन्ह हमें कहाँ प्राप्त होते हैं।

परम्परा के अनुसार नाट्यकला के प्रादुर्भाव का स्थान द्युलोक है। भारतीय नाट्यकला की प्राचीनतम पुस्तक भरत के 'नाट्यशास्त्र' से हमें ज्ञात होता है कि रजत काल के आरम्भ में इन्द्रादि देव मिल कर ब्रह्मा के पास गए और उन्होंने प्रार्थना की कि हमें मनोविनोद की दृश्य, श्रव्य वस्तु (क्रीडनीयक) प्रदान की जाए जिसका अलौकिक आनन्द सर्वसाधारण के लिए समान रूप से प्राप्त हो सके (सार्ववर्णिक)। ब्रह्मा ने नाट्यवेद प्रकट किया। इसमें ऋग्वेद से पाठ्यवस्तु, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लियागया। शिव नेताण्डव नृत्य,पार्वती ने लास्य नृत्य और विष्णु ने चार वृत्तियों का इसमें समावेश किया तथा विश्वकर्मा ने रंगशाला का निर्माण किया। सबसे प्राचीन नाटक जो इन्द्रध्वज पर खेले गए, तथा जिनमें गन्धर्वों ने तथा अप्सराओं ने भी भाग लिया 'त्रिपुरदाह' और 'समुद्र-मन्थन' थे। इस नाट्यकला का मर्त्यलोक में पहुँचाने का कार्य भरत को दिया गया।

लगभग प्रत्येक देश में नाट्यकला का आविर्भाव मनुष्यों की धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित प्रतीत होता है। यूनान में जिस प्रकार बेकस (Bacchus) के आदरार्थ उत्सवों के समय पर जो गान किए जाते थे उन्हीं से नाट्यकला का प्रादुर्भाव माना जाता है वही बात प्राचीन भारतीय नाटकों के सम्बन्ध में लागू है। ऋग्वेद में कई संवाद सूक्त आते हैं जो वार्तालापयुक्त भी हैं यथा 'सरमा और पणिलोग' तथा पुरुखा और उर्वशी के संवाद आदि। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में 'शैलूष' शब्द मिलता है। इसके अनुसार 'सूत' नृत के काम में लाया जाता था और 'शैलूष' गान के लिये प्रयुक्त किया जाता था। सामवेद जो ऋग्वेद के सूक्तों पर आधारित है केवल गायन के हेतु ही निर्मित किया गया था। ज्ञात होता है कि महाव्रत = अनुष्ठान में कुमारियाँ अग्नि के चारों ओर नाचती थीं। शूद्र और वैश्य का प्रकाशार्थ कलह करना नाटकीय प्रतीत होता है।

नट और नर्तक दोनों शब्द रामायण एवं महाभारत में पाए जाते हैं। रामायण में नाटक शब्द भी मिलता है:—

'वादयन्ति तथा शान्तिं लास्यन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यवरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च॥

'कुशीलव, शब्द जो नट का द्योतक है रामायण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुश तथा लव से निकला हुआ प्रतीत होता है। रामायण की तरह महाभारत में भी नट, नर्तक, गायक तथा सूत्रधार शब्दों का प्रयोग मिलता है। महाभारत के अन्तर्गत 'हरिवंशपुराण' में रामायण से कथा लेकर नाटक खेलने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। बौद्धिक ग्रन्थों में भी नाटकीय सामग्री उपलब्ध है। दीघ निकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में मनोविनोद तथा खेल तमाशों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। रंगमंच पर नाटक के खेले जाने का स्पष्ट उल्लेख 'अवदान शतक' में मिलता है।

अर्थशास्त्र के अध्ययन से पता लगता है कि नाट्यकला उसके समय में पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी तथा राजाओं के द्वारा नट मनोविनोद तथा राज्य के उपयोगी कार्यों के लिए रखे जाते थे। अर्थशास्त्र में नाटकमण्डलियों का वर्णन मिलता है। जिस समय ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर खेल दिखाने जाते थे इन को पाँच पण राजा को देना पड़ता था। राजमंडल की ओर से रंगमंच पर अभिनय करनेवाली स्त्रियों के लिए नाट्यकला की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। राजा नटों, नर्तकों, वादनाचार्यों, कथावाचकों, ऐन्द्रजालिकों को गुप्तचर रूप से रखते थे। रंगमंच पर कार्य करनेवालों के वेतन निश्चित थे। कुशीलव (नट) को ३५० पण वार्षिक मिलता था। उनमें जो बाजा बजाने में प्रवीण होते थे उन्हें ७०० पण वार्षिक मिलता था।

वात्स्यायन नाट्यकला के प्राचीन लेखकों का वर्णन करता है। वह पीठमर्द, विट, विदूषक और कुशीलव का निर्देश करता है जो नागरिक जनों का मनोरंजन करते थे। राजा की ओर से नियुक्त नट पर्व के दिनों में सरस्वती के मन्दिर में नाटकों को खेलते थे।

सूत्रकाल के समय मालूम पड़ता है कि नाट्य कला का साहित्य बहुत बढ़ गया होगा जिससे कि इसे सूत्र रूप में लाने का प्रयत्न किया गया। पाणिनि के व्याकरणशास्त्र में शिलालिन, कृशाश्व आदि नाट्यकला के आचार्यों का उल्लेख मिलता है। तदनन्तर पतञ्जलि के 'महाभाष्य' में भी 'कंसवध' तथा 'बलिबन्धन' का उल्लेख पाया जाता है। महाभाष्य में प्रयुक्त हुए 'रसिको नटः' से प्रतीत होता है कि पतञ्जलि के समय में नाट्य में रसवाद प्रसिद्ध हो चुका था।

उपलब्ध प्राचीनतम नाटक अश्वघोष, भास तथा कालिदास के हैं। इन नाटकों के अध्ययन से पता लगता है कि ये उच्च कोटि के हैं और नाट्यकला की दृष्टि से लगभग सभी परिपूर्ण अवस्था को प्राप्त हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि इनसे पहिले अवश्य ही नाट्यकला अपरिपूर्ण अवस्था में बिखरी हुई दशा में पूर्वकाल से चली आ रही होगी जब कि हम परम्परा से नाट्यकला का उद्भव देख चुके हैं।

सारांश यह है कि भारतीय नाट्यकला के उद्भव के लिए किसी वाद विशेष की आवश्यकता नहीं क्योंकि ये वाद भारतीय नाट्यकला के सम्पूर्ण अंगों को प्रकाशित नहीं कर सकते केवल इसके अंगों को पृथक् रूप से द्योतित कर सकते हैं। भारतीय नाट्यकला प्राचीनतम है तथा भारत की ही देन है—अन्य किसी देशकी नहीं। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय नाट्यकला पराम्पागत है और इसका विकास इस प्रकार हुआ है कि बाहरी जितने विषय आते गए उनको भी यह अपने में समावेश करती गई परन्तु इसने अपनापन किसी काल में भी नही त्यागा।

—डा. चन्द्रभान गुप्त,
एम. ए., डि. लिट.

चहहु जौ साँचौ निज कल्यान,
जपौ निरन्तर एक जबान।
हिन्दी 'हिन्दी' हिन्दुस्तान॥

—प्रतापनारायण मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशीलता क्या है ?

प्रायः कहा जाता है कि हमारा सर्वमुखी विकास हमारी प्रगति का द्योतक है। इसका अभिप्राय यही है कि हमारे पूर्व ज्ञान की अपेक्षा वर्तमान द्वारा प्राप्त 'कुछ अधिक' ज्ञान ही हमारी वह प्रेरणा है जो हमें आगे बढ़ने का उत्साह देती है। इस उत्साहजन्य नवीन अनुभूतियों की व्यंजना प्रगतिशीलता है। यदि हम यह अर्थ ठीक मानें तो एक बड़ी आपत्ति हमारे सामने आ खड़ी होती है वह यह कि ऐसी अवस्था में एक प्रश्न स्वभावतः यह उठता है...क्या इस 'कुछ अधिक' से हमारे अतीत का कोई सम्बन्ध नहीं है ? यदि वर्तमान के बन्धनों को छोड़ कर हम मुक्ति की ओर जाते हैं, अथवा समाज की वर्त्तमान स्थिति से असन्तुष्ट होकर उसका नव निर्माण करना चाहते हैं तो क्या ये सब स्थितियाँ अतीत से सम्बन्धित ही नहीं है ? क्या वर्त्तमान और अतीत में किसी प्रकार की सूत्रबद्धता के प्रमाण का अभाव ही हमारी प्रगतिशीलता की प्रवृत्ति का द्योतक है ? ऐसा नहीं है। 'जो था' उसका एक बारगी ही तिरस्कार कर देना उस वृक्ष की जड़ काट देने के समान है जिसकी शाखाओं में लगे हुए फलों से काटनेवाला आनन्द की प्राप्ति करता है। वास्तविक प्रगतिशीलता तिरस्कार की उद्वेगजनक उक्तियों में नहीं है और नहीं वह योग्यता धुआँधार भाषा द्वारा विद्रोहात्मक शब्दों की योजना ही कही जाती है। वह तो बुद्धिवाद की कसौटी पर परखी हुई एक जीवनप्रदायिनी प्रेरणा है जिससे हमें विश्वास होता है कि हम अपने को वर्त्तमान और भविष्य में सुखी बना सकेंगे। ऐसी प्रवृत्ति हम में न केवल हमारी रक्षा-वृत्ति (Instinct of self preservation) की ही तृप्ति करती है वरन् हमें आत्म प्रसार (Propagation of the self) की ओर से भी आश्वासन दिलाती हैं।

प्रगतिशीलता में, मैं मानता हूँ, 'वास्तव' और 'अवास्तव', सत्य 'और' 'काल्पनिक' 'सुन्दर' और 'असुन्दर' आदि अनेक विरोधी युग्मों का स्वतः ही समावेश हो जाता है। इसका अभिप्राय तो यही हुआ कि प्रत्येक युग की भावनाएँ और स्थितियाँ हमें जीवन की अनेक स्थितियाँ और आवश्यकताओं का मूल्यांकन करने के लिए बाध्य करती हैं और हम युग-धर्म और युग-प्रवृत्तियों के अनुसार मूल्यांकन करने के लिए बाध्य होते हैं। ऐसी अवस्था में अतीत के प्रति अश्रद्धा और बाध्य का तो कोई कारण ही नहीं मिलता। क्या हमारा 'वर्तमान' 'अतीत' का परिणाम नहीं है ? क्या हमारी संस्कृति प्राचीन का बहिष्कार कर विकसित हुई है ? क्या हमारी सौन्दर्यानुभूति निरन्तर विकसित होती हुई रुचि का परिणाम नहीं है ? कहना तो यह है कि कोई भी साहित्यकार "जो है" उसकी साधना में "जो था" उसे उठा कर अलग नहीं फेंक सकता।

एक समय था जब विज्ञान तक यह मानता था कि कभी कभी घटनाएँ अकस्मात् हो जाती हैं और उनमें कारण की खोज करना व्यर्थ होता है। परन्तु वर्तमान किसी भी घटना को केवल घटित (incidental) नहीं मानता, वह उसके कारण पर विश्वास करता है चाहे वह मनुष्य के सीमाबद्ध ज्ञान के कारण अप्राप्य भले ही हो। परन्तु कोई न कोई कारण प्रत्येक घटना का होगा अवश्य। इन कारणों को क्रमबद्ध करने से ही नियम बनते हैं। साहित्य में भी परम्पराएँ इसी प्रकार विकसित होती हैं। अत एव नियम और नियम-बद्धता एक प्रवाहमान मानदंड है जो अस्थायी होकर भी स्थायित्व रखता है। हमें दुःख है हमारे वर्तमान कवि और विचारक अपने प्रचार के आवेश में आ कर अथवा सिद्धान्तों पर ध्यान न देकर तत्सम्बन्धित कुछ उक्तियों या 'नारों' के वशीभूत होकर सत्य के अनुसंधान से अलग हो जाते हैं और अपने विचारों के विरुद्ध कहनेवालों पर दुर्वासा दृष्टि डालने लगते हैं। प्रगतिशीलता का अभिप्राय 'अतीत से विद्रोह' कभी नहीं हो सकता और न 'वर्तमान से मोह' ही उसकी सर्वांगीण परिभाषा की जा सकती है। जिसे 'नूतनता' कहा जाता है, जो 'भौतिकता' के नाम से अलंकृत की जाती है वह एक ऐसी 'चेतना' है इसका निर्माण पृथक्त्व (प्राचीन और अर्वाचीन के) पर नहीं होता वरन् प्राचीन और वर्तमान के योग पर होता है।

हिन्दी के प्रगतिशील कहे जाने वाले साहित्य पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप की दो विचारधाराओं का विशेष प्रभाव पड़ा है, मार्क्सवाद और फ्रायड के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त। मार्क्सवाद का सम्बन्ध समाजशास्त्र से है और यही कारण है कि मार्क्स ने समाज के निर्माण और पुनःसंगठन में आर्थिक योजनाओं को सब से अधिक महत्व दिया है। आर्थिक असन्तोष मानवता का सब से बड़ा अभिशाप है। मनुष्य के अज्ञान का लाभ उठा कर उसका कुछ व्यक्तियों द्वारा अपनी स्वार्थपरता में दुरुपयोग जिसे 'शोषण' कहा जाता है, यही अधिकांश में हमारी ग़रीबी और उसके कारण उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियों का कारण है। अत एव मार्क्स ने इस ओर ध्यान आकर्षित कर अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वारा मानवता की स्थापना का संदेश दिया। धर्म और राजनीति इस आवश्यकता के सामने गौण पड़ गए। हमारे वर्तमान प्रगतिशील साहित्य में इसी विचारधारा की प्रधानता है। "मानव मानव का तिरस्कार क्यों करता है?" "हमें इसी भूमि को स्वर्ग बनाना है", "किसीको भी शोषण का अधिकार नहीं" आदि वाक्य प्रत्येक कविता और साहित्यिक प्रसंगों में मिल जाएँगे।

दूसरी धारा, जिसने प्रगतिशीलता के नाम पर कुछ अस्त-व्यस्त विचारों को हिन्दी में जन्म दिया है, फ्रायड के सिद्धान्त हैं। उनका सम्बन्ध स्त्री और पुरुष के विषय में प्रतिपादित कुछ मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों से है। वैसे तो स्त्री पुरुष का परस्पर सम्बन्ध कोई नवीन विषय नहीं है। भारतीय दर्शन और समाज में उसका एक निश्चित और सुगठित रूप है परन्तु उस प्राचीनता और नवीनता में एक भौतिक भेद है। प्राचीन विचारधारा का अवलम्बन नैतिक और आचार-शास्त्र है। इसी पक्ष पर सबसे अधिक जोर दिया गया है जिसका परिणाम यह हुआ कि आजकल के विद्वानों के सामने केवल वही रूप अधिक वर्तमान रहा और उन्होंने इसे एकांगी पक्ष कह कर ही स्वीकार किया है। यद्यपि उनकी यह धारणा निराधार है क्योंकि वर्तमान Sex (काम) के दृष्टिकोण से इस समस्या पर जो विचार भारतीय पक्ष को प्रकट करते हैं उन का समावेश कामसूत्रों में मिलता है। वात्स्यायन का कामसूत्र इस विषय का बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ है। नवीन विचारधारा के प्रवर्तक केवल मनोवैज्ञानिक आधार पर ही इस समस्या की नींव रखना चाहते हैं। वास्तव में इसका कारण धार्मिकता के प्रति उनकी विद्रोह भावना है। यह युग अध्यात्म की ओर न जाकर भौतिक विकास की ओर अधिक झुक रहा है। ऐसे समय में जब हम अपनी शरीर रक्षा में अपने को असमर्थ पाते हैं और विज्ञान द्वारा प्रदत्त जीवन को सुखमय बनाने वाले पदार्थों का उपयोग न कर सकने की आवश्यकता देखते हैं तो इस प्रकार की प्रतिक्रिया स्वभाविक ही है।

हमें एक बात पर ध्यान देना है।...विचारधारा युग के अनुकूल परिवर्तित होती है और यही दशा उससे सम्बन्ध रखनेवाले काव्य की भी है। परन्तु युगानुकूल काव्य धारा के अतिरिक्त हमारे जीवन में एक और शाश्वत अंश है और वह है रसास्वादन। वृत्तियों के इसी अध्ययन के आधार पर प्राचीन रसवाद का जन्म हुआ था और आज भी वे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त वैसे ही सत्य हैं जैसे वे पहले थे। क्या यह उचित न होगा कि जहाँ हमारा साहित्य युगानुकूल हो वहाँ उसका एक अंश विश्व-जनीन सौन्दर्य और सत्य से भी आप्लावित हो?

यदि यह उचित है तो देखना चाहिए कि इस ओर हमारी प्रगतिशीलता क्या है?

—डा. सोमनाथ गुप्त,
एस. ए., पी एच. डी.

एक अमेरिकन देहाती स्त्री को ज्ञात हुआ कि अणु-शक्ति-आयोग को "भारी-पानी" की आवश्यकता है। उसने आयोग को लिखा कि वह अपने कुएँ के भारी पानी को उन्हें बेचना चाहती है। उसने लिखा—"मैं गत चालीस वर्ष से अपने कुएँ से पानी के गागर उठा कर ला रही हूँ परन्तु कुछ समय से वे प्रतिदिन भारी होते चले जा रहे हैं।"

HAYMAKER

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशीलता चाहिए प्रगतिवादिता नहीं

आज का हिन्दी साहित्यकार गत्यवरोध को मिटाने के लिये वादों की खोज में बुरी तरह व्यस्त है। साहित्य सम्प्रदाय से सृष्ट नहीं होता। उसके सृष्ट होने बाद लोग उस पर सम्प्रदाय का आरोप करते हैं और साहित्य से प्राप्त होनेवाले सहज रस से अपने को पराङ्मुख करते हैं। "कलिदास का साहित्य बुर्जुआ पोषक है, शेक्सपियर बुर्जुआ समाज का चित्रकार है, इसलिए ये दोनों साहित्य-कार कवि नहीं हैं" का नारा लगानेवाले सम्प्रदाय-वादियों, कठमुल्लाओं से क्या कम हैं?

साहित्य हृदय की मरोर से उत्पन्न होता है, किसी वाद को पढ़ कर नहीं और यह मरोर सिर पर घास का बोझा ढोने वाली कृश-काय नारी की दुर्दशा के अनुभव से उठ सकती है और किसी अट्टालिका में वैभव के पर्यंक पर अपने प्रिय के वियोग में करवटें बदलने-वाली नारी की दशा देखकर भी। साहित्य किसी वर्ग का नहीं होता, पूर्ण समाज का होता है। अतः साहित्य की कसौटी उसमें प्रतिबिम्बित होनेवाली ईमानदारी है, वाद नहीं। जो साहित्य हर युग में अपनी ताज़गी कायम रख सकता है, वही जीवित रहता है और वही प्रगति-शील है। प्रगतिशील साहित्य युग सापेक्ष्य नहीं, निर-पेक्ष्य होता है। साहित्य के सापेक्ष्य जहाँ वाद मिल जाता है वहाँ वह बंधन में फँस जाता है। यह बंधन राजनीति का हो सकता है समाज-नीति का हो सकता है और धर्म-नीति का भी। कवि को बन्धन से बाहर जाने का निषेध-पत्र मिल जाता है; उस पर १४४ धारा लग जाती है। पंख कटा हुआ साहित्य किसी वाद का प्रचार ही कर सकता है जो समय आने पर धुएँ के समान ही हहर कर विलीन हो जाता है। उसका ऊपरी प्रवाह सूख जाता है। परिस्थितियों पर लिखा हुआ साहित्य परिस्थितियाँ बदल जाने पर विस्मृत हो जाता है। परन्तु मानव की शाश्वत भावनाओं पर जिस साहित्य के प्राण जन्म लेते हैं उस पर विस्मृति की धूल नहीं जमने पाती। सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि का साहित्य प्रगतिशील है, इनके साहित्य में जीवन का तादात्म्य है, कठिन साधना है, अपनी अभि-व्यक्ति के प्रति ईमानदारी है। क्या यही बात आज के प्रगतिवादी साहित्य के सम्बन्ध में कही जा सकती है? क्या उसके सिरजनहार अपनी अभिव्यक्ति के साथ समरसता स्थापित कर सके हैं? क्या उनका जीवन हल, हँसिया, हथौड़ाधारियों के साथ पसीना और आँसू बहाता है। हम तो उसमें बौद्धिक सहानुभूति मात्र देखते हैं, कल्पना का सुन्दर विकास और चमत्कार पाते हैं। रूस के प्रसिद्ध साहित्यकार गोर्की के साहित्य में स्पन्दन है क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति और जीवन में तादात्म्य है। उसका साहित्य गतिशील है। गत वर्ष (१९५०) नोबल पुरस्कार विजेता विलियम फॉकनर के साहित्य में वही बात पाई जाती है। वह अपने देखे और भोगे हुए जीवन को विशेष महत्व देता है। इसीलिए उसके उपन्यासों के पात्र बार बार हमारी आँखों के सामने आते हैं। जान पड़ता है, उपन्यासकार जिन व्यक्तियों के बीच में चलता फिरता है, उनको ही भिन्न भिन्न रंगों में साहित्य से उता-रता रहता है-चित्रित करता रहता है। ईमानदारी साहित्य को जीवित रखती है। साहित्य-सृजन का एक ही सूत्र है—एक ही मंत्र है-मनुष्य के जीवन को समझिए। अपने मित्रों और परिचितों की प्रवृत्तियों का अध्ययन कीजिए। बस, साहित्य-निर्माण सरल हो जाएगा। अपने पात्रों की खोज में बड़े बड़े ग्रन्थों के पन्ने उलटना व्यर्थ है, सुबह से शाम तक हमारी आँखों के सामने चलता फिरता जीवन पढ़ कर भी यदि हम साहित्य में सृष्ट न कर सकें तो समझ लेना चाहिए कि अपने में ही कहीं कमी है। या तो हम शब्दों के दरिद्री है या हमारी निरीक्षण-शक्ति शीतल है। यहाँ यह कहने का आशय नहीं है कि महान् साहित्यकारों के ग्रन्थों का अध्ययन अपेक्षित नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा आशय यही है कि स्वयं अनुभूत तथ्य साहित्य को अधिक प्राणवान् बनाता है।

यदि प्रगतिवादी साहित्यकार अपने साहित्य को प्रगतिशील बनाना चाहते हैं तो उन्हें राजनीतिक घेरे को तोड़ कर रूसी प्रचार रूढ़ियों से मुक्त हो कर दलितों और पीड़ितों के बीच अपना जीवन यापन करना चाहिए। अपनी अभिव्यक्ति को उन तक पहुँचाने का यत्न करना चाहिए, उनके अभावों के उत्पीड़न को जब तक स्वयं अनुभव नहीं किया जाएगा उनकी अभिव्यक्ति में गति नहीं अनुभव होगी—प्रभाव नहीं पैदा होगा।

प्रगतिवादियों की विषय-सीमा की संकीर्णता से खीझ कर या ऊब कर अज्ञेय, माचवे, पंत, अश्क आदि प्रयोगवाद की ओर चल पड़े हैं। यह वाद शायद विषय की सीमा नहीं मानता, अभिव्यंजना की नूतन रूपरेखा पर विश्वास करता है, नए भाव, नई उपमा, नई कल्पना उसके प्राण हैं। प्रयोग में अभिनयता का माहात्म्य आज का ही वाद नहीं कहा जा सकता। युग-युग से कवि अभिनव कल्पना का आकांक्षी रहा है और युग-युग तक रहता आएगा। यदि हिन्दी के कलाकार साहित्य में नूतनता की सृष्टि करना चाहते हैं तो उनका अभिनन्दन किस का धर्म होगा? पर इस यन्त्र-युग के साधनों से हमारी आत्मीयता बढ़ नहीं पाई है। जब तक हमारा रागात्मक सम्बन्ध इससे नहीं हो पाएगा, तब तक उससे ली हुई कल्पनाएँ हम में साधारणीकरण नहीं उत्पन्न कर सकेंगी। प्रयोगवादियों को अधिक अपरिचित उपमानों की खोज नहीं करनी चाहिए। नहीं तो उनकी रचनाएँ भी कबीर की उलटबाँसियाँ या सूर के दृष्टिकूट बन जाएँगे। युग के ज्ञान ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति की है। वह सरस साहित्य में न उतरे यह मेरा आग्रह नहीं है। पर जब तक नूतन आविष्कारों से जन-मन रंजित नहीं हो जाता, तब तक इनका स्वीकार रसमय नहीं बन सकता और जब साहित्य रसमय नहीं हो पाता, उसमें स्थायित्व भी नहीं आ पाता। यदि प्रयोगवादियों का लक्ष्य केवल प्रयोग और आत्मसुख है, तो बात ही दूसरी है। वह 'स्वान्तःसुखाय' का ही साहित्य हो सकता है, 'बहुजन-सुखाय' नहीं। क्या प्रयोगवादी अपने साहित्य को अपने तक ही सीमित रखना चाहते हैं? या सब तक उसे पहुँचाना चाहते है? यह प्रश्न है कि जिन पर हमें गंभीरता से और वाद-निरपेक्ष होकर विचार करना चाहिए।

—**प्रो. विनयमोहन शर्मा,**
एम. ए.

कन्नड़

गुणादिन्द होलेयस

होलेय होरगिहने ऊरोळगिल्लवे,
होलगे रियोळु होलेय होलतिल्लवे
"शीलवनु केकोंडु नडेसदातने होलेय
केलि हरिशास्त्रगळ हेळदव होलेय
आलागि अरसनोलु मुनिववने होलेय
सूलेयर होगुवव शुद्ध होलेय ॥१॥

अछूत कौन है?

क्या अछूत लोग गाँव से बाहर ही रहते हैं? गाँव में नहीं?
क्या ढेढ़वाड़ों में ही अछूत रहते हैं?
दुःशील व्यक्ति अछूत हैं।
हरिनाम को श्रवण कर उच्चारण न करनेवाला अछूत है।
दुष्टों की संगति में रहनेवाला अछूत है।
धन होने पर न देनेवाला अछूत है ॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला का मार्क्सवादी दृष्टिकोण
(२)

अक्टूबर मास की 'अजन्ता' पत्रिका में भाई हरिकृष्ण पुरोहित का लेख इसी शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। अपने लेख में कुछ मार्क्सवादी प्रतिज्ञाओं के आधार पर पुरोहित जी ने 'कला' की समीक्षा की है और अन्त में कुछ ऐसा पाते हैं कि कला का तत्व और है तथा मार्क्सवाद का तत्व और है। दोनों में कुछ ऐसा विरोध है कि संगति नहीं बैठती। एक दूसरे के विरोध में खड़े होते हैं।

पुरोहित जी कहते हैं:-

१- यह सही है कि मानव-इतिहास को मार्क्स की देन अत्यंत महत्व-पूर्ण है।

२-मार्क्सवाद व्यक्ति-स्वातंत्र्य को भ्रम समझता है।

३—कलाकार के लिए किसी एक मत या विचार-धारा को फिर चाहे वह कितनी ही श्रेष्ठ हो स्वीकार करना उसकी कला की विकृति है।

४—कलाकार का कला के प्रति जो उत्तरदायित्व होता है उसे न निभाना कला के साथ व्यभिचार है।

५—कलाकार की संवेदना तो प्रत्येक प्राणी के साथ रहती है सत्य और न्याय का पक्ष लेकर - वहाँ वर्ग जाति, मत का प्रश्न नहीं उठता, और न उठना चाहिए।

६—अवश्य कला के प्रति उसका (मार्क्सवाद का) दृष्टिकोण पूर्वग्रहीत (Prejudiced) रहा है और कला को साध्य के बदले उसने साधन रूप में अपनाया है।

७—मार्क्सवाद की सब से बड़ी शक्ति यह है कि वह व्यक्ति के घोंघे को तोड़ कर उसे समाज के विशाल प्रांगण में प्रविष्ट होने के लिए प्रेरित करता है—परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा करते हुए भी वह व्यक्ति के व्यक्तित्व को भुलावा देता है।

८—संघर्ष की परिस्थिति न उत्पन्न करते हुए कलाकार मार्क्सवाद से यही संदेश ले सकता है कि वह अपनी घोर व्यक्तिपरता को छोड़ कर समाज की ओर भी देखे तब वह पाएगा जीवन। केवल रुदन या असफलता नहीं और वह देखेगा कि मनुष्य की शक्ति असीम है।

हम संक्षेप में इन आठ प्रतिज्ञाओं की समीक्षा विवेचना करना चाहेंगे।

पहली बात यह है कि मार्क्स की देन मानव इतिहास को अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लेकिन पुरोहित जी ने यह नहीं बताया कि यह अत्यन्त महत्वपूर्ण देन क्या है जिसे कार्ल मार्क्स ने मानव-इतिहास को दिया है? क्या यह भौतिकवाद है? तो वह तो पहले से वर्तमान था। क्या यह सामाजिक दृष्टि है? वह भी बहुत पहले से वर्तमान थी। क्या यह देन सामाजिक परिवर्तन या क्रान्ति या वर्ग संघर्ष थी? सो भी मार्क्स के पहले से चले आ रहे थे। तो मार्क्स की अत्यन्त महत्वपूर्ण देन क्या थी? बिना इस सवाल का जवाब दिए हुए आप यह नहीं कह सकते कि अब मार्क्सवाद पुराना पड़ गया है इस लिए आदर्शवाद का सत्य शाश्वत सत्य है। एंगिल्स ने इसी देन के बारे में लिखा है:—

"दो महत्वपूर्ण खोजों के लिए हम कार्ल मार्क्स के ऋणी हैं-उसकी पहली खोज थी-"इतिहास का भौतिक-वादी दृष्टिकोण" और दूसरी खोज थी—"अतिरिक्त मूल्यों के द्वारा पूँजीवादी उत्पादन का रहस्य" *

मानव इतिहास को कार्ल-मार्क्स की ये अत्यन्त महत्वपूर्ण देन है। इतिहास का भौतिकवादी सिद्धान्त—पूँजीवादी उत्पादन का रहस्य—अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त। पहली खोज की गरिमा द्वंद्वात्मक गति (Dialectics) को प्रकृति के क्षेत्र से मानव-समाज के क्षेत्र में भी लाना है। दूसरी खोज की प्रतिष्ठा पूँजीवादी उत्पादन का आत्मविरोध है। यह आत्मविरोध हवाई नहीं है इसलिए समाज के वर्गों में फूट पड़ता है। पूँजीवादी अपनी क़ब्र खोदनेवाले वर्ग का निर्माण अपने हाथों से स्वयं करता है। यह भी मार्क्स ने कहा था। इस युग के नेतृत्व का भार इतिहास ने कर्मठ और परिश्रम करनेवाली जनता के हाथों में सौंप दिया है—उसे और कोई नहीं कर सकता। कार्ल मार्क्स की यह

* (एंगिल्स-समाजवाद, काल्पनिक और वैज्ञानिक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्वपूर्ण देन मानव इतिहास को मिली है।

अब बताइए कि सौ वर्षों में जब कि गंगा का जल इतनी मात्रा में सागर में जा मिला और मनुष्य ज्ञान बहुत ज्यादह बढ़ गया तो क्या ये दोनों खोजें मिथ्या हो गईं ? क्या Dialectics के आगे किसी नए ज्ञान का उद्भव हो गया जिसने प्रकृति और समाज की गति को ज्यादह सुन्दरता और सरलता के साथ समझा दिया ? क्या इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण पुराना पड़ गया और उसके स्थान पर किसी उससे ऊँचे सिद्धान्त ने अपनी सत्ता जमा ली ? क्या पूँजीवादी उत्पादन का रहस्य अब कोई दूसरा हो गया है ? और, अतिरिक्त मूल्य सौ बरस पुरानी चीज पड़ गई है ? क्या गंगा के जल के साथ साथ पूँजीवाद के आत्म-विरोध भी मुक्त हो गए हैं ? क्या पूँजीवाद अपनी क़ब्रों के खोदनेवालों को जन्म नहीं दे रहा है ? क्या युग की गति का नेतृत्व विश्व की कर्मठ जनता के हाथों में खिसकता नहीं जा रहा है ?

सौ बरसों के बीच में मार्क्सवाद पुराना न होकर नित्य नूतन रूपों में प्रस्फुटित हुआ है। उसके सत्य धूमिल और रहस्य में लिपटे हुए नहीं वरन् प्रयोग में सत्य प्रमाणित हुए हैं। अगर देखा जाए तो आदर्शवाद आज सौ बरसों के बाद भी धूमिल और रहस्यवादी तथा जन-विरोधी होता गया है।

इसलिए पुरोहित जी इस बात की सिफ़ारिश करना चाहते हैं कि सौ बरसों के अरसे में मार्क्सवाद की ग़लती साफ़ नज़र में आ गई है—और वह यह है कि—मार्क्सवाद व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को भ्रम समझता है। पुरोहित जी कहना चाहते हैं—"वास्तव में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य एक यथार्थ है पर मार्क्सवाद उसे भ्रम मानता है।" इस 'व्यक्ति-स्वतन्त्रता' की परिभाषा क्या है ? वह किससे स्वतन्त्र है ? और स्वतन्त्र हो कर वह समाज की हत्या करता है या उसका निर्माण ? इसका विवेचन पुरोहित जी ने नहीं किया है। किस व्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रशंसनीय और किसकी निन्दित है ? इसकी चर्चा भी नहीं उठाई गई है।

इसलिए पुरोहित जी ने शीघ्र ही यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि कला को मतपरक नहीं होना चाहिए। वह मतपरक होकर विकृत हो जाती है। अच्छा तो यह होता कि पुरोहित जी अविकृत कला के कुछ उदाहरण देकर यह सिद्ध करते कि मतपरकता न होने के कारण से ही यह कला शुद्ध रह पाई है। अगर मतपरकता हो जाती तो उसमें यह विकृति आ जाती। हम यह दावा तो नहीं करते कि प्रत्येक श्रेष्ठ कला मतपरक ही होती है—पर यह अवश्य कह सकते हैं कि जो मत जीवन की प्रगति का नियम हो वह कला को विकृत न कर हर विकृति से उसकी रक्षा करता तथा उसे और भी प्रभावशाली बना देता है। विश्वास दिलाने के लिए इतना ही यथेष्ट होगा कि पिछले सौ वर्षों का मतपरक साहित्य और कला एक ओर रखिए और उतने ही वर्षों का सिद्धान्तहीन साहित्य और कला दूसरी ओर रखिए, फिर देखिए कि जीवन की प्रगति ने कला के कितने रूपों को निखार कर मर्मस्पर्शी बना दिया है। युग ऐसा है कि मतपरक बिना हुए या तो 'अज्ञेय' के समान त्रिशंकु होकर लटक जाएगा जिसको कोई विश्वामित्र न तो स्वर्ग पहुँचा सकता है और न पृथ्वी पर उतार सकता है या वह विक्षिप्त हो कर आत्महत्या कर लेगा। ये दोनों अवस्थाएँ अगर पुरोहित जी बुरा न माने तो विकृति की हैं। विचारशून्यता यदि शुद्धता और सबलता की द्योतक है तो सन्निपात सबसे ऊँची कला है।

फिर पुरोहित जी ने कलाकार के कला के प्रति उत्तरदायित्व की बात उठाई है। यह उत्तरदायित्व क्या है ? शायद पुरोहित जी यह कहना चाहते हैं कि सम्पूर्ण मानवता को संदेश देना कला का उत्तरदायित्व है। वर्ग-विशेष और जाति विशेष के लोगों के लिए संवेदनाशील होना कला के साथ व्यभिचार करना है। कला के साथ व्यभिचार करने की बात हमने वेश्याओं के विषय में सुनी है। कारण यह दिया जाता है कि वेश्याओं की सम्पूर्ण कला धन की अनुगामिनी होती है। क्लीब राजा को 'शमशेर बहादुर' कहने की बात भी कला के साथ व्यभिचार करने की बात मानी गई है। पर वहाँ पर कला के साथ व्यभिचार करने की बात पुरोहित जी ने एक नए अर्थ में उठाई है—और

१-एक ओर है सम्पूर्ण मानवता को संदेश देना।

२-दूसरी ओर है वर्ग विशेष या जाति विशेष को संदेश देना। पहली बात तो कला के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाती है। दूसरी बात को व्यवहार में लाना कला के साथ व्यभिचार करना कहा गया है। क्या हम यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यह प्रश्न करें कि बिना किसी मत को माने हुए कला के प्रति 'उत्तरदायित्व' की बात कैसे उठ सकती है ? पुरोहितजी ने कहा है कि कला मत से विकृत हो जाती है। अगर इसको वे ठीक मानते थे तो 'कला के प्रति उत्तरदायित्व' और सम्पूर्ण मानवता' को संदेश देने की बात कहाँ से उठती है ? व्यक्ति-स्वतंत्र्य को यथार्थ मानने-वाला (कार्ल मार्क्स की तरह भ्रम माननेवाला नहीं) मानवतावाद के बंधन को क्यों स्वीकार कर लेता है ? शुद्ध कला संवेदना का चित्रण करती है-सब मतों से परे और इसलिए सब उत्तरदायित्वों से मुक्त है।

पर ऐसा होता कहाँ है ? लेकिन हमारा अपना प्रश्न दूसरा है। वह यह है कि एक वर्ग विशेष या जाति विशेष को संदेश देना कला के साथ व्यभिचार करना क्यों है ? मान लीजिए कोई कलाकार अपनी जाति के प्रति ही संवेदनशील होना चाहते थे जैसे वाल्मीकि आर्य जाति के प्रति संवेदनशील होना चाहते थे रावण की जाति के प्रति नहीं, या कृष्ण गीता में अर्जुन को ही संदेश देना चाहते थे, कौरवों को नहीं, या हमारे राष्ट्रीय और जातीय कवि अपनी जाति और देश की संवेदना को ही व्यक्त करते रहे हैं तो क्या वे कला के साथ व्यभिचार करते रहे हैं ? पर ऐसा पुरोहित जी निश्चय नही मान सकते इस बात को उन्होंने और भी स्पष्टता से अपनी आगे की प्रतिज्ञा में समझाया है। कहते हैं 'वहाँ कलाकार की संवेदना तो प्रत्येक प्राणी के साथ रहती है। सत्य और न्याय का पक्ष लेकर वहाँ वर्ग जाति मत का प्रश्न नहीं उठाना और न उठाना चाहिए।" क्या यह प्रमाणित करने की वस्तु है कि 'सत्य' और 'न्याय' जिनका नाम पुरोहित जी ने इस प्रतिज्ञा में ख़ास तौर से लिया है मतपरक होते हैं ? कुछ क्षणों के लिए ज्ञान या अज्ञान में यह तो माना जा सकता है कि कला मतपरक नहीं होती-पर यह कैसे कोई मानेगा कि सत्य और न्याय मत-परक नहीं होते ? इसी सत्य और न्याय के आधार पर ही तो, आदर्शवादियों की समस्या के अनुसार, मतों का निर्माण हुआ है और हर मत ने अपने सच को सच, और अपने न्याय को न्याय कहा है। अगर पुरोहित जी यह भी न मानें कि यह सत्य और न्याय युग युग में बदलता रहता है तो भी इतना तो मानना पड़ेगा कि ये दोनों सत्य और न्याय हवाई या कल्पना की वस्तुएँ नहीं है वरन् कुछ इनका व्यावहारिक रूप होता है और यह सत्य या न्याय सर्वव्यापक होता हुआ भी किन्हीं विशेष सामाजिक शक्तियों में अपने को व्यक्त करते हैं और वे शक्तियाँ असत्य और अन्याय की शक्तियों से संघर्ष करती हुई उन्हें परास्त करती हैं। यह मार्क्सवाद नहीं वरन् भारतीय इतिहास की परम्परा में व्यक्त सत्य है। मान लीजिए पुरोहित जी गीताकार से कहते कि ऐसा संदेश दीजिए कि कौरवों का भी कल्याण हो और पांडवों का भी— एक वर्ग या जाति को संदेश देना कला के साथ व्यभिचार करना है। सत्य और न्याय के लिए तो युद्ध कीजिए पर कौरवों पांडवों का प्रश्न मत उठाइए और अपने गीता के मतवाद से भी इस सत्य और न्याय को विकृत मत कीजिए ...."

आदर्शवादी मत की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह सत्य और न्याय को अपनी हवाई विचारधारा से निरस्त्र बड़ी शीघ्रता से कर देता है।

उसके बाद पुरोहित जी ने कला के सम्बन्ध में साधन और साध्य का प्रश्न उठाया है। कहते हैं "मार्क्स-वादी कला को साधन मानते हैं - साध्य नहीं।" इस छोटे से लेख में हम साधन और साध्य की प्रकृति पर कोई लम्बी बहस नहीं करना चाहते। मार्क्सवाद की दृष्टि में साधन और साध्य का सम्बन्ध एकांगी नहीं है। साधन और साध्य एक दूसरे पर आश्रित हैं। वे परिवर्तनशील भी हैं, उनका आपस का सम्बन्ध भी बदला करता है। कोई भी साध्य, साधन बना सकता है और कोई भी साधन साध्य बन सकता है। जैसे पढ़ना साधन है और परीक्षा में पास होना साध्य। परीक्षा में पास होना साधन है; अच्छी नौकरी पाना साध्य है। अच्छी नौकरी पाना साधन है और सुख और शक्ति का जीवन बिताना साध्य। इस प्रकार से साध्य, साधन भी बन जाता है। स्पष्ट है कार्ल-मार्क्स का साध्य मानव-समाज की गति के नियमों को समझा कर उस पर समाज को और भी सबल, संपन्न और आनन्द-भूमि बनाना था—कला उनके लिए मानव समाज के जीवन से भिन्न अस्तित्व नहीं रखती थी। कला वहाँ तक साध्य है जहाँ तक समाज की प्रगति का वह साधन बन सके। उसके आगे या परे उसकी साध्यता व्यर्थ है क्योंकि उसका कोई आधार नहीं रहता।

इसीलिए पुरोहित जी फिर यह स्वीकार करते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मार्क्सवाद की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह व्यक्ति के घोंघे को तोड़ कर उसे समाज के विशाल प्रांगण में प्रविष्ट होने के लिए प्रेरित करता है। पर दुर्भाग्य यह है कि

—वह घोंघा टूट जाता है। लेकिन नहीं। मार्क्सवाद की सबसे बड़ी शक्ति यह नहीं है कि वह व्यक्तिवाद के घोंघे तोड़ता फिरता है। ये घोंघे तो निजी कल्पना से बन कर यथार्थ की चट्टान से टकरा कर स्वयं टूटा करते हैं। इनके टूटने का दोष मार्क्सवाद पर नहीं लादना चाहिए। मार्क्सवाद की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह समाज के क्रान्तिपरक वर्ग को संगठित कर समाज का समूचा ढाँचा बदलने की प्रेरणा देता है। वास्तव में देखा जाए तो व्यक्तिवाद के इन घोंघों को पूँजीवाद अपने एकाधिपत्य से तोड़ता फिरता है। समाज को अराजकता के विशाल प्रांगण में बदल कर व्यक्तियों को वह उसमें निराधार, नंगा और भूखा प्रवेश करने को बाध्य किया करता है। बिना इन घोंघों को तोड़े हुए न तो उसकी पूँजी ही जमा होती है और न उसे पुलिस या फ़ौज मिलती है जिसके सहारे वह पूँजी और उसके मुनाफ़े की रक्षा कराया करता है!

और सब का निष्कर्ष निकालते हुए पुरोहित जी कहते हैं कि—'संघर्ष की परिस्थिति न उत्पन्न करते हुए......आदि आदि। (देखिए प्रतिज्ञा–८)

गोया कलाकार संघर्ष की परिस्थिति उत्पन्न करते हैं। इस पूरी प्रतिज्ञा में एक शब्द "कलाकार" को हटाकर उसके स्थानपर "पूँजीवाद" रख कर पढ़िए। देखिए कैसा फ़िट बैठता है:—" संघर्ष की परिस्थिति न उत्पन्न करते हुए पूँजीवाद (पुरोहित जी ने 'कलाकार' लिखा है) मार्क्सवाद से यही संदेश ले सकता है कि वह अपनी घोर व्यक्तिपरकता को छोड़ कर समाज की ओर भी देखे तब वह पाएगा जीवन केवल रुदन या असफलता नहीं और वह देखगा कि मनुष्य की शक्ति असीम है।"

कलाकार को इस प्रकार से बदनाम करने से क्या फ़ायदा? संघर्ष की परिस्थितियों को पूँजीवाद उत्पन्न करता है। निजी मुनाफ़े के लिए वह समाज को छिन्न-भिन्न और नंगा-भूखा कर देता है। घोर व्यक्तिपरकता उसकी बाध्यता है। समाज की ओर वह देखता नहीं। इसलिए उसके जीवन के मूल्य और प्रतिष्ठाएँ उसके कामों को देख कर रुदन करती हैं और असफलता के गर्त में एक के बाद दूसरी गिरती जाती हैं पर पुरोहित जी ने कहा है कि मनुष्य की शक्ति असीम है और उसकी शक्ति की असीमता जिस दिन वर्ग और मत में संगठित हो कर आगे बढ़ेगी उस दिन 'कला का मार्क्सवादी दृष्टिकोण' दीप्त और प्रखर हो उठेगा। उस क्षण बुद्धदेव वसु का यह कहा हुआ कि 'अपने अन्दर अपने को खोजने के लिए......कलाकार को अपने अन्दर नहीं पैठना पड़ेगा' एक सन्निपात के सिवा और क्या लगेगा?

मार्क्सवाद सामाजिक जीवन की गति का वैज्ञानिक ज्ञान है और यदि कला वास्तव में आज जीवित रहने का संकल्प करती है तो इसी गति के अन्तर्गत उसे अपना अस्तित्व प्रकाशित करना होगा।

—आदित्य मिश्र

हम सौ वर्ष तक देखें;
हम सौ वर्ष तक जिएँ;
हम सौ वर्ष तक सुनें;
हम सौ वर्ष तक बोलें;
हम सौ वर्ष तक अदीन रहें॥

वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास जी
और
लोक-जीवन

गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लिखने का वास्तविक उद्देश्य लोक-जीवन का चित्रण करना नहीं था, वरन् उसके आदर्श की ओर संकेत करना था। इसलिए राम के चरित्र का वर्णन करने में प्रधान रूप से लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण कहीं भी नहीं मिलता। साथ ही साथ अपने काव्य-सम्बन्धी आदर्श स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'प्राकृत जन' के गुणगान न करने का भी संकल्प प्रकट कर दिया है। ऐसी दशा में बहुत विस्तारपूर्ण, व्यापक और यथार्थ तथा निरपेक्ष जनजीवन के वर्णन की आशा हम कर ही नहीं सकते। किन्तु तुलसी का उद्देश्य अपनी काव्यरचना में जन-जीवन-सुलभ वस्तुओं को देना है। इसलिए गौण रूप में प्रकारान्तर से लोक-जीवन की झलक हमें मिल जाती है।

लोक-जीवन बड़ा व्यापक है। इसके दो पक्ष ग्राम्य-जीवन और नागरिक जीवन माने जा सकते हैं और जब हम समस्त लोक जीवन को एक साथ लेते हैं तो हमारे सामने न तो विशिष्ट ग्राम्य-जीवन ही आता है और न विशिष्ट नागरिक जीवन ही वरन् उसके भीतर दोनों ही समाजों में चलते हुए जीवन की विशेषताएँ सामने आती हैं। लोक-जीवन के भीतर प्रायः ऐसी बातों का ही चित्रण रहता है जो ग्रामीण और नागरिक दोनों प्रकार के समाजों के भीतर देखने को मिलती हैं। हम यह कह सकते हैं कि लोक-जीवन न तो ग्राम्यता से युक्त है और न नागरिक वैयक्तिकता से। इसके भीतर ग्राम्य नागरिकता है। यदि हम और अधिक स्पष्ट करें तो यह कह सकते हैं कि ग्राम्य जीवन सामुदायिक जीवन है। प्रायः वहाँ के कामों में ग्रामों के समस्त जन सम्मलित होते हैं, यदि कोई उत्सव, पर्व या त्योहार है अथवा किसी के यहाँ कोई सांसारिक समारोह है तो गाँवों का सारा समाज उसमें सम्मिलित होगा। किसी एक व्यक्ति की आपत्ति, विपत्ति में भी सभी सम्मिलित होते हैं। साथ ही साथ सम्पत्ति और वैभव भी वहाँ पर प्रायः सामाजिक रूप में होता है। यदि कोई वस्तु एक के यहाँ अधिक उपजी तो वह सबको बाँट कर उसका भोग करता है। इस प्रकार दूसरे के सुख-दुख में अपने सुख-दुख का अनुभव करना ही ग्राम्य जीवन की विशेषता है। नगर के जीवन में एकान्तिक दृष्टिकोण प्रधान रहता है। वहाँ पर एक ही घर के रहनेवाले एक दूसरे को नहीं जानते। अतःयह अलगत्व का भाव नागरिक जीवन को विशेष बुद्धिजीवी बना देता है। ग्राम्य जीवन में बुद्धि का उतना कार्य नहीं जितना कि भावना का। तुलसीदास जी ने अपने लोक-जीवन के चित्रण में ग्राम्य और नागरिक विशेषताओं का सामंजस्य स्थापित किया है।

इसका बड़ा स्पष्ट प्रमाण हमें राम के चरित्र में प्राप्त होता है। तुलसी ने राम की प्रशंसा उनके शील के कारण की है। शील, बौद्धिक और हार्दिक गुणों का समन्वय है। इसके भीतर कर्त्तव्य और प्रेम दोनों का योग है। यही ग्राम्य और नागरिक गुणों का समन्वय भी है, और इसी समन्वय के कारण ही राम इतने लोक प्रिय हैं, जिनके लिए तुलसी कहते हैं:—

"सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।
सिसुपन ते पितु-मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम बिधु बदन रिसौहैं सपनेहु लखेउ न काउ॥"

अतः तुलसी की दृष्टि से लोक-जीवन के आदर्श में दोनों प्रकार की विशेषताओं का समन्वय होना चाहिए।

तुलसी की रचनाओं में लोक-जीवन की झलक कई रूप में देखने को मिलती है। परन्तु उसकी झाँकी के लिए हमें प्रयत्न करना पड़ता है। लोक-जीवन की लीला-भूमि प्रकृति और ग्राम्यस्थली का वर्णन भी हमें यथार्थ रूप में नहीं मिलता। हाँ; हमारी कुछ पुण्य भूमियों की पावन झलक दिखाई देती है। गोस्वामी जी की 'कवितावली' में प्रयाग, काशी, सीतावटी, चित्रकूट आदि के वर्णन हैं। चित्रकूट के प्रति भारतीय लोक-जीवन का बड़ा आकर्षण भी है। तभी तुलसी कहते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चित्रकूट अति विचित्र, सुन्दर बन, महि, पवित्र
पावन पय सरित तीर मल निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोक लोचनाभिराम
वाम अंग वामावर विस्व वन्दिनी।
वर विधान करत गान, वारत धन, मान, प्रान
झरना झरत झिंग झिंग झिंग जलतरंगिणी
वर विहार चरन चारु पांडर चम्पा कचनार
करनहार वारपार पुर पुरंगिनी॥"

लोक-जीवन के प्राण राम के आ जाने पर चित्रकूट के बन को एक विशेष शोभा प्राप्त हो गई है, देखिए:—

"आइ रहे जबते दोऊ भाई
तब ते चित्रकूट कानन छवि,
दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई।
उकठेउ अधिक भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत, पलुहत विटप बेलि अभिमत सुखदाई।
सरित-सरनि सरसीरुह संकुल, सदन संवरि रमा जनु छाई।
कूजन विहंग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक ननु लेत बुलाई॥"

तुलसी ने इस पवित्र भूमि चित्रकूट को वर्षा और वसंत की विशिष्ट शोभा का भी वर्णन किया है। लोक-जीवन के नायक राम के विशेष निवास स्थानों का ही वर्णन गोस्वामी तुलसीदास का उद्दिष्ट जान पड़ता है। किष्किंधा में ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते समय वर्षा और शरत् ऋतुओं के वर्णन के बहाने तुलसी ने लोक-नीति और व्यवहार में उपयोगी बहुमूल्य सूक्तियों की रचना की है जो आज भी लोक-जीवन के पथप्रदर्शन का काम करती है

"भूमि परत भा ढाबर पानी।
जिमि जीवहिं माया लपटानी।
सिमिटि सिमिटि जल भरे तलावा।
जिमि सद्गुन सज्जन पँह आवा॥
सरिता सर जल निर्मल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा।"

इस प्रकार लोक-जीवन की लीला भूमि प्रकृति के सामान्य रूप का चित्रण न कर उन्होंने उससे जीवनोपयोगी तथ्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है।

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि से मानव-जीवन का महत्व बहुत बड़ा है। अत एव उसका पूरा उपयोग करने के लिए पूर्ववर्ती ज्ञान और लोक परम्परा के आधार पर कर्तव्य कर्म निश्चित करना तथा उनको पूरा करने का भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने इसके लिए लोक और वेद दोनों की आज्ञाओं का पालन करना आवश्यक बताया है। वेद शास्त्रीय पक्ष है और लोक उसका व्यावहारिक प्रचलित शब्द जिसका शास्त्रीय आधार प्रायः खोजने पर भी नहीं मिलता है। चलन और प्रथा का महत्व लोक-जीवन में विशेष रूप से है। ये चलन प्रथाएँ किसी वर्ग विशेष की विशिष्ट जीवनधारा की प्रगति को स्पष्ट करती है। ये प्रायः उस वर्ग के जीवन को सुलभ, सफल और आनन्ददायी बनाने के सामूहिक प्रयत्न हैं जिसमें उस वर्ग की अधिक चेतना की अवस्था में विकास और परिवर्तन होते रहते हैं और चेतना की कुंठित अवस्था में उनका अन्धानुकरण मात्र रह जाता है। इन दोनों ही अवस्थाओं के दोषों को दूर करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने वेद और लोक, अर्थात् शास्त्र और प्रथा का समन्वय कर दिया है जिससे न शास्त्र ही समय-विरुद्ध हो सके और न प्रथा ही अन्धपरम्परा मात्र।

तुलसी ने राम के जीवन की कथा में विभिन्न अवस्थाओं के संस्कारों का वर्णन करते हुए दोनों ही आधारों का बराबर संकेत किया है। उनके सांस्कृतिक वर्णनों में जिनसे उनकी रचनाएँ भरपूर हैं, तत्सम्बन्धी उक्तियाँ बराबर मिलती हैं। पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामलला नहछू, गीतावलि, रामचरित मानस के संस्कार वर्णन के प्रसंगों में हम इन बातों को देख सकते है। इन वर्णनों की विशेषता यह है कि आज भी हमारे लोक-जीवन के व्यवहार ऐसे ही बने हुए हैं। हमारा ग्राम और नागरिक समाज इन क्रियाओं और प्रथाओं को आज भी अपनाता चलता है। तुलसी ने राम के सोलहों संस्कारों का वर्णन नहीं किया, जिनका वेदों और स्मृतियों में उल्लेख है तथा जिनकी ओर हमारे समाज का ध्यान विशेष रूप से आर्य समाज के आन्दोलन के बाद आकृष्ट हुआ है, परन्तु उन्होने जातकर्म, नामकरण, मुण्डन, कर्णबेध, उपनयन और विवाह संस्कारों का विशेष वर्णन किया है और इनका आज भी हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में बड़ा महत्व है। इस प्रकार इन संस्कारों का आँखों देखा वर्णन कर के उन्होंने हमारे लोक-जीवन का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ तुलसी की विभिन्न रचनाओं से देखिए:—

"आलेहि बाँस के मांडव मनिगन पूरन हो,
मोतिन्ह झालरी लागे चहूँ दिसि झूलन हो।
गंगा जलकर कलस नौ तुरत मंगाइय हो,
जुवतिन्ह मंगल गाई राम अन्हवाइय हो—"

—रामलला नहछू

"वर दुलहिन्हहिं बिलोकि सकल मन रहसहिं
साखोच्चार समय सब सुरमुनि विहंसहिं
लोक वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल कुसकर
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर"

—पार्वती मंगल

चहुँ प्रकार जेवनार भई बहु भांतिन्ह
भोजन करत अवध पति सहित बरातिन्ह।
देहिं गारि नर नारि नाम लैं दुहुँ दिसि।
जेवत बढ़ेउ आनन्द सोहावन सो निसि॥"

—जानकी मंगल

"नाम करन रघु बरनि के नृप सुदिन सोधाए।
घर घर मुद मंगल महा गुन गाय सुहाए॥
गृह, आँगन, चौहट, गली बाजार बनाए।
कलस, चँवर, तोरन, धुजा, सुबितान तनाए॥
चित्र चारु चौंके, रचीं, लिखि नाम जनाए।
भर भर सखर-वापिका अरगजा सुहाए॥"

—गीतावली

रामचरित मानस में वर्णित विभिन्न संस्कार तो सर्वविदित हैं ही। इन समस्त संस्कारों का वर्णन लोक-जीवन की सुन्दर झलक प्रदान करता है। इसी प्रकार के वर्णन उत्सव और त्यौहारों के हैं। राम के तिलकोत्सव तथा झूला के साथ दीपावली फाग आदि के मनोहारी वर्णन रामचरित मानस और गीतावली को लोक संस्कृति का चित्रण करनेवाले ग्रन्थों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। इन वर्णनों की विशेषता हमारे सामूहिक और सामाजिक जीवन के सुदृढ़ संगठन में अन्तर्निहित है। इन संस्कारों, उत्सवों और त्योहारों में समस्त समाज सम्मिलित होता है। अतः यह सामूहिक आनन्द के अवसर हैं। हमारा आज का समाज इस प्रकार के सामूहिक हार्दिक आनन्द के अवसरों को धीरे धीरे खोता जा रहा है। ये निश्चित आनन्द के क्षण हमारे जीवन में नवीन प्राण, नवीन उत्साह तथा नवीन जीवनी-शक्ति फूँकते हैं और ये समाज के युवावस्था के लक्षण हैं। इसके अभाव में समाज की वृद्धावस्था स्पष्टतया परलक्षित होने लगती है।

लोक-जीवन के चित्रण में इसी प्रकार युद्ध की यात्रा का भी वर्णन आया है और भरत प्रसंग में जो सभा चित्रकूट में लगती है वह आधुनिक कान्फ्रेन्स या सभा का उतना यथार्थ रूप नहीं जितना कि हमारी ग्राम्य पंचायत का। उसी का वह एक वृद्ध रूप-सी जान पड़ती है। इससे भी बढ़ कर महत्व लोक जीवन के स्पष्टीकरण की दिशा में, उन अनेक विश्वासों के वर्णन का है जो आज भी हमारे समाज में प्रचलित हैं। जैसे छींक का उल्लेख है:—

'एतना कहत छींक भइ बाँए। कहउ सगुनिहन्ह रवत सुहाए।'

इसी प्रकार अनेक सगुनों का वर्णन है:—

लोवा फिरि फिरि दरस दिखावा।
सुखी सम्मुख सिसुहि पियावा।
सम्मुख आयउ दधि अरु मीना।
कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना॥"...आदि

तुलसी की रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण बात लोक-जीवन के आदर्शों का संकेत है। इसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार के आदर्शों का वर्णन है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तुलसी ने अपने मानस में विशेष रूप से लोक-जीवन के ऐहिक आदर्शों में राजा, प्रजा, भाई, माता, पिता, पुत्र, गुरु, मित्र, स्त्री, सेवक, शत्रु सभी आदर्शों का उल्लेख किया है। जिनके अलग-अलग तथा व्याख्या की विशेष आवश्यकता नहीं। तुलसी का प्रमुख उद्देश्य लोक जीवन के इन्हीं आदर्शों को स्पष्ट करना है। वे समाज के लोगों को राम के व्यक्तिगत तथा परिवार के लोगों के आचरण आदर्श प्रदान करते हैं और इस विश्वास के साथ उसका चित्रण करते हैं कि हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-जीवन की समस्त समस्याओं का सुलझाव सरल हो सकता है, यदि राम कि जीवन गाथा के आदर्श को हम ग्रहण करें।

इससे भी बढ़ कर तुलसी का उद्देश्य लोक जीवन के पारलौकिक आदर्श को व्यक्त करना है जिसका सार है—ईश्वरभक्ति। तुलसी का विश्वास है कि बिना भक्ति को अपनाए, हमें अपने लोक-जीवन में कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। रामगाथा के सभी आदर्श पात्र विभिन्न भावों के ईश्वर भक्त हैं। भक्ति उनकी दृष्टि से मानव-जीवन का सार है। मानव-जीवन बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। यह जन्म सुर-दुर्लभ है। तुलसी ने स्वयं राम के मुख से ही यह बात कहलाई है कि यह मानव-जीवन ही साधन, धर्म और मोक्ष का द्वार है। इसको प्राप्त कर जिसने अपना परलोक न सँभाला उसका जीवन व्यर्थ है। परन्तु विषयों का भोग मात्र इसका उद्देश्य नहीं होना चाहिए। इस जीवन को सफल बनाने के लिए भक्ति आवश्यक है।

इस प्रकार तुलसी ने हमारे लोक-जीवन की विभिन्न झाँकियों द्वारा उसका बड़ा ही मनोहारी, यथार्थ तथा अनुकरणीय चित्र खींचा है। उनके अंतिम निष्कर्ष से चाहे हम आज सहमत न हों, क्योंकि इस लोक को छोड़ परलोक की बात सोचने का अवकाश आज कल हमें नहीं है—परन्तु इनके लौकिक आदर्शों के द्वारा आज भी हमारे समाज का यथार्थ लाभ हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

—डा. भगीरथ मिश्र,
एम॰ ए., पी एच. डी.

"उन सोने और चाँदी के पहाड़ों से क्या लाभ?
जिन पर उगे हुए वृक्ष तो सोने और चाँदी के नहीं बन जाते।
वे तो लकड़ी के ही रहते हैं।
हम तो मलय पहाड़ को मानते हैं;
क्योंकि उस पर जो वृक्ष उगता है;
चाहे वह नीम का हो या करील का
बाँस का हो या कुटज का,
या किसी और प्रका का,
एकमात्र चन्दन का ही बन जाता है॥"

—भर्तृहरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाली में हिन्दू सभ्यता

बाली का छोटा-सा द्वीप जावा के पूर्व में स्थित है। इसकी आबादी लगभग १५ लाख है। अन्तिम जनगणना के अनुसार यहाँ के ९० प्रतिशत लोग अब भी हिन्दू हैं। प्रायः समस्त जावा जिसकी आबादी लगभग ४५ लाख है, इस्लाम धर्म में दीक्षित हो चुका है। परन्तु उसने भी प्राचीन हिन्दू संस्कृति को अभी तक नहीं छोड़ा, और बाली के निवासियों ने तो अपने पूर्वजों के धर्म को भी नहीं छोड़ा। लगभग दो सहस्त्र वर्ष पूर्व वहाँ हिन्दू संस्कृति तथा धर्म ने प्रवेश किया। सम्भवतः हिन्दू रक्त का भी वहाँ कुछ अंश तक प्रवेश हुआ। यहाँ के लोग हिन्दुत्व का अभिमान करते हैं और अब भी उसी धर्म का अनुसरण करते हैं। बाली-निवासियों का जीवन हिन्दू धर्म से ओतप्रोत है।

१९०८ में डच जाति ने इस सुन्दर द्वीप पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। परन्तु विदेशी शासकों ने बाली-निवासियों की प्रथाओं, परम्पराओं एवं स्थानीय रीति-रिवाजों में कोई हस्ताक्षेप न किया। इस बुद्धिमत्ता के कारण वे लोग लगभग ४० वर्ष तक शासन करने में सफल हुए। गत वर्ष ही एशिया में स्वतन्त्रता के आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिन्द एशिया द्वीपों को भी डच शासकों से मुक्ति प्राप्त हुई है।

बाली द्वीप में शिक्षा के सम्बन्ध में डच भाषा द्वारा कुछ आयोजन किया गया। वहाँ के निवासियों को डच भाषा तथा स्थानीय मलय भाषा में शिक्षा देने का प्रबन्ध हुआ। बाली के शिक्षित युवकों में अपने देश की प्राचीन सभ्यता को जानने तथा समझने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। एक नवीन साहित्य का निर्माण होना प्रारम्भ हुआ, जिसका आधार हिन्दू धर्म एवं साहित्य बना—विशेषतया रामायण तथा महाभारत से स्फूर्ति को प्राप्त किया गया।

बाली द्वीप कला की दृष्टि से एशिया तथा अमरीका के यात्रियों के लिए विशेष रूप में आकर्षक रहा है। अजन्ता, अमरावती, तथा मथुरा में उपलब्ध भारतीय कला का आदर्श बाली में ज्यों का त्यों प्राप्त हुआ है वहाँ अब भी ऐसे हिन्दू मन्दिर विद्यमान हैं, जो सोमनाथ एवं विश्वनाथ के मन्दिरों की शैली की तुलना करते हैं और जिनमें हिन्दूधर्म अपने भव्य रूप में आज भी भक्तों का हृदय परिमार्जन करता है। बाली के साधारण जन समाज में तथा शिष्ट-वर्ग में कला के लिए अद्भुत प्रेम है। अपने गृहों की सजावट में प्राचीन शैली के द्वारों का बनाना, लकड़ी पर मूर्तिकला का प्रदर्शन करना, प्रायः भारत की प्राचीन कला के अनुकरण पर किया गया है बटेविया के अद्भुतालय में कला के कुछ ऐसे नमूनों को संगृहीत किया गया है।

बाली में संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रति शिष्ट वर्ग में विशेष अनुराग दृष्टिगोचर होता है। वे इसी भाषा को अपनी सभ्यता एवं धर्म का आधार मानते हैं और उसे पुनरुज्जीवित करने में विशेषतया चेष्टावान् हैं। बाली के मन्दिरों के पुरोहित अब तक वेद के मन्त्रों का पाठ करते हैं और जन्म, विवाह आदि के अवसर पर इन मन्त्रों द्वारा ही इन रस्मों को पूरा किया जाता है। ये मन्त्र शुद्ध संस्कृत में अब नहीं रहे हैं। अपि तु उनमें बाली भाषाओं के अपभ्रंश सम्मिलित हो गए हैं। हिन्दू धर्म के सीधे सम्बन्ध के विच्छेद के बाद ऐसा होना स्वाभाविक ही था।

डच शासकों ने बाली द्वीप की प्राचीन सभ्यता अथवा इतिहास के प्रति उपेक्षा वृत्ति से काम नहीं लिया। उन्होंने इस सभ्यता को समझने का यत्न किया और इसको पुनरुज्जीवित करने के लिए शासन की तरफ़ से प्रोत्साहन भी प्रदान किया। जिन डच विद्वानों ने अपना समय एवं शक्ति बाली सभ्यता के अध्ययन एवं अनुसन्धान में व्यय की, उनमें से डा. स्टटरहीम, डा. गोरिस तथा डा. पीगाड के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप बाली में एशियाटिक सोसाइटी के आदर्श पर एक बाली-सभ्यता-अनुसन्धान-संस्था की स्थापना हुई, जिसने बाली की राजधानी सिंमारडजा में एक भव्य विशाल भवन में हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों का एक अमूल्य संग्रह एकत्रित किया और उनको सम्पादित तथा प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९२८ में इस सुन्दर भवन का उद्‌घाटन हुआ। उद्‌घाटन का वर्ष तोरण द्वार पर शक सम्वत् में चित्राक्षरों में अंकित किया गया है। शक सम्वत् १८५० को मनुष्य (१) हाथी (८=अष्ट दिग्गज) बाण (५=पञ्च बाण) तथा मृतशव (०=शून्य) से प्रकाशित किया गया है। तोरण द्वार की दाईं तथा बाईं तरफ़ श्रीराम तथा सीता की प्रतिमाओं को स्थापित किया गया है।

उपर्युक्त संस्था का नाम कीर्त्य [कीर्ति] अनुसन्धान संस्था है। इसका कार्य बाली में विद्यमान हिन्दू संस्कृति के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह करना है। सहस्त्रों ऐसे ग्रन्थ संगृहीत हो चुके हैं और उनमें से अनेक प्रकाशित भी हो चुके हैं। डा गोरिस ने इस दिशा में विशेष प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। डा. रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा डा. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय जब १९२८ में बाली में परिभ्रमण के लिए गए, उन्होंने ऐसे बहुत से ग्रन्थों का अवलोकन किया।

कीर्त्य में संग्रह किए गए हिन्दू संस्कृति के हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रन्थों को वहीं के पुस्तकालय में निम्न ६ श्रेणियों में विभक्त किया गया है-(१) वेद-जिनमें उन पुस्तकों का संग्रह है, जिनमें बाली में प्रचलित वैदिक मन्त्रों तथा पुरोहितों द्वारा किए जानेवाले संस्कार-विधियों का समावेश है। (१) आगम—वे ग्रन्थ हमारे स्मृतिशास्त्रों तथा नीति ग्रन्थों से तुलना किए जा सकते हैं। (२) वर्ग—जिसमें सृष्टिविद्या, पुराण, व्याकरण छन्द, कामशास्त्र तथा औषध (आयुर्वेद) के ग्रन्थ सम्मिलित हैं। (३) इतिहास—जिसमें रामायण महाभारत तथा अन्य जावा द्वीप सम्बन्धी वीरगाथाओं के गद्यपद्यात्मक ग्रन्थों का समावेश है। (५) तन्त्र—इसमें नीतिग्रन्थों का एकत्रीकरण है। कामन्दक नीतिशास्त्र का अनुवाद इसी संग्रह में सम्मिलित है। (६) अन्य विविध ग्रन्थ।

उपर्युक्त छः श्रेणियों में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की भी एक बड़ी संख्या है। कई संस्कृत ग्रन्थ बाली देश की लिपि में है। प्रायः ये सब ग्रन्थ धर्म के सम्बन्ध में हैं। डा. रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ऐसे अनेक ग्रन्थों का प्रदर्शन कराया गया, जिनके कुछ श्लोकों का अनुवाद उन्होंने स्थानीय विद्वानों तथा शासकों के सम्मुख उपस्थित किया और हिन्दू संस्कृति के विस्मृत सम्बन्धों पर प्रकाश डाला।

डा० स्टटरहीम ने जर्मन भाषा में 'हिन्द-एशिया में रामायण' विषय पर अनुपम ग्रन्थ लिखा—जिसका साहित्यिक जगत् में बड़ा सम्मान हुआ। उन्होंने बाली में उपलब्ध पुरातत्व सम्बन्धी संस्कृत तथा बाली भाषा के शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि का गम्भीर अध्ययन किया और अनेकों का सम्पादन भी किया। इन लेखों में प्रायः धार्मिक संस्कारों, मन्त्रों अथवा सूत्रों का उल्लेख है। इन में ब्रह्मा, विष्णु, कृष्ण तथा शिव की पूजा का वर्णन है। अधिकतर शैव तथा शाक्त सम्प्रदायों का प्रभाव इन लेखों में दृष्टिगोचर होता है। बाली के मन्दिरों में शिव की प्रतिमाएँ अधिक संख्या में उपलब्ध होती हैं। गणेश की मूर्तियाँ भी मन्दिर की दीवारों पर स्थान स्थान पर उल्लिखित हैं। देवी महिषमर्दिनी के चित्र भी कई मन्दिरों में मिलते हैं।

मन्दिरों तथा देवायतनों की वस्तुकला पर हिन्दू सभ्यता का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट प्रतीत होता है। रामायण तथा महाभारत की कथाओं के संस्कृत तथा बाली भाषा में सुन्दर प्रकरण उत्कीर्ण किए गए हैं। इस बाली भाषा को कवि-भाषा भी कहा जाता है। इसी में द्वीप का समस्त धार्मिक साहित्य है, जिस पर हिन्दू संस्कृति की छाप अत्यन्त विशद है।

हिन्दू सभ्यता के अनेक प्रभाव बालीनिवासियों के जीवन पर भी दृष्टि गोचर होते हैं। वर्णव्यवस्था का यहाँ पालन होता है। ब्राह्मणों का विशेष आदर किया जाता है। हिन्दू धर्म का अंग गोपालन भी बालीनिवासियों के जीवन में ओतप्रोत हो चुका है। मृत्यु के बाद दाह संस्कार वहाँ अब तक प्रचलित है। डच लोगों के आने से पूर्व तक सती प्रथा का रिवाज भी उस देश में प्रचलित रहा।

बाली में प्राप्त बुद्ध तथा बोधिसत्वों के चित्रों से यह भी परिणाम निकाला गया है कि हिन्दू संस्कृति के ह्रास के बाद बौद्ध धर्म के देश-देशान्तरों में फैल जाने पर, बाली में भी उसका प्रभाव अवश्य पहुँचा, परन्तु वह इस देश में हिन्दू सभ्यता की मूलबद्ध रूढ़ियों तथा परम्पराओं को उखाड़ने में समर्थ नहीं हो सका। भारतवर्ष में गुप्त साम्राज्य के सांस्कृतिक पुनरुत्थान से पूर्व, सुदीर्घकाल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू सभ्यता का प्रायः लोप हो गया था परन्तु इस सभ्यता से दीक्षित बाली सदृश सुदूर द्वीपों में उसका प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहा और आज भी हिन्दू धर्म बाली निवासियों के दैनन्दिन जीवन में गहराई तक पहुँचा हुआ दिखाई देता है। कदाचित् भारत-वर्ष में हिन्दुओं के जीवन में यह इतना ओतप्रोत नहीं, जितना कि यह बाली द्वीप में है।

कीर्त्य संस्था भारत और बाली के संबन्धों के क्षेत्रों में अनुसन्धान का प्रशंसनीय कार्य कर रही है। हमें अपने देश में भी इस अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना चाहिए। कुछ समय पूर्व, हमारे देश के प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल जी बाली में हिन्द एशिया होते हुए गए थे। इससे दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध और भी सुदृढ़ बन गए हैं। सांस्कृतिक दिशा में हमारे देश के विश्व-विद्यालयों को अनुसन्धान का विशेष प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिए। बालीनिवासियों को हिन्दू संस्कृति से अगाध प्रेम है। हमें अपने इन धर्म-सम्बन्धियों का विस्मरण न करना चाहिए। अपि तु परस्पर-सम्बन्धों को पुनः हरा-भरा बनाना चाहिए और उन्हें सुदृढ़ बनाने के लिए गम्भीरतापूर्णक परस्पर विचार, विद्या, वस्तु-विनिमय आदि द्वारा चेष्टा करनी चाहिए।

—प्रो. इन्द्र, एम. ए.

लघुकथा

पतित-पावन

संसार का सब से बड़ा पाप, एक निर्दोष मनुष्य की हत्या और पराई स्त्री का बलात् अपहरण मैंने किया था। नगर के न्यायाधीश ने मेरे लिए मृत्यु का दंड निश्चित किया।

फाँसी के तख्ते पर चढ़ाने के पहले मुझे भूरे भैंसे पर चढ़ा कर सारे नगर में घुमाया गया, जिससे सभी नगर-वासी जी भर कर मेरा तिरस्कार कर लें।

मेरे पिता नगर के एक अति प्रतिष्ठित अधिकारी थे। उन्हीं के कारण मेरा भी नगर में कुछ मान था। मेरे इस मान के कारण और भी मेरा वह अपराध अधिक जघन्य माना गया था। मेरे प्रति जनता की घृणा और रोष असाधारण रूप से उमड़ आया था।

नगर की फेरी पूरी करा कर मुझे फाँसी के आँगन में ले जाया गया। ग्लानि और आत्म-भर्त्सना के भावों से मेरा हृदय बैठा जा रहा था।

जैसा कि नियम था, मेरे परिवार के सभी लोग फाँसी के तख्ते पर मुझे देखने के लिए आये हुए थे। माता, पिता, भाई, बहिन सभी के मुखों पर विषाद की रेखाएँ खिंची हुई थीं, क्योंकि सारे कुल को मैंने अपने आचरण से कलंकित किया था। किसी के हृदय में मेरे प्रति कोई दया या सहानुभूति का भाव नहीं था, क्योंकि वे कट्टर चरित्रवान् और धर्मात्मा थे।

मेरी पत्नी भी मेरे पास पीठ फेरे खड़ी थी। वह मेरा कलुषित मुख नहीं देख सकती थी। संसार में मेरा कोई अपना नहीं था। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया; वे मुँद गईं।

"हे भगवान्! पतित पावन! क्या तुम भी मेरे नहीं हो सकोगे? मेरे इस नारकीय शरीर का स्पर्श नहीं कर सकोगे?" मैं भीतर ही भीतर पुकार उठा था कि अचानक अपने घुटनों पर एक कोमल स्पर्श का अनुभव पाकर मैंने आँखें खोल दीं।

देखा, मेरा एक वर्ष का सुन्दर सुकुमार बालक मेरी पत्नी की गोद से अचानक उतर कर मेरे पैरों से लिपट गया था।

मेरा सारा पाप और दुःख पानी बन कर आँखों की राह बह गया। प्रसन्न मन से मैं कुछ क्षण बाद फाँसी के तख्ते पर झूल गया।

—रावी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन की नई संस्कृति

(चीनी शिष्टमण्डल द्वारा हैदराबाद Art Society में दिया गया भाषण)

एशिया में भारत और चीन ये दो बड़े देश हैं जिनका बहुत ही लम्बा और शानदार इतिहास है। इन दोनों देशों में पिछले २००० सालों से भी अधिक समय से सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। इस लम्बे अरसे में इन दोनों देशों में कभी लड़ाई नहीं हुई।

३०० साल पहले लगभग १०० चीनी छात्र यहाँ भारत में शिक्षा ग्रहण करने आए थे। इनके द्वारा बहुत से सूत्र चीन पहुँचे और आज भी जब कि खुद भारत में इस की कमी है, ऐसा बहुत-सा साहित्य चीन में बौद्ध धर्मावलम्बियों ने सुरक्षित रूप से बचा कर रक्खा है।

यह मानी हुई बात है कि इन बौद्ध धर्मशास्त्रों ने चीन के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है। ज्ञान के क्षेत्र में इन्हीं के प्रभाव से कन्फ्यूशस आदि के दर्शनों की उत्पत्ति हुई। कला के क्षेत्र में इनका प्रभाव चीनी चित्रों, मूर्तियों, इमारतों, संगीत और साहित्य में साफ़ तौर पर देखा जा सकता है। चीन में आज मुश्किल से ही कोई ऐसा आदमी मिलेगा जो ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से परिचित न हो। इस प्रसिद्ध चीनी बौद्ध ने मध्य एशिया और नेपाल में यात्रा करते हुए रास्ते की समस्त कठिनाइयों की परवाह न की और अन्त में महाराज शिलादित्य के राज्यकाल में भारत पहुँचने में सफल हुआ और फिर यहाँ से सूत्र लेकर वापस चीन गया। ह्वेनसांग के कुछ यात्रा विवरण से भारतीय इतिहास के अध्ययन में बहुत सहायता मिली है।

आधुनिक युग पर विचार करते हुए हमें बहुत दुःख है कि पिछले लगभग १०० साल से हमारे इन दोनों देशों में सांस्कृतिक सम्बन्ध बिलकुल ही बन्द हो गए और इसका एकमात्र कारण यह था कि ये दोनों देश विदेशी आक्रान्ताओं से पददलित हुए।

हमें भावनाएँ यहाँ खींच कर लाई हैं। हम चाहते हैं कि जहाँ तक हम से बन सके हम अपने सुदूरस्थ भारतीय भाइयों को नए चीन की नई समस्याएँ और जीवन का सन्देश सुनाएँ। परन्तु क्योंकि एक छोटे से भाषण में सभ्यता के समस्त पहलुओं पर ग़ौर नहीं किया जा सकता, इसलिए हम यहाँ दो बातों के विषय में ही कुछ कहेंगे। पहला प्रश्न तो है कि नए चीन में वे कौन-कौनसे मुख्य परिवर्तन हुए हैं जिनके कारण हमारी नई संस्कृति पुरानी चीनी संस्कृति से पृथक् हो गई है। दूसरा प्रश्न है कि इन बड़े बड़े परिवर्तनों के मूल में क्या है।

हम पहले प्रश्न का उत्तर ही पहले देना चाहते हैं। यह बिलकुल सही है कि नए चीन की संस्कृति पुराने चीन से एकदम पृथक् है। चीनी संस्कृति आज तक सामंतवादी रही है और पिछले सौ सालों से तो यह और भी राजशाही की बेड़ियों में जकड़ी हुई थी। अब एक नई संस्कृति जन्म हुआ है और हम इसे नए प्रजातन्त्र की संस्कृति कहते हैं।

चीन की पुरानी राजसत्ता की सदा यह नीति रही कि साधारण जनता को अज्ञान में रख कर उन्हें शिक्षा आदि से लाभ उठाने से वंचित रक्खा जाए। यही नहीं अपि तु इस राजसत्ता ने शिक्षा और संस्कृति को गरीब मज़दूरों और साधारण जनता को लूटने का और धोखे में रखने का एक साधन बना रक्खा था। इसलिए कन्फ्यूशस धर्म के रीति रिवाज, देवी-देवता और अंध-विश्वास आदि को ही पुरानी सभ्यता में प्रधानता दी गई थी और उन समस्त प्रगतिशील बातों का जो कि उच्च-वर्ग के लाभ की नहीं थी, निषेध कर दिया गया। इन अवस्थाओं में यद्यपि साधारण जनता ने अपने परिश्रम और दक्षता से सामाजिक उन्नति की और हमारे देश की सभ्यता को आगे बढ़ाया फिर भी उन्हें इससे कोई लाभ नहीं हुआ और वे भूख और ठंड तक से छुटकारा न पा सके। पीढ़ी दर पीढ़ी उन्हें अशिक्षित होने के कारण जीवन की परेशानियाँ उठानी पड़ी और इस पर भी ऊपर से मूर्ख और असभ्य कहलाना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब यह सब बदल चुका है या बदल रहा है। नए चीन की शिक्षा और संस्कृति साधारण जनता की सेवा के लिए ही है, और है मजदूरों के लाभ के लिए। समस्त वर्गों में एक नया सांस्कृतिक जीवन उत्पन्न हो रहा है। आज की साधारण जनता के सांस्कृतिक स्तर की तुलना यदि पहले से की जाए तो अब बहुत बड़ा भेद मालूम पड़ता है। काम करनेवाले ग़रीब लोग अब यह अनुभव करने लगे हैं कि वे ही देश के असली मालिक हैं और अब फिर कभी वे अत्याचार द्वारा पददलित नहीं किए जा सकते। उनकी दृष्टि में मेहनत और मजदूरी के अर्थ ही बदल गए हैं। अब वे कार्य को घृणा की दृष्टि से नहीं देखते अपि तु वे उसे महान् गौरव प्रदान करते हैं। काम करने के तरीक़ों में भी अब वे लकीर के फ़क़ीर नहीं हैं और दक्षता से बुद्धि का प्रयोग करते हुए उन्नति के रास्ते खोजते हैं। पिछले साल उत्तर-पूर्व इलाके में किसानों और मजदूरों की 'कम खर्च ज्यादा पैदावार' और नए वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग और इसी प्रकार की कोशिशों से ही लगभग एक करोड़ टन अनाज की बचत हो गई। गाँवों और कारखानों में उपज बढ़ाने के बहुत से नए आन्दोलन जोश के साथ प्रारम्भ किए जा रहे हैं और किसानों और मजदूरों में से बहुत-से आदर्श व्यक्ति पाए जा रहे हैं। इन आदर्श परिश्रमी लोगों की बड़ी-बड़ी तसवीरें सार्वजनिक स्थानों और बड़े-बड़े शहरों में लगाई जाती हैं, अखबारों और मासिक पत्रों के पहले पृष्ठों पर छापी जाती हैं। सारा देश उनकी इज्जत करता है। डेरेन (Dairen) में एक मजदूर अपनी हैसियत से उठ कर मिल मेनेजर बन गया है। उसका कमाल यह था कि उसने बर्फ़ जमाने की मशीनों में वह उन्नति की जिसकी आशा बड़े-बड़े इंजीनियरों से ही की जा सकती थी।

साधारण जनता और मजदूरों को जैसे ही स्वतन्त्रता मिली उन्होंने इसका प्रमाण दे दिया कि वे शिक्षा और संस्कृति में कितना विश्वास रखते हैं। एक करोड़ से भी ज्यादह मजदूर और अफ़सर अवकाश के समय को राजनैतिक और सांस्कृतिक अध्ययन में लगा चुके हैं। लगभग १५ लाख मजदूर फुरसत के समय स्कूलों में अध्ययन करते हैं। सरकार आशा करती है कि वह पूरे देश के समस्त मजदूरों को १९५५ तक पढ़ना लिखना सिखा देगी। पोर्ट आर्थर (Port Arther), पोर्ट डेरेन (Port Dairen) के बारह हजार मजदूरों ने तो यह काम लगभग दो साल में ही पूरा करके दिखला दिया है।

किसान अवकाश के महीनों को शिक्षा प्राप्त करने में लगाते हैं। पिछले साल जाड़े के दिनों में लगभग ३ करोड़ किसानों ने ऐसे शरद्-शिक्षणालयों ने शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार के मौसमी स्कूलों को धीरे धीरे बाक़ायदा वर्ष के बारह महीने चलनेवाला स्कूल बनाने की कोशिश हो रही है और उत्तर पूर्वी प्रदेश में किसानों के लगभग ४३% फ़ी सदी शहर के शिक्षणालयों को बदल कर करीब २०००० स्कूल नियमपूर्वक खोल दिए गए हैं। इन स्कूलों में किसान और मजदूर लगभग हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

बड़े बड़े शहरों के लगभग समस्त बड़े कारखानों में मजदूरों ने स्वयं अपनी सांस्कृतिक उन्नति के लिए सभा, सोसाइटियाँ स्थापित कर ली हैं जिनमें वे अवकाश के समय में साहित्य, कला, संगीत या नाटक के कामों में हिस्सा लेते हैं। कुछ ही दिन पहले स्वयं मजदूरों के ही लिखे हुए और खेले हुए दो ड्रामे पीकिंग में दिखाए गए थे और चारों ओर उनकी बहुत प्रशंसा हुई। इनमें से एक ड्रामे में बहुत खूबसूरती के साथ वे समस्त अत्याचार और कठिनाइयाँ दिखाई गई थीं जो कि पुराने राज्य में एक मजदूर को सहने पड़ते थे। हमारे फिल्म ब्यूरो इस नाटक की फिल्म बनाने की भी सोच रहे हैं।

गाँवों में भी किसानों की अपनी नाटक मंडलियाँ हैं और एक प्रदेश में ही उनकी संख्या हजार से लेकर ५००० तक होती है। नए चीन में मजदूरों और किसानों की खुशहाली और सांस्कृतिक जीवन का पूरा नक्शा इन सब बातों से समझा जा सकता है और पहले की अवस्थाओं से इसकी तुलना की जा सकती है।

हम इस सबन्ध में यह भी वता देना चाहते हैं कि स्वतन्त्रता की चीनी रण सेना जो कि अपनी वीरता और अनुशासन के लिए प्रसिद्ध है वह भी वास्तव में एक सांस्कृतिक सेना है। वे केवल स्वयं ही एक नए सांस्कृतिक का आनन्द नहीं उठाते अपि तु इस नई संस्कृति को जनसाधारण में फैलाने का आवश्यक काम भी करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नए चीन में बुद्धिजीवी लोगों के मन में भी एक बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। वे अब पहले की तरह मेहनत और मज़दूरी से घृणा नहीं करते। इसके विपरीत बहुत ही सरल ढंग से वे अब कारखानों और गाँवों में सब तरह के सांस्कृतिक, आर्थिक, और प्रशासन के कामों में हिस्सा लेने जाते हैं। वे भी अब अपनी विद्या और कला को सर्वसाधारण की आवश्यकताओं को पूरा करने में लगाते हैं और इस तरह सर्वसाधारण की सरल जिन्दगी में हिलमिल कर अपने देश को उठाने में पूरे तौर पर हिस्सा बँटाते हैं। तिनत्सिन की कपड़े की दो मिलों का एक इंजीनियर इस बात का अच्छा प्रमाण है। पहले सामाजिक बुराइयों और तरीकों के कारण वह केवल अपनी विद्या को सब से अधिक पैसों पर नीलाम करता था परन्तु अब नए सामाजिक संगठन में और जनता की प्रजातन्त्र सरकार की पथप्रदर्शकता में अब उसने बहुत बड़े बड़े काम किए हैं और अब उसने अपने कारखानों के सुधार और उत्पादन में एक नया रिकार्ड स्थापित किया है। इसके फलस्वरूप उसे आदर्श मजदूर का शानदार खिताब दिया गया है और वह अब अखिल चीन आदर्श मजदूर सभा का सदस्य बना लिया गया है।

हमारे युवक विद्यार्थियों के दिमागी तर्ज़ और तरीक़े तो और भी तेज़ी से बदल रहे हैं। वे पहले की तरह अब स्कूलों में केवल ओहदे, दौलत और निजी फ़ायदे के ख़याल से ही नहीं जाते हैं अपि तु वे सब कठिनाइयों का सामना करते हुए अपनी समस्त शक्तियों को अधिक पढ़ने में व्यय करते हैं जिससे कि वे अपने देश को उन्नत बनाने में हिस्सा ले सकें। इन सब बातों से क्या ज़ाहिर होता है? इससे नए चीन की नई संस्कृति का जो प्रभाव सब श्रेणियों और वर्गों पर पड़ा है वह साफ़ दिखाई देता है। इस नई संस्कृति ने चीनी समाज की आकृति ही बदल दी है। अच्छाइयों का एक नया आदर्श बन रहा है और सुस्त, निकम्मे और कमज़ोर लोगों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है घूसखोरी को सबसे ज़लील काम समझा जाता है। अफ़ीम खाने की आदत तो बिलकुल ही समाप्त हो गई है। चोर, डाकू और बदमाश भी अब कम हो रहे हैं। शंघाई में जो 'बदमाशों का जन्नत' के नाम से प्रसिद्ध था, इस साल मई से अब तक चोरी या डकैती की एक भी घटना नहीं हुई। पिछले ६० सालों में कभी इस बात की आशा भी नहीं की जा सकती थी। वेश्यावृत्ति भी धीरे धीरे समाप्त हो रही है। १९४९ में ही पीकिंग की समस्त वेश्याओं को स्वतन्त्रता दे दी गई थी।

सरकार ने उनकी बीमारियों का इलाज करवाया और उन्हें काम धन्धे सिखाने का प्रबन्ध किया। इस तरह एक हज़ार दुःखी और सताई औरतों का उद्धार हुआ और उन्हें नया जीवन प्रारम्भ करने में सहायता दी गई। अब दुबारा कभी स्त्रिएँ अपने पैरों को छोटा करने का प्रयत्न नहीं करेंगी। मर्दों के साथ बराबरी का दावा करते हुए वे अब सब प्रकार के सामाजिक कामों में हिस्सा बटाएँगी। विवाह के नए क़ानूनों के आधीन अब एक विवाह की विवाह प्रथा क़ायम होगी जिससे वैवाहिक जीवन दोनों की खुशी और स्वतन्त्र इच्छा पर निर्भर रहेगा। बिना विवाह के स्त्रियों को रखना या विवाह में पैसों की लेनदेन की प्रथा बन्द कर दी गई है। देश की समस्त जातियाँ अब भाई चारे से रहती हैं और जाति-भेद तो पुरानी कहानी हो गया है। देश प्रेम की प्रतिज्ञाओं पर हस्ताक्षर करने का आन्दोलन सारे देश में फैल गया है। मज़दूरों ने उपज बढ़ाने का, व्यापारियों ने समय पर टैक्स देने का और माँ-बाप, बच्चे, पति-पत्नी सबने घर में बचत करने और साक्षरता बढ़ाने का बीड़ा उठाया है।

चिरकाल से हमारा यह तरीका रहा है कि हम सब की भलाई के लिए प्रयत्न करते हैं और अपने दुःखी पड़ोसियों की सहायता करते रहे हैं। अपने इन पुराने रिवाजों को हम और भी बढ़ा रहे हैं। हमारे देश के नौजवानों ने रक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सैनिक शिक्षा प्राप्त की है। किसानों और मजदूरों ने अत्याचारपूर्ण आक्रमण के विरुद्ध लड़ने में कोरिया के लोगों की स्वयं सहायता की। आज चीन में से गुज़रने वाले यात्री को बहुत-सी चीज़ों पर आश्चर्य होता है। सदियों का सामंतवाद और राजशाही के बनाए पुराने तौर-तरीक़े बिजली के वेग से समाप्त हो गए हैं। आज का यात्री चीन में एक नए वातावरण और जीवन को अनुभव करता है।

चीन में नई संस्कृति और नए प्रजातन्त्र सिद्धान्तों को स्थापित किया गया है। दूसरे शब्दों में यह सभ्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय, वैज्ञानिक और सर्वजनोपकारक है। हमारे राष्ट्रपति माओजे तुंग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "नया प्रजातन्त्र" में हमारी नई सभ्यता को इस प्रकार बताया है—"एक ओर तो यह राजशाही के अत्याचारों के विरुद्ध मोर्चा लेती है और दूसरी ओर चीनी राष्ट्र की इज्जत और आज़ादी को ऊँचा उठाती है।" हमारी संस्कृति में हमारे राष्ट्र की अपनी विशेषताएँ पृथक हैं। इसका मेल समाजवादी संस्कृति और संसार की दूसरी सारी प्रजातन्त्र राष्ट्रों की संस्कृति के साथ है। एक दूसरे की अच्छाइयों को अपनाना, एक दूसरे की उन्नति में सहायता करना और सारे संसार की एक नई संस्कृति बनाने में हिस्सा बँटाना हमारी संस्कृति की विशेषताएँ हैं। यह समस्त सामंतवादी विचारों और अंधविश्वासों के विरुद्ध है। इसका सिद्धान्त है कि सत्य ही अच्छे बुरे की पहचान है और सत्य पर चलना चाहिए। इसका सिद्धान्त है कि विचारों और कार्यों में एकता होनी चाहिए और साधारण किसानों और मजदूरों की सेवा करनी चाहिए, जो कि देश की समस्त आबादी का लगभग ९०% हिस्सा हैं।"

नए चीन की प्रजातन्त्र सरकार ने इन ऊँचे सिद्धांतों को साधारण जीवन में लाने का किस प्रकार प्रयत्न किया है, यहाँ इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर ही दिया जा सकता है।

सबसे पूर्व हम अपनी दृष्टि शिक्षा की प्रणाली पर डालते हैं। इनमें बहुत सोच समझ कर काफ़ी परिवर्तन किए गए हैं जिससे कि कालेजों और यूनिवर्सिटियों की ऊँची शिक्षा हमारे देश को उन्नत बनाने में सहायक हो सके। इसमें विशेष तौर से मार्के की बात यह है कि अब यूनिवर्सिटियाँ केवल कुछ ख़ास अमीर लोगों के फ़ायदे के लिए नहीं हैं अपि तु आज तो ऊँची शिक्षा के दरवाज़े ग़रीब मजदूर किसानों के जवान लड़के-लड़कियों के लिए भी खुले हैं। इसका उद्देश्य यह है कि बहुत बड़ी संख्या में नौजवानों को शिक्षा और हुनर सिखा कर जनता की सेवा के लिए तैयार किया जाए।

चीन में सब मिला कर आज लगभग ४ करोड़ विद्यार्थी हैं। पिछले शासन के ज़माने से यह संख्या २५ फ़ी सदी ज्यादा है और अभी प्रजातन्त्र सरकार की इच्छा है कि अगले ५ वर्षों में यह संख्या दुगुनी कर दी जाए। इसके अतिरिक्त इन विद्यार्थियों में ज्यादातर किसानों और मजदूरों के बच्चे हैं। इन बच्चों को ऊँची शिक्षा के योग्य बनाने के लिए हमारी सरकार ने बहुत से चलते फिरते और थोड़े थोड़े समय के मिडिल स्कूल स्थापित किए हैं।

मजदूरों, किसानों और शहर में रहनेवाले दूसरे बड़ी आयु के लोगों की शिक्षा के लिए भी सरकार ने अवकाश के समय उन्हें पढ़ाने का प्रबन्ध किया है। १९४९ के अन्त में ऐसे स्कूलों की संख्या केवल शहरों में ही १४,००० तक पहुँच गई थी और उनमें लगभग ७ लाख आदमी शिक्षा प्राप्त करते थे। केवल तिनत्सीन शहर में ही एक लाख आदमी ऐसे स्कूलों में भरती हुए। निरक्षरता दूर करने में ऐसी कोशिशों से बहुत सफलता प्राप्त हुई है। पोर्ट आर्थर और पोर्ट डेरेन के अनुभव ने इस विषय में सारे देश को रास्ता दिखाया है। पिछले दो वर्षों में २२१,७७३ अशिक्षित आदमियों में से ५२,२४७ आदमी इन दोनों शहरों में ऐसे स्कूलों से उत्तीर्ण हो कर निकले। ये सब अब लिख पढ़ सकते हैं। इनमें से कुछ तो किसान मजदूरों के मिडिल स्कूलों में भरती हो गए। २५७ आदमी जो दो वर्ष पहले लिख पढ़ भी नहीं सकते थे आज अपनी-अपनी जगह के अख़बारों में काम कर रहे हैं।

इन सबके अतिरिक्त राजनैतिक शिक्षा के लिए सारे देश में विशेष संस्थाएँ खोली गई हैं जिनमें पिछले वर्ष के मध्य तक लगभग ५ लाख आदमी भरती हुए।

अब हम कला और साहित्य के क्षेत्र पर विचार करते हैं। इस दिशा में भी अपनी लीडरी क़ायम रखने के लिए हमारी सरकार ने सांस्कृतिक वस्तुओं के लिए एक नई मिनिस्ट्री क़ायम की है जिसके नीचे ये विभाग हैं, सिनेमा, नाटक, संगीत, विविध कलाएँ, साहित्य पुस्तकालय, म्यूज़ियम एवं वे अन्य संस्थाएँ जो कि सांस्कृतिक उन्नति, पुरानी यादगारों का रक्षण और विज्ञान को फैलाने का काम कर रही हैं।

यदि फ़िल्मी कारोबार पर विचार करें तो अब हमारे देश में फ़िल्म स्टूडियो हैं जहाँ पर शिक्षाप्रद और सुरुचिपूर्ण फ़िल्में बनाई जाती हैं; और इसलिए ये फ़िल्में साधारण लोगों को बहुत पसन्द हैं। हमारी इन तरक्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसन्द फ़िल्मों ने हालीवुड की गन्दी और भयानक फ़िल्मों को बाज़ार से बिलकुल ही उखाड़ दिया है। इसका कारण यह है कि आज सम्मान रखनेवाला कोई भी आदमी उन फ़िल्मों को देखना पसन्द नहीं कर सकता। अपनी फ़िल्मों को गाँवों, कारख़ानों और खानों तक पहुँचाने के लिए १९५० के अन्त में हमने १२०० सिनेमा दिखाने वाले कारीगरों को शिक्षा दी और लगभग ८०० चलते-फिरते सिनेमा घर स्थापित किए।

नाटक, संगीत और ललित कलाओं पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि एक ओर तो इनके कारीगरों की शिक्षा के लिए हमने विशेष स्कूल खोले हैं और दूसरी ओर लगभग २८० सभा सोसाइटियाँ स्थापित की हैं जो कि नाटक, साहित्य और कला की उन्नति का काम कर करती हैं। ऐसी संस्थाओं की सदस्यता देश भर में ५०,००० से ऊपर है। इसके अतिरिक्त गाँवों और कारख़ानों में छोटी नाटक मंडलियाँ वग़ैरह अलग हैं जिनका विवरण हम पहले ही दे चुके हैं। कुछ सभाएँ बड़े-बड़े शहरों में नियमपूर्वक ड्रामे और नाच दिखाया करती हैं परन्तु अधिकतर तो गाँवों और तहसीलों में दौरा किया करती हैं और साहित्य कलाओं को लोगों में फैलाया करती हैं।

हमारे छापाख़ानों, समाचार पत्रों और मासिक पत्रों में भी बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। आज हमारे अख़बार जनता की सम्मति जानने, उसको शिक्षा देने और उससे संपर्क बनाए रखने के बहुत बड़े हथियार हैं। नियमपूर्वक संवाद-दाता रखने के अतिरिक्त हमारे अख़बारों ने एक बहुत बड़े भाग से पत्रव्यवहार स्थापित किया है। एक एक अख़बार महीने में लगभग ३० या ४० हज़ार चिट्ठियाँ अपने पाठकों से प्राप्त करता है। उदाहरण के तौर पर अख़बारों में एक डाक्टर की लापरवाही की शिकायत छपी। इससे जनता में बहुत जोश पैदा हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि पूरे देश में सारे अस्पतालों की जाँच पड़ताल की गई और दवाख़ानों को सुधारने का तुरन्त प्रबन्ध किया गया। एक दूसरी शिकायत एक ऐसी औरत ने की जिसके रिश्तेदारों ने उसे अपने रुचि के आदमी से विवाह करने से रोका। इससे एक लम्बी चौड़ी जाँच पड़ताल की गई जिससे मालूम हुआ कि कुछ छोटे-मोटे पदाधिकारियों ने भी उसके विरुद्ध उसके बन्धुओं की मदद की थी। इन सब शिकायतों के छपते ही ऐसे मामलों में समस्त पदाधिकारियों को मामले को सुधारने की आज्ञा दी गई जिससे कि विवाह के मामलों में औरतों की स्वतन्त्रता में बहुत सुविधा हुई। इस घटना से विवाह के नए कानून को ठीक से लागू करने में बहुत सहायता मिली।

इसी तरह इमारत बनानेवालों की एक और शिकायत से बड़े बड़े इंजीनियरी के कामों के नक्शे बनाने में बहुत उन्नति हुई। बात यह थी कि एक सरकारी इमारत के नक्शे में लापरवाही के कारण नींव में एक ग़लत बालू की सतह देने से वह इमारत झुक गई जिसके कारण उसे तोड़ कर नए सिरे से बनाना पड़ा और इस तरह बहुत-सा सामान और मेहनत बरबाद हुई। सारे देश में इस बात की चर्चा हुई जिससे कि बाद में समस्त इमारतों के नक्शे में उन्नति हुई।

ये और इसी तरह के और बहुत-से उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि हमारे देश में अख़बार अब सचमुच संस्कृति और जनता की आवाज़ के नमूने बन गए हैं।

हमारे प्रकाशनों में भी बहुत शीघ्र उन्नति हुई है। अनुमान है कि इस वर्ष लगभग कुल ५० करोड़ किताबें और समाचार पत्र छापे गए हैं। एक पाक्षिक पत्र "वर्तमान घटनाओं पर विचार" लगभग ३० लाख की संख्या में बिकता है। फिर भी दिन प्रति दिन किताबों की माँग बढ़ती जाती है और शीघ्र ही हमें उसे पूरा करने के लिए अपने काम को बढ़ाना पड़ेगा।

वैज्ञानिक खोज आज एक निजी मामला नहीं है। अब तो वैज्ञानिक बहुत तेज़ी से देश की उन्नति के काम में लगे हुए हैं। आज सिद्धान्त और आचरण में भेद अवशिष्ट नहीं रहा है और अब दोनों को एक बना कर जनता की सेवा की जा रही है। इसका जीता जागता उदाहरण हवाई नदी पर पानी का अनुपम बाँध बाँधने की योजना है। पूर्वी चीन में इससे लाखों एकड़ जमीन का उद्धार हो जाएगा और बार बार आने वाली बाढ़ों से भी छुट्टी मिल जाएगी। पशु पालन में भी वंश सुधारने के लिए विज्ञान का बहुत उपयोग किया जा रहा है। जड़ी बूटियों पर खोज करने से चंगशान नाम की नई जड़ी मालूम हुई है जिससे कि मलेरिया का बहुत अच्छी तरह इलाज किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। अधिक संख्या में टीके की दवा बनाई गई जिस से कि लगभग १० करोड़ मनुष्यों को इस वर्ष टीका दिया गया। प्लेग तो करीब करीब बिलकुल ही समाप्त हो गया और हैज़ा भी पिछले दो साल में कभी नहीं हुआ है।

समाजवादियों ने जासूस, ईसाई मिशनरी, समाज सुधारक और शिक्षक बन कर नियम के विरुद्ध हमारे ऐतिहासिक और पुरातत्व के कोषों को ढूँढ़ा और चुरा लिया। समाज सुधार और सेवा के नाम से इन साम्राज्यवादी गुमाश्तों ने हमारी औरतों और बच्चों के परिश्रम का दुरुपयोग किया और अनाथालयों में मृत्युसंख्या को कई गुना बढ़ा दिया। अपनी शिक्षा की संस्थाओं द्वारा इन्होंने साम्राज्यवादी कार्यकर्ताओं का एक जाल-सा बिछा दिया।

चीन के देशभक्त कैथौलिक और प्रोटेस्टेण्ट धर्मवाले इन कार्यों से लज्जा अनुभव करने लगे और हम लोगों की तरह उनको भी इस बात पर क्रोध आया। चीनी ईसाइयों ने स्वयं इन अपराधी साम्राज्यवादी दलालों को निकाल बाहर करने का आन्दोलन प्रारम्भ किया और अपने धर्म भाइयों में देशभक्ति को जगाया। बहुत से सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं को जिन्हें पहले साम्राज्यवादी एजण्ट चलाते थे और पैसा देते थे, आज जनता ने अपने हाथों में ले लिया है और इन को जनता की सेवा करने वाली सच्ची संस्थाओं में बदल दिया है।

यहाँ हम यह ग़लत ख़याल नहीं पैदा करना चाहते कि हम विदेशों की आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के विरोध में हैं। इसके विपरीत हम वैज्ञानिक शिक्षा को प्रारम्भ करने और उन्नति देने का पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। हम पश्चिम की विज्ञान की शिक्षा के महत्व को अच्छी तरह समझते हैं और हमारा विश्वास है कि हम इस विज्ञान को अपनी सभ्यता का अंश बना सकेंगे। लेकिन ऐसा करते समय हम इस विचार धारा में विश्वास नहीं रखते कि पूर्व की संस्कृति पश्चिम की संस्कृति से किसी भी प्रकार निम्न कोटि की है।

हमारे कई विश्वविद्यालयों में हमारे एशिया के पड़ोसी देशों की सभ्यता, भाषा और इतिहास की शिक्षा का इन दिनों विशेष तौर पर प्रबन्ध किया गया है और हमारे विद्यार्थी बड़ी संख्या में शौक़ से इससे लाभ उठा रहे हैं। हमारी सम्मति में पूर्व की जनता जो अपनी लड़ाई में जुटी हुई है वह पश्चिम के स्वतन्त्रता युद्धप्रिय साम्राज्यवादियों से नैतिकता में और हर तरह से बढ़ी हुई है। हमने जिन परिवर्तनों का वर्णन किया है वह किस तरह प्रयोग में आए। हमारी जनता ने दो साल की छोटी-सी अवधि में सांस्कृतिक विभागों में जो आश्चर्यजनक उन्नति की है वह न तो सरकार के आदेश द्वारा हुई है और न थोड़े-से शिक्षकों की कोशिशों से, वह तो जनता की जागृति ही से हुई है और हो सकती थी। यह उनकी इस भावना से हुई है कि वह अपने देश के स्वयं भाग्यविधाता हैं और वह अब किसी समाजवादी शासन के आधीन नहीं है।

परिश्रम करनेवालों को अपने राजनैतिक और आर्थिक अधिकार मिल गए हैं। बुद्धि से काम करनेवालों को इसका अवसर मिल गया है कि वह अपने दिमाग़ से, पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक अपने देश की सेवा करें।

यह स्वाभाविक है कि अभी चीन में सांस्कृतिक उन्नति और आर्थिक उन्नति प्रारम्भिक अवस्था में है। हम बहुत अधिक ऊँचे पैमाने की सफलता की तैयारी कर रहे हैं। इसी कारण हम जगत् में स्थायी शान्ति के पक्ष में है। अन्त में हम अपने महान् नेता Chairman Mao Tse Tung (चेयरमेन माव जे तुंग) के इन शब्दों को दुहराना चाहते हैं जो उन्होंने इस वर्ष (Peking) पीकिंग में भारतीय प्रजातन्त्र के राष्ट्रीय दिवस के समारोह के अवसर पर कहे थेः—

"भारतीय राष्ट्र एक महान राष्ट्र है। भारतीय जनता महान् जनता है। चीन और भारत के दोनों राष्ट्रों के बीच में और चीन और भारत की जनता के बीच में हज़ारों वर्षों से गहरी मित्रता रही है।—आशा है कि चीन और भारत के राष्ट्र इन निकट सम्बन्धों को स्थिर रक्खेंगे और शान्ति के लिए कार्य करेंगे। संसार की समस्त जनता शान्ति चाहती है, केवल कुछ ही लोग लड़ाई चाहते हैं। भारत चीन और सोवियत यूनियन और दूसरे समस्त शान्तिप्रिय राष्ट्र और जनता दूर पूर्व में शान्ति के लिए एकत्रित हो जाओ और समस्त संसार के शान्ति के लिये कार्य करो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा की गोद में

[गताङ्क से आगे]

उत्तरकाशी से आगे मुख्य मुख्य चट्टियां और पड़ाव क्रमशः इस प्रकार हैं: मनेरी, भटवाड़ी, गंगनानी, पुरवीमठ, भैरोंघाटी और अन्त में गंगोत्री। इन सब में यात्रियों के ठहरने का उचित प्रबन्ध है। उत्तरकाशी से गंगोत्री तक प्रायः ५ या ६ दिन में पहुँचा जा सकता है। रास्ता सब जगह टेढ़ा, मेढ़ा, ऊबड़-खाबड़, पहाड़ी, पथरीला और उतार चढ़ाव का है। इसके एक ओर तो नीचे गर्त में कल कल निनाद करती हुई, भीषण, वेगवती गंगा का प्रवाह है और दूसरी ओर सिर उठाए, ऊँचे पहाड़ खड़े हैं—कहीं बिलकुल नंगे, बिना पेड़ पत्ती के और कहीं हरे भरे वृक्षों से ढके हुए। थोड़ी थोड़ी दूर पर झरने हैं जो कि सम्भवतः यात्रियों की प्यास बुझाने के हेतु पर्वत के हृदय से साक्षात् करुणा के रूप में द्रवित हो उठते हैं। रास्ता कहीं कहीं तो दो या तीन फुट चौड़ा और चट्टानों को काट कर छोटी छोटी-सी सीढ़ियों-सा बनाया हुआ है और कहीं कहीं थोड़ी दूर तक समतल चौड़ा और दोनों ओर सुन्दर लम्बे, सीधे पेड़ों से ढका हुआ मिलता है।

उत्तरकाशी से आगे बढ़ने पर पहले यात्रियों को अपनी सभी आवश्यक वस्तुएँ इकट्ठी करके कील काँटे से लैस हो जाना चाहिए क्योंकि आगे किसी वस्तु की प्राप्ति की आशा रखना व्यर्थ है। इन में से कुछ मुख्य आवश्यक वस्तुएँ इस प्रकार हैं: ऊनी वस्त्र, छाते, बरसाती, वर्षा से सामान को बचाने के लिए रबड़ या मोम जामा, टार्च, लालटेन, मिट्टी का तेल, चाय की पत्ती, शक्कर, दवाइयाँ, घड़ी इत्यादि। घी, दूध, राशन प्रायः सब जगह आसानी से मिल जाता है, घी लगभग आठ रुपए सेर और दूध एक रुपया सेर, चावल डेढ़ रुपया सेर, आटा एक रुपया सेर, दाल सवा रुपया सेर के हिसाब से लगभग सभी चट्टियों पर मिलती है। भैरोंघाटी से ऊपर जाने पर भाव और भी तेज हो जाता है। घी तो कभी कभी भेड़ का मिलता है। आटे में भी प्रायः किर-किर होती है क्योंकि पनचक्कियों में पिसा होता है। साग भाजी के नाम पर केवल पहाड़ी आलू और प्याज मिलते हैं। आलू बहुत सस्ता लगभग चार आने सेर मिलता है। बहुत से यात्री उत्तराखंड में ग़रीबों को बाँटने के लिए बहुत-सी सुइयाँ और धागा भी ले जाते हैं। वहाँ ये वस्तुएँ नहीं मिलती और प्रायः ग़रीब पहाड़ी इनके अभाव में महीनों तक अपने फटे वस्त्रों को सी भी नहीं पाते। और अब तो ऐसा नियम-सा हो गया है कि जब यात्री विशेषतया स्त्रियों के किसी छोटे-से पहाड़ी गाँव के पास या खेतों से गुज़रते हैं बहुत-से छोटे छोटे बच्चे दौड़ कर उन्हें "शाब सुई", "शाब सुई" या "सुई दो रानी" "डोरा रानी" चिल्लाते हुए घेर लेते हैं।

उत्तरकाशी से एक दिन बहुत सबेरे ही दो घोड़ों को साथ लेकर हम लोग आगे की यात्रा पर चल दिए। वह अमरीकन दम्पति हमसे दो दिन पहले ही जा चुके थे। हम लोगों ने एक घोड़े पर सामान लाद लिया और एक साथ में आवश्यकता पड़ने पर सवारी के लिए रक्खा। उस दिन यात्रा में दोपहर के लगभग हमें एक जवान ग़रीब पहाड़ी स्त्री मिली। मेरी पत्नी उसे रोक कर सुई देने लगी तो बातचीत में ज्ञात हुआ कि करीब ५ या १० मील की दूरी से वह उत्तरकाशी केवल एक चिट्ठी डाक में डालने जा रही थी—फटे पुराने काग़ज़ पर पेंसिल से टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखी हुई एक फौजी जवान के नाम उसके प्रेयसी की विरह की चिट्ठी। उसी काग़ज़ को मोड़ कर चिपका दिया गया था और उसी पर पता लिखा हुआ था। उस ग़रीबनी की उस लम्बी यात्रा का एकमात्र उद्देश्य टिकट चिपका कर उस पत्र को डाक में डालना था। इस घटना ने एक ओर तो कालिदास के मेघदूत का दृश्य आँखों के सामने ला खड़ा किया और दूसरी ओर यह भी विचार हुआ कि बीसवीं सदी में भी भारत के असंख्य ग्रामवासियों को शायद इसी प्रकार आज भी एक चिट्ठी डाक में डालने के लिए दिन भर पैदल यात्रा करनी पड़ती है।

उत्तरकाशी से हम लोग इस हिसाब से रवाना हुए थे कि जहाँ तक सम्भव हो गंगा दशहरा के महापर्व पर हम लोग गंगोत्री पहुँच जाएँ। अपनी यात्रा के तीसरे दिन जब हम लोग एक छोटे-से पहाड़ी गाँव के पास से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजर रहे थे हमें विचित्र प्रकार का शोर और कई तरह के जङ्गली बाजों की आवाजें सुनाई दीं। कौतूहलवश हम गाँव में चले गए तो देखा कि एक रंगी-बिरंगी कपड़े और चमकीले कागजों से सजे हुए बन्द डोले को बहुत-से आदमी कंधों पर उठाए पागलों की तरह नाच रहे हैं। उन्हें घेर कर और बहुत-से पहाड़ी मर्द और बच्चे, बूढ़े खड़े हुए थे। कुछ तो शङ्ख, थाल, एवं अन्य पहाड़ी बाजे बजा रहे थे। पहले तो हम समझे कि शायद किसी के अंतिम संस्कार की तैयारी हो रही है परन्तु पूछने पर बाद में ज्ञात हुआ कि वे लोग 'देवी का डोला' उठा रहे थे तथा उन लोगों में ऐसा विश्वास है कि डोला उठानेवाले स्वयं नहीं हिल रहे थे अपि तु देवी की शक्ति के कारण यह डोला स्वयं बहुत वेग से हिल रहा था और आठ दस आदमियों के लिए भी उसे संभाल कर पकड़े रखना कठिन था। उन लोगों ने पहले तो बड़ी धूमधाम से उस डोले का जुलूस गाँव भर में घुमाया और जगह जगह विचित्र प्रकार के मंत्रों और विधियों से उसका पूजन किया। उसके बाद तुरंत ही उस डोले को लेकर २०-२५ आदमी गंगोत्री के लिए बाजे गाजे के साथ रवाना होगए। सारे रास्ते उसी प्रकार वह डोला हिलता और नाचता हुआ जाता है। कोई उसे खोल या अन्दर से देख नहीं सकता उसे जमीन पर नीचे भी नहीं रक्खा जाता। उसे या तो किसी मन्दिर अथवा अन्य पवित्र स्थान में रख देते हैं या फिर उसे कंधों पर ही उठाए खड़े रहते हैं। जिन लोगों को उसे ढोने के लिए चुना जाता है वे विशेष रूप से अपने को भाग्यशाली समझते हैं। इसी प्रकार डोला गङ्गा दशहरे के दिन या उसकी पहली रात को गंगोत्री पहुँच जाता है और वहाँ उसका बड़े समारोह से पूजन होता है। अन्त में उसे गङ्गा में प्रवाहित कर देते हैं।

इस यात्रा में सब से अधिक कठिन प्रश्न जल का होता है। श्री बद्री और केदार की यात्रा में तो जगह जगह अच्छे झरनों के पानी के छन कर नल में आने का प्रबन्ध कर दिया गया है और उन पर साइन बोर्ड लगा दिया गया है कि कहाँ का जल पीने योग्य है और कहाँ का नहीं। परन्तु गंगोत्री-जमनोत्री की यात्रा में प्रशासन की ओर से ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं है—शायद यह रियासती राज्य के कारण हो। अतएव यात्री को इस दिशा में अपने ऊपर या दूसरों की सम्मति पर ही निर्भर होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त यात्रा की अधिकतर बीमारियाँ जल के कारण ही होती हैं। गंगा का जल तो बहुत ही रेतीला होता है जो कपड़े से छानने के बाद भी पीने के उपयुक्त नहीं होता। झरनों के जलों में अलग अलग गुण होते हैं। इस प्रकार पीने के जल में असावधानी करने से तरह तरह के रोग और 'हिल डायरिया' हो जाता है। इसके अतिरिक्त सबेरे खाली पेट कभी जल

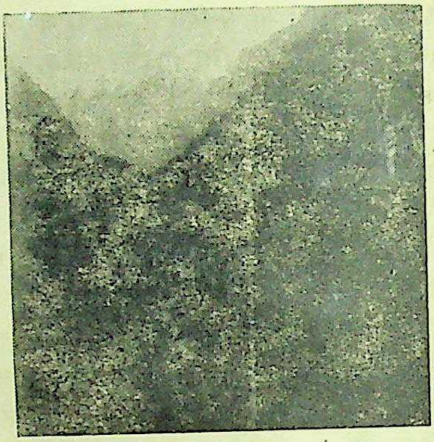

गंगा का दृश्य

नहीं पीना चाहिए अन्यथा पानी लग जाता है। यात्रा में चलते चलते थक कर या पसीने में एकदम पानी नहीं पीना चाहिए। पहले विश्राम लेकर और पसीना सूखने पर ही पानी पीना चाहिए। एक अच्छे अनुभवी वैद्य से ज्ञात हुआ कि यदि सदा पानी पीने के पहले मुँह में कुछ दाने काली मिर्च और मिसरी चबा ली जाए तो पानी नहीं लगता। इसके अतिरिक्त हम लोग तो सब अपने अपने कन्धों पर पानी का थरमास या वाटर बाटल साथ रखते थे।

हमारे घोड़ेवाले के भाई ने गंगानानी और पुरवीमठ के बीच एक ज़रा सुनसान-सी जगह रास्ते में छप्पर डाल कर चाय पानी की एक दूकान खोल ली थी। वहाँ से दो तीन मील के इलाक़े में न तो कोई चट्टी थी और न ही दूसरी दूकान। उसने भी ऐसा बीहड़ और सुनसान-सा स्थान शायद इसी लिए चुन लिया था कि वहाँ पर आते जाते विश्राम के लिए प्रायः सभी यात्री रुकेंगे और चाय पानी उसी के पास करेंगे। वैसे तो मेरा कार्यक्रम उस दिन पुरवीमठ पहुँच कर ही रात्रि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए रुकने का था परन्तु मेरे घोड़ेवाले का बहुत आग्रह था कि मैं पुरवीमठ के बजाय दो तीन मील पहले उसके भाई की दूकान पर ही रात्रि के लिए डेरा डालूँ। पहले तो मैंने अपने घोड़ेवाले को बहुत टालना चाहा क्योंकि औरों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह स्थान ठीक नहीं था और वहाँ कोई अच्छी झोंपड़ी तक ठहरने के लिए न थी। परन्तु उसके बहुत आग्रह पर मैंने भी सोचा कि क्यों न एक रात्रि बीहड़ एकान्त जङ्गल में रुकने का आनन्द लिया जाए। अतएव हम लोग वहाँ उसकी दूकान पर ही रुक गए। पहले तो चाय आदि बनवाकर पी और बाद में उससे भोजन का प्रबन्ध करने को कहा। आलू और दाल खाते खाते हम लोग बहुत ऊब गए थे और हमारा विटामिन-युगी शरीर हरा साग माँग रहा था। हमने उससे कुछ हरा साग खिलाने को कहा। पहले तो वह बोला कि हरा साग वहाँ नहीं मिल सकता परन्तु फिर न जाने कहाँ से कुछ जङ्गली जड़ें और पोदीना पहाड़ से तोड़ लाया। उसे देख कर हमने डरते डरते खाना स्वीकार कर लिया। उन डंठलों की भाजी बन गई और पोदीने की चटनी परन्तु मसाला उसके पास कुछ भी न था। इसके बाद हम लोगों की ख़ातिरदारी में पूड़ी बनने की बारी आई परन्तु हमें ज्ञात हुआ कि न तो उसके पास घी है, न चकला, बेलन, करछुल, चमचा आदि। अस्तु, न जाने कब का और कैसा तेल निकाल कर उसने एक कढ़ाइनुमा बरतन में डाल कर आग पर चढ़ाया और उसमें हाथ से आटे की मोटी मोटी लिट्टी बना कर डालने लगा। जब उन पूड़ियों को उलटने की बारी आई तो करछुल आदि न होने से हम लोग बहुत परेशान हुए। परन्तु उसने जल्दी से लकड़ी की दो लम्बी सींकें तोड़ कर और उनसे उन लिट्टियों को छेद छेद कर उलट दिया। इस तरह किसी प्रकार जला-तला भोजन बनने पर हम लोग खाने बैठे। अभी खा ही रहे थे कि दुर्भाग्यवश वर्षा शुरू हो गई। पहाड़ों में आप नहीं जान सकते कि कब और कितनी वर्षा होगी। पहले तो हमने विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु शीघ्र ही जब मालूम हुआ कि पूरा छप्पर बुरी तरह चूता है तो हम बहुत घबड़ाए और घोड़ेवाले को बुरा भला कहने लगे। पानी भी ज़ोर पकड़ता जाता था और वहाँ तो रात्रि काटना असम्भव प्रतीत हुआ। घोड़ेवाला भी घबड़ा गया और पहाड़ी भाषा में अपने भाई से कहने सुनने लगा! बाद में उसने हमें बताया कि पास ही एक पहाड़ी गुफ़ा है जहाँ पानी नहीं चूता और अधिक वर्षा होने पर वे लोग वहाँ की ही शरण लेते हैं। उसने हमें कहा कि हम उसी में चले जाएँ। कुछ तो प्राकृतिक पहाड़ी गुफ़ा में रहने के रोमान्स से और कुछ दूसरा कोई उपाय न देख कर हम राज़ी हो गए और रात्रि के अन्धकार में लालटेन के सहारे वर्षा से अपने को बचाने के लिए उस गुफ़ा की खोज में चल दिए। एक पहाड़ी के पथप्रदर्शन में वहाँ पहुँच कर हमने उस छोटी-सी गुफ़ा को झाड़ पोंछ कर उसकी ऊँची-नीची पथरीली ज़मीन पर अपना बिस्तर डाल लिया। रात भर खूब वर्षा होती रही और उस अन्धेरी गुफ़ा में पड़े पड़े हम अजीब शोर—वर्षा की आवाज़, गंगा की कल कल ध्वनि और जङ्गली जानवरों की चीखें—सुनते रहे। मन में भी तरह तरह के विचार आते रहे जिससे हम बिलकुल सो न सके। कभी कभी तो भय लगता साँप, बिच्छू, भेड़िए एवं अन्य जानवरों का; कभी कभी मानवीय इतिहास का प्रारंभिक रहन सहन, आदिम मानव का गुफ़ा का जीवन और उसका विकास, और फिर उसकी तुलना में आज के न्यूयार्क की १०० मंज़िले मकान के निवासी का जीवन आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठता था।

इसी उधेड़बुन में राम राम करते सारी रात कट गई और सवेरा होने पर ज्यों ही वर्षा बन्द हुई हम जल्दी से अपनी यात्रा पर आगे चल पड़े। आज इस समय भी उस रात्रि और गुफ़ा को याद कर मन रोमांचित हो उठता है। इस अद्वितीय अनुभव के लिए उस घोड़ेवाले के हम आजीवन कृतज्ञ रहेंगे।

पुरवीमठ के ऊपर भैरोघाटी की चढ़ाई बहुत विकट है। रास्ता भी बहुत ख़राब, छोटा-संकरा एवं एकदम ऊँचा है। दो ढाई मील तक तो कोई सवारी नहीं जा सकती। घोड़ा, खच्चर डंडी आदि सबसे उतर कर पैदल चलना पड़ता है। केवल बूढ़े अशक्त लोगों को कंडी पर बैठा कर होशियार पहाड़ी उस रास्ते पर चढ़ सकते हैं। कहीं कहीं तो चढ़ाव ४५° से ६०° तक का है। उत्तर-काशी से चलते समय तो हमें यह ज्ञात न था अत एव हमने अपना प्रोग्राम भैरोघाटी पर ही रात्रि के लिए रुकने का बनाया था परन्तु रास्ते की हालत और विकट चढ़ाई की सूचना पा कर हमने शाम के समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखिर दो ढाई मील ऊपर चढ़ने का इरादा छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त दिन भर आकाश बादलों से घिरा हुआ था और वर्षा की आशंका प्रत्येक क्षण बनी हुई थी। इस समय हम लोग बहुत काफ़ी ऊँचाई पर थे और शीत भी बढ़ गया था। मई की भरी दोपहरी में भी सूर्य भगवान् के पूर्ण दर्शन प्राप्त करना कठिन था। अतएव उस दिन सायंकाल हम लोग भैरोघाटी से नीचे एक छोटे-से पहाड़ी गाँव में रुक गए। वहाँ कोई विशेष धर्मशाला आदि न थी; केवल कुछ दुकानदारों की चट्टियाँ थीं परन्तु वे भी यात्रियों से भरी पड़ी थीं। बहुत चेष्टा करने पर भी हम कोई स्थान न पा सके। इसी भाग दौड़ में हमारे घोड़ेवाले ने बातचीत के सिलसिले में किसी पहाड़ी दुकानदार से कह दिया कि मैं डाक्टर हूँ। बस फिर क्या पूछना "डाकधर" साहब की आवभगत में उस दुकादार ने फ़ौरन अपनी ही काठ की झोंपड़ी का एक कोना ख़ाली कर दिया। राम राम करके हमने किसी प्रकार अपना सामान वहाँ उतारा ही था कि मरीज़ों का ताँता लग गया। असल बात यह थी कि डाक्टर न होते हुए भी मैंने अपने पास दवाइयों का एक बक्सा यात्रा में रख लिया था और उसमें साधारण रोगों की लगभग ४०-५० अच्छी और पेटेण्ट औषधियाँ थीं। रास्ते में स्थान-स्थान पर अपनी शक्ति के अनुसार रोगियों को दवा देता रहा था। अस्तु, उन मरीज़ों का हाल सुनकर, उन्हें साधारण स्वास्थ्य और सफ़ाई के नियम बता कर मैं दवा देता रहा। किसी के दाँत में दर्द तो किसी की आँख उठने आई थी, किसी को मलेरिया था तो किसी को चोट लगी थी। गाँव में और आस-पास किसी डाक्टर, वैद्य अथवा औषधियों की कोई व्यवस्था न थी। गाँववाले पहाड़ी अनेक प्रकार के विचित्र अंध विश्वासों में पड़े हुए थे। बहुत अधिक कठिन रोग हो जाने पर डांडी में डाल कर उत्तरकाशी ले जाना ही एकमात्र उपाय था और यह भी केवल कुछ धनिक पहाड़ी कर सकते थे। फिर प्रायः ले जाने की व्यवस्था होते-होते यह नौबत आ जाती थी और रोगी की दशा इतनी ख़राब हो जाती कि वह यात्रा के कष्ट से स्वर्गधाम पहुँच जाता।

उस दिन उस पहाड़ी गाँव में उस रात्रि को मुझे एक दृश्य ऐसा देखना पड़ा जिसे मैं कभी भूल न सकूँगा और जिसे याद कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। न जाने कैसे और किनसे मेरे आगमन की सूचना पा कर काफ़ी रात गए कड़कड़ाती सर्दी में एक ग़रीब पहाड़ी मुझे खोजता हुआ जहाँ मैं ठहरा था आ पहुँचा। मैं तो उसकी भाषा न समझ सका परन्तु मेरे मेज़बान दुकानदार ने मुझे समझाया कि उसका रिश्तेदार दो दिन से पेट की पीड़ा से बहुत बेचैन है और कराह रहा है। उसका मल-त्याग भी बंद है। सारे घर में रोना पीटना मचा हुआ है। उसके आग्रह और घबराहट को देख कर मैं उसके साथ जाने को तत्पर हो गया। उसके घर जाकर देखता क्या हूँ कि एक अधेड़ उम्र का पहाड़ी एक गंदी तंग कोठरी में ज़मीन पर पड़ा दर्द के मारे ज़ोर ज़ोर से चिल्ला रहा है। टार्च जला कर देखने पर उसके शरीर पर दो तीन बड़े बड़े जलने के दाग़ नज़र आए। पूछने पर ज्ञात हुआ कि पहले तो उस रोगी की झाड़ फूँक की गई थी और जब उससे लाभ न हुआ तो यह समझ कर कि उस पर भूत प्रेत आया है उसे दो तीन बार ढोल दमामे के साथ लोहे की लाल सलाखों से दाग़ दिया गया था। उस बेचारे रोगी के रोने गिड़गिड़ाने की भी किसी ने सुनवाई नहीं की। यह सब जान कर और देख कर मेरी आँखों में आँसू आ गए और एक तेज़ रेचक औषधि दे कर और उन्हें वैसा पुनः न करने को समझा कर भरे हृदय से वापस लौट आया। अधिक मैं इसलिए न कह सका कि अज्ञान से उनके अंध विश्वास इतने पक्के हो गए थे कि वे मेरा विश्वास ही न करते और उलटे मेरी औषधि भी उस रोगी को न देते। अपनी यात्रा से लौट कर बाद में मैंने काली कमली क्षेत्र, ऋषीकेश को इस घटना की सूचना देते हुए कुछ औषधियों का प्रबन्ध करने के लिए प्रेरित किया था।

अगले दिन प्रातःकाल ही हम लोग भैरोघाटी की चढ़ाई के लिए कमर कस कर चल दिए। सर्दी बहुत अधिक थी। रात में कुछ बर्फ़ भी पड़ी थी। भैरोघाटी के पास लाल गेरुए रंग का एक झरना सा पाया जाता है तथापि वहाँ एक बहुत बड़ा और पुराना 'भैरो भोपाल, काशी के कोतवाल' का मन्दिर भी है—इसीलिए शायद इस चट्टी का नाम भैरोघाटी पड़ गया है। यहाँ पर पानी की कठिनाई है और चट्टी में नहाना आदि सम्भव नहीं। एक बड़ा-सा हौज़ बना कर मीलों लम्बी नालियों और बाँस के पाइप से इसमें थोड़ा थोड़ा जल इकट्ठा किया जाता है और यही यात्रियों के भोजन और पानी के काम में आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भैरोघाटी से फिर गंगोत्री कुल तीन मील रह जाती है। आगे रास्ता भी कुछ सहल और अच्छा है। अतएव उसी दिन सायंकाल हम लोग गंगोत्री पहुँच गए और काली कमली क्षेत्र की धर्मशाला में आसन जमा कर श्री गङ्गा मैया की संध्या-पूजन आरती में सम्मिलित हुए। यहाँ पर श्री गङ्गा जी का एक सुन्दर पुराना मन्दिर है। मूर्ति गर्भगृह में स्थापित है जहाँ दिन में भी सूर्य का प्रकाश पहुँच नहीं सकता। रात दिन वहाँ दीपक जलते रहते हैं। रोशनी का और कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। मैंने कई बार फ़ोटो लेने का प्रयास किया। वहाँ के पुजारियों ने टार्च आदि की रोशनी डालने देना तो अस्वीकार कर दिया। केवल थोड़ा-सा कपूर जला कर दिन में कई बार तसवीर ली परन्तु वहाँ से लौटकर लखनऊ में फ़िल्म को धुलवाने पर ज्ञात हुआ कि दुर्भाग्य से एक भी फ़ोटो ठीक नहीं आई।

मन्दिर के बगल से ही गङ्गा जी की धारा बहती है। यहाँ का दृश्य बहुत ही सुन्दर और मनोहर है। जिन लोगों ने गङ्गा का रूप केवल कलकत्ते या काशी में ही देखा है वे उसके गंगोत्री के रूप की कल्पना भी नहीं कर सकते। गंगोत्री में गङ्गा की धारा बहुत पतली, बर्फ़ीली और तेज़ है। जल कहीं करीब ८ फुट से ज्यादा गहरा नहीं और इतना स्वच्छ और निर्मल है कि तलहटी साफ़ नज़र आती है। पूरा पाट १०० फुट के लगभग होगा। देख कर प्रतीत होता है कि कोई भी आसानी से पार जा सकता है परन्तु धार इतनी तेज़ है कि शायद हाथी भी बह जाए। कहीं कहीं गंगा का यह स्वरूप भी नज़र आता है कि इच्छा होती है कि छलांग मार कर उस पार पहुँच जाया जाए। रास्ते में दो तीन जगह जहाँ गंगा की धार दो बड़ी बड़ी चट्टानों के बीच से गुज़रती है पाट कुल करीब १०-१२ फुट ही प्रतीत होता है। और हाँ, ज़रा हाथ डाल कर तो देखिए। जल को छूते छूते उँगलियाँ सुन्न हो जाती हैं और फिर उनसे बटन तक बन्द नहीं हो सकता। आदमी दो चार क्षण से अधिक यदि उस जल में रह जाय तो शायद रक्त ही जम जाए। ६ महीने से अधिक तो यह भाग सदा बर्फ़ से ही ढका रहता है। साल के केवल दो चार महीनों में ही वहाँ पर मनुष्यों की चहल पहल नज़र आती है। मेरा तो अब भी विचार है कि साधारण यात्रियों के लिए उस सर्दी में वहाँ गंगा में स्नान कर लेना मानवीय शक्ति के बाहर की बात है। अन्तिम समय तक यात्री निर्णय नहीं कर पाते कि उसमें स्नान कर सकेंगे या नहीं। परन्तु फिर पण्डों या पुजारियों के उत्साहित करने और धर्मलाभ के विचार से डरते डरते सशंक मन से ही एक गोता लगा लेते हैं और उस समय न जाने उनमें कौन सी दैवी अथवा प्राकृतिक शक्ति आ जाती है कि उसके बाद भी प्रायः उन्हें कोई विशेष हानि नहीं होती। हाँ, यात्री जल में दो क्षण से अधिक नहीं रह पाता; और दो गोतों में में ही वह मूर्च्छित-सा हो जाता है तथा बाहर खड़े उसके अन्य सम्बन्धी उसे जल्दी से बाहर खींच कर कम्बलों में लपेट लेते हैं और पहले से लाई हुई अंगीठी के पास तापने को बैठा देते हैं।

गंगोत्री में मेरा एक दूसरा सब से बड़ा आकर्षण था वहाँ के महात्मा। यात्रा के पहले ही मुझे डाक्टर पन्नालाल जी (युक्तप्रांत के भूतपूर्व शिक्षामन्त्री) से ज्ञात हुआ था कि गंगोत्री के पास बहुत से बड़े-बड़े महात्मा रहते हैं। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि इनमें से मुख्य श्री कृष्णाक्षम जी हैं जिनका आश्रम गंगोत्री के पास ही गंगा के दूसरे किनारे पर है। ये वे ही विख्यात महात्मा हैं जिन्हें स्वर्गीय महामना मालवीय जी हिमाचल से पकड़ कर हिन्दू विश्वविद्यालय का उद्घाटन करवाने ले गए और कई प्रयत्न करने पर भी जिनका फ़ोटो कैमरे में न आ सका। आज भी उनकी वही आन है कि कोई उनका फोटो नहीं ले सकता और

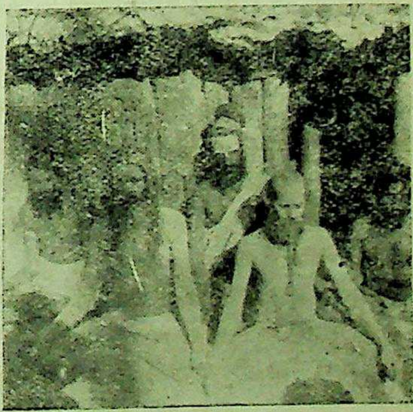

श्री आलूवाले बाबा—श्री मौनी बाबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न ही वे किसी को इसकी अनुमति ही देते हैं। वे प्रायः सदा ही पद्मासन में त्राटक मुद्रा में मौन बैठे रहते हैं। किसी पर विशेष कृपा हो तो एक आधा शब्द लिख कर बता देते हैं। कहते हैं कि बारह वर्षों से भी अधिक लगातार नियमानुसार गंगोत्री में ही रह कर उन्होंने मौन तपस्या की है। जब कि वह प्रदेश पूरा बर्फ़ से ढका रहता है तब भी वे वहीं एक लकड़ी की कुटिया में जमीन के नीचे के गर्भगृह में तपस्या करते थे। अब तो वे काफ़ी वृद्ध हैं परन्तु फिर भी कोई उनकी उम्र का अनुमान नहीं लगा सकता। लोग कहते हैं कि वर्षों से वे उन्हें वैसा ही देखते आए हैं।

श्री कृष्णाश्रम जी से थोड़ी ही दूर पर योगियों की की दो और कुटिया हैं, एक तो आलू वाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं और दूसरे मौनी बाबा कहलाते हैं। मौनी बाबा की सिर की जटाएँ तो पैरों की एड़ी चूमती हैं। इन दोनों की फ़ोटो लेने में मैं बड़ी कठिनाई से सफल हो सका। परन्तु प्रायः ये लोग कैमरे से बहुत शरमाते और घबड़ाते हैं।

गंगोत्री में अगले दिन गंगा दशहरे का महा-पर्व था। उस दिन वहाँ बहुत धूमधाम थी। देवी का वह 'डोला' भी जो हमें रास्ते में मिला था, वहाँ आ चुका था और हमें उसके जल में विसर्जन का दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हम लोगों ने गंगा में स्नान तथा पूजन आदि किया। गंगोत्री से प्रायः सभी यात्री अपने साथ गंगाजल ले जाते हैं और बहुत-से तो उसे दक्षिण में श्री रामेश्वर तक पहुँचाने का संकल्प और मन्नत भी मानते हैं।

हमें ज्ञात हुआ कि गंगोत्री से भी ढाई मील ऊपर एक अमृतकुण्ड नाम का घाट है जहाँ श्री. सीताराम का एक सुन्दर मन्दिर तथा किसी प्रसिद्ध फलाहारी महात्मा का आश्रम है। उस दिन गंगा दशहरे के उपलक्ष्य में वहाँ दोपहर को एक भण्डारा था। अत एव घूमने और दर्शन करने के विचार से कुछ पण्डों के साथ मैं भी वहाँ चल दिया। वहाँ का रास्ता बहुत ही ख़राब है। कहावत है कि अमृतकुण्ड जाने के लिए तो "मुख में राम पग में ध्यान" रखना चाहिए। परन्तु रास्ते का दृश्य इतना मनोहर है कि प्राणी सब कष्टों को भूल कर उस प्राकृतिक छवि से विभोर हो उठता है। एक ओर तो भरी दोपहरी की किरणों में सोने-सा चमकता हुआ एक हिम से ढका पर्वत है जिसे साधारणतया "कुबेर का ख़ज़ाना" कहते हैं और दूसरी ओर बिलकुल श्वेत वह हिम खण्ड (ग्लेशियर) नज़र आता है जिसे गोमुख कहते हैं और जहाँ से गंगा निकलती है।

अमृतकुण्ड पहुँच कर हमने भण्डारा देखा और स्वामी गंगादास जी के दर्शन किए। वे ही उस आश्रम के आचार्य थे और उन्होंने भी १२ वर्ष गंगोत्री में एक आसन में बैठ कर मौन तपस्या करने का व्रत ले रक्खा था। वे स्वयं तो अमृतकुण्ड छोड़ कर कभी गंगोत्री तक भी नहीं जाते थे। इस प्रकार उनके व्रत के ८-१० वर्ष

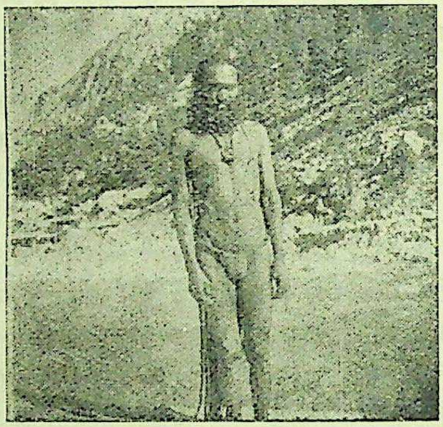

श्री स्वामी गंगादास जी

पूरे हो चुके थे और लगभग दो वर्ष और बाक़ी थे। एक लकड़ी की कुटिया में जमीन के नीचे छोटे-से तहख़ाने में रहने का उनका प्रबन्ध देख कर मैं आश्चर्यचकित रह गया और मुझे प्रतीत हुआ कि शायद टुण्डा के बर्फ़ीले मैदानों में भी ऐस्कीमो लोग इसी प्रकार रहते होंगे। वहाँ इस तहख़ाने में कोई आदमी सीधा खड़ा भी नहीं हो सकता था। मुश्किल से सिर झुका कर एक आदमी के बैठने या लेटने का स्थान था। अस्तु, भण्डारा करीब ३ बजे समाप्त हुआ और उसके बाद हम लोग पानी पीने गंगा की ओर चले तो देखते क्या हैं कि दिन के और आश्रम के के बिलकुल पास ही पहाड़ों में से जङ्गली हरिणों का एक झुण्ड छलाँगे मारता हुआ आया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा का जल पीकर उसी प्रकार छलाँगे मारता हुआ वापस भाग गया। आश्रमवासी तो उन हरिणों को पूर्व जन्म के ऋषि-मुनि समझते हैं और प्रणाम करते हैं। उनसे कोई छेड़ छाड़ नहीं करता। बाद में मालूम हुआ कि कभी तो रात में भेड़िये और चीते भी यहाँ पानी पीने आते हैं और उन कुटियों के दरवाजे खटखटा जाते हैं।

गंगोत्री से लगभग १२ मील और आगे वह ग्लेशियर है जिसमें से गंगा की पहली पतली धार निकलती दिखाई देती है। इसे गोमुख कहते हैं। इसका रास्ता बहुत ही भीषण और खतरनाक है। बीच में कोई दूकान या चट्टी नहीं है, ठहरने का भी कोई स्थान नहीं। या तो साथ में टेण्ट ले जाना पड़ता है और या प्राकृतिक गुफाओं के भरोसे रहना पड़ता है। मार्ग इतना दुर्गम है कि यह १२ मील तय करने में तीन चार दिन लग जाते हैं। मीलों हिम पर चलना पड़ता है। रास्ते में लकड़ी आदि भी नहीं मिलती अतएव खाने पकाने की भी सुविधा नहीं है। मुश्किल से एक प्रति शत यात्री ही गंगोत्री से गोमुख को जाते हैं। इसके अतिरिक्त जाने के पहले उन्हें मुख्य सरकारी चौकीदार को अपना नाम पता आदि सब लिखा कर अनुमति लेनी पड़ती है। स्त्रियों को साथ लेकर जाने की अनुमति अथवा राय तो कोई नहीं देता। इन्हीं सब कारणों से मैं इच्छा होते हुए भी गोमुख न जा सका और दो रात्रि गंगोत्री में रह कर पुनः वापस लौट पड़ा।

—श्री इन्द्र संघी,
एम. एस सी.

चिरनवीन

सच्ची सुन्दरता वही है,
जो प्रति क्षण नवीन रूप धारण कर लेती है॥

—माघ

वही प्रेम वही अनुराग—,
वर्णन के योग्य होता है—,
जिसका प्रत्येक-अंश नवीन होता है।

—विद्यापति

प्रेम कभी अपने को दुहराता नहीं,
इसके पृष्ठ का प्रत्येक अक्षर नवीन होता है॥

—एक पंजाबी कवयित्री

देखो, भगवान् का काव्य,
यह सदा आँखों के सामने रहता है—
और कभी पुराना नहीं होता।

—वेद

......यह प्रवाह पुरातन एवं नित्य नवीन है।
नई नई इन्द्रियों-नए नए हृदयों के भीतर
हो कर यह सनातन स्रोत सदा से नया हो कर बह रहा है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकनाथ और उसकी कविता

जिस प्रदेश में अजन्ता और एलोरा की गुफाएँ हैं; जहाँ की चित्रकारी और शिल्पकारी को देखने के लिए संसार के कोने कोने से मनुष्य आते हैं और उन्हें देख कर विस्मित हो जाते हैं; जहाँ बौद्धों के जातकों की कथाओं, जैनियों के तीर्थङ्करों की मूर्तियों और पुराणों की आख्यायिकों को चित्रित किया गया है; जहाँ बौद्ध, जैनियों और ब्राह्मणों की संस्कृति का समागम है; जिस प्रदेश में भारत सम्राट् औरंगजेब, उसकी सम्राज्ञी 'दिलरस' और निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह अव्वल के मक़बरे हैं जो उत्तर और दक्षिण की संस्कृति के मिलाप के प्रदर्शक हैं; जिस प्रदेश में सूफ़ी फ़क़ीरों और भक्त सन्तों की समाधियाँ हैं; जो हिन्दू मुस्लिम एकता की द्योतक हैं; जिस प्रदेश में देवगढ़ और प्रतिष्ठान के भग्नावशेष हैं जो जादव और शालिवाहन वंशों के स्मारक हैं; जिस प्रदेश की सन्तों की परम्परा में श्री ज्ञानदेव ने श्रीमद्भगवद् गीता की ज्योति जगमगाई और जिस प्रदेश को पुण्यसलिला गोदावरी पवित्र करती है उसी प्रदेश के अन्तर्गत पैठणपुरी में श्री एकनाथ ने लगभग ई॰ स. १५३२ में जन्म लिया। जहाँ एक ओर उनकी कीर्ति के पार्थिव स्मारक उनकी साधुता का परिचय दे रहे हैं वहाँ दूसरी ओर उनके आध्यात्मिक ग्रन्थ अपनी पीयूष–वर्षा से जन–चातकों को धर्मामृत पान करा रहे हैं।

एकनाथ की गणना केवल साधुओं ही में नहीं की जाती अपि तु वे उच्च कोटि के कवि भी हैं। उनके लोकप्रिय ग्रन्थ उनके काव्य रचना की साक्षी दे रहे हैं। उनके ग्रन्थों के कुछ स्थल तो ऐसे हैं कि रसिक जन उनमें तल्लीन होकर अवर्णनीय आनन्द अनुभव करते हैं। एकनाथ में काव्य रचना की स्वाभाविक और तात्कालिक स्फूर्ति थी। इसीलिए उनकी कविता रसिकों को विशेष प्रिय प्रतीत हुई। अध्यात्म सदृश गहन विषयों पर भी एकनाथ ने चलते चलते हज़ारों ओवी और अभङ्ग रच डाले। ये कविताएँ उनकी विलक्षण कल्पना-शक्ति की सूचक है। इसमें से बहुत–सी कविताएँ तो गोदावरी के बालुकामय तीर पर उपदेश करते करते रची गई हैं। बहुत-से पद तो जब वे कीर्तन में निमग्न थे उसी समय उनके मुख से निकले हैं। नाथ जैसी कवित्व शक्ति का स्वाभाविक ओज बहुत थोड़े कवियों में पाया जाता है। उनकी कविता सादी सीदी और बोधगम्य है। इसमें प्रसाद गुण सर्वत्र पाया जाता है। एकनाथ का कोई ग्रन्थ उठा लीजिए उसकी कविता में कृत्रिमता कहीं दिखाई न देगी। भाषा मधुर, शुद्ध सरल, प्रभावशील और वर्णन शैली रोचक है। पाठक जैसे जैसे पढ़ता जाता है वैसे वैसे उसकी चित्तवृत्ति विकसित होती जाती है और ग्रन्थ छोड़ने को जी नहीं चाहता। एकनाथ ने ज्ञानेश्वर कालीन प्राचीन और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में नहीं किया, नहीं तो आज भी इन अपरिचित शब्दों की भरमार मराठी भाषा में पाई जाती। उस समय जब कि मराठी भाषा उपेक्षित अवस्था में थी भागवत और रामायण सदृश उत्कृष्ट ग्रन्थों के रचयिता की विद्वत्ता, काव्यशक्ति और साहस को श्लाघ्य ही मानना पड़ेगा।

स्वतंत्र कविता करने में एकनाथ जितने कुशल हैं उतने ही एक भाषा से दूसरी भाषा में सरस अनुवाद करने में भी वे सिद्धहस्त हैं। संस्कृत काव्य का मराठी काव्य में अनुवाद करने की कुशलता उन में अच्छी पाई जाती है। एकनाथ संस्कृत भाषा के पण्डित थे। उनमें संस्कृत में कविता करने की क्षमता थी। उस काल में संस्कृत में कविता करने की परिपाटी थी परन्तु जन साधारण प्रायः संस्कृत से परिचित न थे इसलिए अनपढ़ लोगों को संस्कृत ग्रन्थों के रहस्य बताने के लिए इस कवि ने भागवत सदृश महत्वपूर्ण ग्रन्थ का विषय प्राकृत जनों को सुगम करने के लिए सब काव्य प्रसाद गुण युक्त मराठी में किया हैं। मूल अर्थ स्पष्ट करने के लिए एक एक श्लोक पर कई अध्याय लिखे हैं और वेदान्त सदृश कठिन विषय को भी अत्यन्त मनोरंजक बना दिया है।

एकनाथ के उपलब्ध ग्रन्थ सात हैं जिनके दो भेद हैं—अध्यात्मविषयक और चरित्रविषयक। भावार्थ रामायण और रुक्मिणी स्वयंवर चरित्रविषयक ग्रन्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकनाथी भागवत, स्वात्मसुख, चतुःश्लोकी भागवत टीका, हस्तामलक, आनन्द लहरी अध्यात्मविषयक ग्रन्थ हैं। जिनकी बुद्धि अध्यात्मविषयक ग्रन्थों में प्रवेश नहीं कर सकती ऐसे पाठकों के लिए भावार्थ रामायण और रुक्मिणी स्वयंवर जैसे रोचक ग्रन्थों को एकनाथ ने तैयार किया है। इन ग्रन्थों में स्थल स्थल पर भिन्न भिन्न प्रसंगों का कवि ने इतना सुन्दर वर्णन किया है कि ग्रन्थ पढ़ते पढ़ते हर्ष, शोक, आनन्द, आश्चर्य, करुणा, प्रसन्नता, गाम्भीर्य आदि वृत्तियों की छाप अन्तःकरण पर पड़े बिना नहीं रहती। रामायण में रामचन्द्र के गुण, स्वभाव, पराक्रम पढ़ते ही यह प्रतीत होता है कि राम नीति, सदाचार, शांति, वात्सल्य, प्रेम, आनन्द और शौर्य की जीती जागती मूर्ति ही हैं। भरत और लक्ष्मण के सम्बन्ध में दिए हुए स्थलों को पढ़िए तो सच्चे बन्धु-प्रेम और प्रीति का चित्र आपके सामने आकर खड़ा हो जाता है। मंथरा और कैकयी का पारस्परिक संभाषण, कैकेयी द्वारा दशरथ की भर्त्सना, भरत को राज्य स्वीकार करने के लिए कहा गया बुद्धिवाद पढ़िए तो प्रतीत होगा कि कुटिलता, कुबुद्धि, मत्सर, द्वेष इत्यादि दुष्ट गुण युक्त राक्षस भी मनुष्य के रूप में संसार में जन्म लेते हैं। वनवास के समय राम और सीता के पारस्परिक प्रेमयुक्त संभाषण, उनकी विरह व्यथा के हृदयबेधक उद्गार और पवित्र आचरण पढ़िए तो बोध होगा कि संसार में नीतिसंपन्न प्रेमपूर्ण दम्पति कैसे सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। एक को जरा-सा कष्ट हो तो दूसरे के प्राण कैसे व्याकुल हो जाते हैं। एकनाथ ने चरित्रविषयक स्थलों को रुचिकर बनाने के लिए भिन्न भिन्न रसों और अलङ्कारों का प्रयोग किया है। नीचे एकनाथ के काव्य के ऐसे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं। यथासंभव तुलसीदास के काव्य से उनकी तुलना भी की जाएगी।

एक समय विश्वामित्र ऋषि राजा दशरथ के पास आए और उन्होंने उनके दोनों पुत्रों को यज्ञ रक्षा के लिए माँगा। राजा दशरथ न मुनि के वचन को टाल सकते हैं और न राम-लक्ष्मण को मुनि के साथ ही भेज सकते हैं। विश्वामित्र के वचन सुन कर राजा के मन में अनेक भाव उत्पन्न होने लगे। उनका शौर्य जाता रहा और सारा शरीर काँपने लगा। सर्प के सिर काँटा चुभने पर अथवा कुण्डलीकार साँप की पूँछ टूटने पर जो दशा सर्प की होती है, अथवा जो दुःख मछली को जल से बाहर होने पर होता है वैसा ही दुःख राजा को राम और लक्ष्मण के वियोग में अनुभव होता था। बन्दर के मुँह के चनों के अथवा सूम के धन के समान राजा दशरथ का मन राम में फँसा हुआ था। सूम अपने प्राणों को छोड़ सकता है परन्तु धन को नहीं छोड़ सकता वही दशा राजा दशरथ की राम के प्रति थी। जिस प्रकार भिखारी अपने टूटे फूटे बरतनों के चोरी जाने पर अत्यन्त दुःखी होता है कारण कि वह बरतनों को अपनी संपत्ति ही समझता है इसी प्रकार दशरथ रामचन्द्र को अपनी अलौकिक संपत्ति समझते थे।

"ऐकोनि ऋषीचें वचन। गजबजलें रायाचें मन॥
वीर्य गेलें हारपोन। कंपायमान सर्वांगीं॥
सर्प कपाळीं कांटा नेहटे। कां साप कुरळीचें पुच्छ तुटे॥
मासा जळावेगळा फुटे। तैसें दुःख नाटे रायासी॥
चणे वानरा गालीचे। कां धन जैसें कृपणाचें॥
भाणें नेलें भणगाचें। तैसें रायाचें मन श्रीरामीं॥"

राजा दशरथ की व्याकुलता के ये पाँच दृष्टान्त कितने उपयुक्त और प्रति दिनके अनुभव और निरीक्षण के हैं। तुलसीदास ने राजा दशरथ की दशा कायों वर्णन किया है:—

"सुनि राजा अति अप्रिय बानी।
हृदय कम्प मुख द्युति कुम्हलानी॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी।
विप्र वचन नहिं करेउ विचारी॥
माँगहु भूमि, धेनु, धन, कोषा।
सर्बस देउँ आजु सह रोषा॥
देह प्राणतें प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देउँ निमिष इक माहीं॥
सुत प्रिय मोहिं प्राण की नाईं।
राम देत नहिं बनें गुसाईं॥"

दोनों कवियों के भावों में कितना साम्य है। कुछ चरण तो ज्यों के त्यों प्रतीत होते हैं उदाहरणार्थ "कम्पायमान सर्वांगीं" और "कम्प मुख द्युति कुम्हलानी।" फिर "गजबजलें रायाचें मन" और गीतावली के "रहे ठग-से नृपति सुनि मुनिवर के बयन" की भी तुलना कीजिए।

ओवी मराठी में एक प्रकार का छंद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप-सौन्दर्य का वर्णन भी एकनाथ ने जगह-जगह किया है। अहल्या कीसुन्दरता का वर्णन कविने यों किया है:—

"ब्रह्मा ने तीनों लोकों की सुन्दरता बटोर कर एक कन्या निर्माण की जो अहल्या नाम से प्रसिद्ध हुई। उसका शरीर ऐसा कोमल और सुकुमार था कि चन्द्रमा की किरणें भी उसे शल्य-सी चुभती थीं। पद्मिनी की कान्ति उसके सामने फीकी पड़ जाती है। उस तन्वंगी का शरीर आकाश सदृश मृदु है। उसके अङ्ग को स्पर्श करते ही मन और इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठती है। उसके अधर पान में अमृत से अधिक मिठास है। उसके मुख को देख कर आँखें प्रफुल्लित होती हैं। उसके मुखसौन्दर्य की शोभा और शरीर की कान्ति के सामने चन्द्रमा म्लानमुख हो जाता है और संन्यासी मूर्च्छित और निरीह हो जाता है। उसके रूप लावण्य को देख कर विवेक जाता रहता है। उसकी अत्यन्त मनोहरता पर आँखें टकटकी बाँधे देखती रहती हैं और धैर्य टूटने लगता है।—"

"त्रैलोक्यींचें बरवेपण।
ब्रह्मयानें येकवटोनी आपण।
स्वयं कन्या केली निर्माण।
अहिल्या जाण तीस नांव ॥१४॥

शरीर अत्यन्त सुकुमार।
खुपों शकती चन्द्रकर।
पद्मगपद्मिणी ती पुढें निबर।
निजांगें अरुवार नभापरिस ॥१५॥

तिचें होतांची स्पर्शन।
मनादि इन्द्रियां गुदगुल्या पूर्ण।
फिकें अमृताचें गोठपण।
तिचें बरवेपण देखोनी ॥१६॥

देखोनि तीचिया मुखासी।
अत्यन्त सुख डोळ्यांसीं।
ते मुखीं झाले क्षेत्र सन्याशी।
आन पहावयासी नावडे ॥१७॥

अत्यन्त सौन्दर्याची शोभा।
चन्द्र लोपे अंगप्रभा।
देंखोनि लावण्याचा गाभा।
विवेकाचा उभा प्राण जाय ॥१८॥

तिसीं होतां डोळे भेटी।
धैर्याची विरे गाठीं।
बरवेपणें अत्यन्त लाठी।
देखल्या दृष्टीउ पडेना ॥१९॥

(बालकाण्ड अ० १४)

शृङ्गार का कैसा मार्मिक वर्णन है? हमारे साधु, स्वभावगत वैराग्यशील होते हुए भी, कवि हृदय रखते हैं और प्रेमी जनों के गूढ़ हृदयगत भावों के पूर्ण परीक्षक हैं। तुलसीदास ने अहल्या की सुन्दरता का वर्णन तो नहीं किया है परन्तु २४ वीं ओवी में जिस अलङ्कार और भाव का वर्णन एकनाथ ने किया है वैसा ही तुलसीदासने सीता की सुन्दरता के सम्बन्ध में प्रदर्शित किया है:—

नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबरि कै।
विधि बिरचे वरुथ विद्युत छटनिके॥
"संग वधु लिए विधु बैनी बधू,
रति को जेहि रंचक रूप दियो है।"

(कवितावली)

यदि एकनाथ के ब्रह्मदेव तीनों लोकों की सुन्दरता को बटोर कर अहल्या का निर्माण करते हैं तो तुलसीदास के ब्रह्मा सीताजी के अङ्ग के उटबन से विद्युत समूह के सौन्दर्य का सृजन करते हैं अथवा सीता के रूप से थोड़ा-सा सौन्दर्य ले कररति को परम सुन्दरीबनाते हैं।

सौन्दर्य वर्णन का दूसरा उदाहरण देखिए। जनकपुरी में स्वयंवर के लिए अनेक राजा सभा मण्डप में आकर बैठे हैं। प्रचण्ड चाप देख कर प्रेक्षकों की छाती दहल उठती है। इतने ही में अलंकृत सीता सखियों के साथ सभा-मण्डप में पधारी। उस समय सीताजी की सुन्दरता का वर्णन एकनाथ ने इसप्रकार किया है :–

"चन्द्रमा पूर्णमासी को ही पूर्ण दिखाई देता है परन्तु सीता का मुख सदा पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभा देता है। चन्द्रमा में राहू का बिम्ब पड़ने से कभी कभी ग्रहण पड़ता है परन्तु सीता के मुख पर सदा राम का बिम्ब रहता है (सीता सदा राम के दर्शन करती रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं)। चन्द्र में कलङ्क होता है परन्तु सीताजी का मुख निष्कलङ्क है। सीताजी के मुख के दर्शन से भक्त जनों के दुःख दूर हो जाते हैं।"

"चन्द्र पौर्णिमेसीच पूर्ण।
मुखचंद्र तो संपूर्ण।
चन्द्रा राहूचें पूर्वी ग्रहण।
येथे नित्य ग्रहण श्रीरामीं ॥१६॥
चन्द्र बिंबास कलंक।
मुखचन्द्र निष्कलंक।
देखतां सीतेचें श्रीमुख।
होती निःदुःख भावार्थी ॥१७॥

कवि सीता के मुख को चन्द्रमा की उपमा देता है परन्तु चन्द्रमा में बहुत से दोष हैं जिनसे जानकी का मुख विमुक्त है अतएव चन्द्रमा के इन दोषों का वर्णन कर सीता जी के मुख की निर्दोषता का वर्णन करता है। तुलसीदास जी भी सीताके मुख को चन्द्रमा की उपमा देने में सकुचाते हैं। वे कहते हैं कि बेचारा चन्द्रमा सीता जी के मुख की बराबरी नहीं कर सकता कारण कि:—

"जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलङ्क।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क॥
घटै बढ़ै बिरहिनि दुखदाई, ग्रसै राहु निज संधिहिं पाई।
कोक शोकप्रद पङ्कज द्रोही, अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही॥

इधर एकनाथ फिर सीता के मुख को चन्द्रमा की उपमा देकर पूर्णोपमा द्वारा सादृश्य स्थापित करते हैं। चन्द्रमा के चारों ओर नक्षत्र होते हैं तो सीता के मुख के चारों ओर सिर और कानों पर मोती के अलङ्कार शोभित हो रहे हैं। सीता के मुख के मस्तक पर राम के प्रेम में रँगे हुए सुरंग कुंकुम का मळवट (कुंकुम का लेप) है।

चन्द्रमा में धब्बे होते हैं सीता के मुखपर कस्तूरी का मळवट लगा है और उसपर कुंकुम की बिंदिया है जो मुख चन्द्र की शोभा बढ़ा रही है। सीता के मस्तक पर लगी हुई मळवट और बिंदिया उसके अखण्ड सुहाग की सूचना दे रही है। जानकी के मस्तक पर लगी हुई चन्द्राकार खौर ऐसी प्रतीत है मानो क्षय रोगी चन्द्रमा जानकी के मस्तक पर जाकर इसलिए चिपक गया है कि वह नीरोग हो जाय।

"चन्द्रीं नक्षत्रें पुढें मागें। तैसीं तानवडें मोतिलगें।
कुंकुम सुरंग राम रंगें। तोचि निजांगें मळवट ॥१८॥
चन्द्र बिंबी काळिमेचा काट, तैसा कस्तूरीचा मळवट।
मुख चन्द्री मिरवे चोखट। त्यावरी बोट कुंकुमाचें ॥२४॥
श्रीराम रंग अति सुरंग। तेणें रंगें रंगले कुंकुम चांग।
अहेव पण तेणें अभंग। निष्ठकीचें अंग शोभवी शोभा ॥२५॥
चन्द्र सदा क्षय रोगी। तेणें व्हावया निरोगी।
जडला जानकीच्या अंगीं। जाला सवेगीं अर्धचन्द्र ॥२६॥"

उधर तुलसीदास सीता की सुन्दरता की उपमा के लिए बहुत से उपमानों की तलाश करते हैं। वे सरस्वती, पार्वती लक्ष्मी और रति किसी को इस योग्य नहीं पाते कारण कि सरस्वती वाचाल, पार्वती अर्द्धांगी और रति के पति शरीररहित हैं और लक्ष्मी को विष और वरुणी अपने दोनों भाई प्रिय हैं। वे ऐसी लक्ष्मी को सीता के लिए उपमा देने में संकोचपूर्वक उद्यत होते हैं जिसको सुन्दरता एवं अमृत के समुद्र से मथकर निकाला जाय। समुद्र मन्थन के लिए परम रूपमय कच्छप को आधार बनाया जाय, श्रृङ्गार रूपी मन्दराचल की रई बनाई जाए। इस रई को शोभारूपी रस्सी में लपेटा जाय और कामदेव स्वयं अपने कर कमलों से इस रस्सी को पकड़ कर मंथन करे।

"गिरा मुखर तनु अर्द्ध भवानी।
रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
विष वारुणी बन्धु प्रिय जेही।
कहिय रमा सम किमि वैदेही॥
जो छवि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छप सोई॥
शोभा रजु मन्दर श्रृंगारू।
मथै पाणि पङ्कज निज मारू॥

यहि विधि उपजै लच्छि जब,
सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सँकोच समेत कवि,
कहहिं सीय समतूल॥

तुलसीदासजी ने सीता का नख-शिख वर्णन नहीं किया है कारण कि वे उन्हें जगत्-जननी समझते थे और जननी के शृंगार वर्णन को अमर्यादित समझा जाता है वे कहते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सिय सोभा नहिं जाय बखानी ।
जगदम्बिका रूप गुण खानी॥"

एकनाथ की १८ वीं ओवी को पढ़ कर व्रज के एक ग्रामगीत का स्मरण आ जाता है । इसमें मोती अथवा मोतियों से जड़े आभूषणों से मुख की ज्योति को जगमगाते हुए बताया गया है । यह ग्रामगीत १८ वीं ओवी के पहले दो चरणों के समझने में पूरक का काम करेगा:—

"पाटी पारि माँग मुक्ताहल, सीस फूल सिर सोहै ।
बेना की छवि कहाँ लौं बरनौं, देखत ही मन मोहै ॥
जुगल करण तरमन जड़ाउ, जगमगत जोति अति राजै ।
नैनन काजर अति छवि लागे, चितवन चितको मोहै ॥"

इसी प्रकार महवट (गळवटी) का भी उल्लेख ग्राम एक गीत में मिलता है:—

"महवट ढुरि माथे पर आई, गोरोचन तिलक लिलार ।
बड़-बड़री बड़ी आँखें बनाकी चितवन मन हर लेइ॥"

१८ वीं ओवी में वर्णित उपमा का प्रयोग सूरदास ने श्रीकृष्ण की सुन्दरता का वर्णन करते हुए बड़ा ही सुन्दर किया है । वे कहते हैं कि श्री कृष्ण के मस्तक पर नीली, सफेद, पीली और लाल रंग के मणि जटित आभूषण ऐसे प्रतीत होते हैं मानों शनि, शुक्र, गुरु और मंगल चन्द्र मुख के साथ साथ शोभा दे हैं:—

नील स्वेत पर पीत लाल मनि, लटकनि भाल सनाई ।
सनि गुरु असुर देव-गुरु मिलि मनु, भौम सहित समुदाई ॥

भावार्थ रामायण में वियोग श्रृङ्गार के बहुत से स्थल हैं । मारीच राक्षस को मार कर जब राम आश्रम को वापिस आते हैं तो कुटी को ख़ाली देखते हैं । जब इधर उधर देखने पर सीता का पता न चला तो यह समझ कर कि धोखा हुआ राम का अन्तःकरण शोक से व्याकुल हो उठा । उनके नेत्रों में आँसू भर आए और दुःख असह्य होने के कारण वे मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े । उस समय के दुःखद प्रसङ्ग का कवि ने जो वर्णन किया है उसे देखिए:—

सीता के विरह में हाय सीता हाय सीता कहते हुए श्री रघुनाथजी अति दुःखी हुए और बेसुध हो गए । वे वन में पागलों की तरह सीता की खोज में घूमने लगे । वे कहीं रुक जाते थे और कहीं वेग से चलने लगते, कहीं रोते और कहीं गिर पड़ते थे । सीता ! सीता ! कह कर बड़े दुःख से राम ने पुकारा, फिर, लक्ष्मण से कहने लगे कि हे सखा ! तुम चुप बैठे क्या देख रहे हो:—

"मूर्छा पन्न मूर्छे आंत ।
हाय हाय सीता म्हणत ।
सीता विरहें श्री रघुनाथ ।
दुःखाभिभूत अति दुःखी ॥८९॥
हा हा सीते हा हा सीते ।
म्हणोनि पाहे सभोंवते ।
न देखोनियां सीतेतें ।
वनीं वनान्तरी परिभ्रमें ॥९०॥
कोठें अडखळें कोठें उडे ।
कोठें रडे कोठें पडे ।
सीता विरहें झाले वेडे ।
पाहे चहूं कडे जानकी ॥९३॥
सीता सीता म्हणोनि देखा ।
अति आक्रोशें मारी हाका ।
लक्ष्मण तूं माझा सखा ।
उगाचि तूं कां पाहतोसी ॥९४॥"

रामचन्द्र जी वृक्षों को देख कर कहने लगे कि हे पर्वतस्थ वृक्ष तुम्हारी दृष्टि दूर तक जाती है इसलिए तुम मेरे हृदय के संदेह को निश्चित ही दूर करने के योग्य हो । लाल लाल नेत्रोंवाली बिम्बोष्ठी सुन्दर नासिकावाली, सुकुमार, पीताम्बरधारी, कमर में रत्नजडित करधनी पहने हुए सीता को क्या तुमने देखा है ?

"पर्वतींचे वृक्ष हो ।
तुम्ही दुरी देखतां पहा हो ।
तरी माझ्या ह्रदयींचा संदेहों ।
निःसंदेहो तुम्ही करा ॥१०१॥
आरक्त नेत्र आरक्त अधर ।
सुन्दर सुनासिक सुकुमार ।
कटि रत्नाढ्य कटि सूत्र ।
पीतांबरधारी जानकी ॥१०४॥"

तुलसीदास जी ने भी इसी स्थल पर विप्रलम्भ श्रृङ्गार का सुन्दर वर्णन किया है । उनके राम भी वन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पक्षियों, मृगों, भौरों से पूछते हैं कि क्या तुमने मृगनयनी सीता को देखा है? इसके बाद तुलसीदास उपमेय को न बताते हुए उपमान द्वारा सीता के प्रत्येक अंग की सुन्दरता का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि हे जानकी, तुम्हारे से आज खंजन, शुक, कपोत, मृग मछली, भौरों के समूह और चतुर कोयल सब प्रसन्न हैं। कुन्द की कली, अनार, बिजली, कमल शरद् ऋतु की पूर्णिमा का चन्द्रमा, नागिन, वरुण पाश, कामदेव का धनुष हंस और सिंह आज अपनी प्रशंसा सुनने के योग्य बने हैं। श्रीफल, सुवर्ण केले के वृक्ष सब प्रसन्न हैं और सब आज निःसंकोच व निःशङ्क हैं मानो हे जानकी, तुम्हारे बिनसा ब को अप्रतिम राज ही मिल गया है। हे सीता! हे सीता! तुम इनके गर्व को क्यों कर सहन करती हो? शीघ्र प्रगट क्यों नहीं होती। श्रीरामचन्द्र जी महाविरही और अतिकामी की भाँति इस प्रकार सीता को ढूँढते फिरते हैं।

"हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम देखी सीता मृगनयनी॥
खंजन शुक कपोत मृग मीना।
मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुन्द कली दाड़िम सुदामिनी।
कमल शरद शशि उरग गामिनी॥
वरुण पाश मनोज धनु हंसा।
जन के हरि निज सुनत प्रशंसा॥
श्री फल कनक कदल हरषाहीं।
नेकु न शङ्क सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू।
किमि सहि जात अनख तोहिं पाहीं॥
यहि विधि बिलपति खोजत स्वामी।
मनो महा विरही अति कामी॥"

इसके पश्चात् विरह में व्याकुल रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहते हैं:—हे सौमित्र, सीता के वियोग में दुःखी मेरे प्राण अब निकलना चाहते हैं। मेरा मरण अब निश्चित है। जल्दी से चिता तैयार करो। वे सीता सीता पुकारते हुए कभी इधर दौड़ते हैं, कभी उधर। रामचन्द्र इस उन्मत्त अवस्था में वृक्षों को अपनी प्रिय स्त्री समझने लगते हैं। बेलों और लताओं को छाती से लगा लेते हैं। पत्थरों को भी सीता समझकर चूमने लगते हैं। कभी दौड़ कर तिनकों को अपने हृदय से लगा लेते हैं और तृणों को ही सीता समझ लेते हैं। कभी लक्ष्मण से कहने लगते हैं कि तू ही मेरी सीता है। श्री रामचन्द्र जी अपने भ्रम में प्रत्येक वस्तु में सीता के ही दर्शन करते हैं:—

सीता वियोगें विरह जाण। माझा निघों पाहे प्राण।
सौमित्रा वेगीं रची सरण, अलोट मरण मज आलें॥२०॥
ऐसें बोलतां बोलत, सर्वेचि धांवे म्हणे सीता।
वृक्षासी म्हणें माझी कांता, गुल्मलता आलिंगी॥२१॥
सीता म्हणोनियां जाण, श्रीराम चुंबी पाषाण।
धांवोनि हृदयीं धरी तृण, सीता सम्पूर्ण हे माझी॥२२॥
लक्ष्मणासी म्हणे तूं सीता, तूंचि माझी निज कांता।
ऐशी सीतेची अवस्था, श्री रघुनाथा निजभ्रांती॥२३॥
(अरण्य काण्ड अ० १९)

१०१ और १०४ ओवियों को पढ़ कर उत्तर-राम-चरित मानस' में "उन्मत्त राघव" का वर्णन हमारे सामने आ खड़ा होता है:—

"रे वृक्षा पर्वतस्था, गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघ्ना बद्धनागेन्द्रकांची
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान् केन दृष्टा

वियोग शृङ्गार का कितना उत्कृष्ट वर्णन है। कितनी हृदयवेधन शैली है। दुख का कैसा आवेग है कि मानव उन्मत्त हो जाता है। अपने प्रिय के वियोग में जो मानसिक दशा होती है उसका कैसा मनोवैज्ञानिक चित्रण है कि चेतन आचेतन के बन्धन टूट जाते हैं। वियोगी जड़ चेतन सर्वत्र अपनी प्रेयसी के दर्शन करता है।

जगमोहनलाल चतुर्वेदी
बी. एस सी., बी. टी.

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाहिक उपन्यास

रज़ाकार

(५)

प्रातःकाल माँ जल्दी ही उठ गई। उसने शंकर को जगाया नहीं। वह काम में जुट गई। पूरा घर झाड़ा बुहारा और स्नान आदि से निवृत्त होगई। उसने शंकर के लिए गरम पानी किया, बीच-बीच में वह देखती जाती थी कि शङ्कर कब उठता है। अमावस का दिन था। उसने आँगन और देहली पर गोबर का छिड़काव किया और स्वयं मोग्गु डालने लगी। उसने आटे की सफ़ेद सीधी पंक्तियाँ अंकित की थीं कि शङ्कर के जागने की आहट आई। वह अन्दर नहीं गई और मोग्गू डालती रही। माँ मोग्गू डालने में बड़ी अभ्यस्त है। विवाह-शादियों में और बतकम्मा के दिनों में अड़ोस-पड़ोस की औरतें उसे मोग्गू डालने के लिए निमंत्रित करती रही हैं। लड़कियाँ माँ से मोग्गू डालना सीखती हैं। माँ प्रायः अठ-दस मिनट में यह काम पूरा कर लेती थी, किन्तु आज उसे इसी काम में आधे घंटे से अधिक समय लग गया।

उसने आटे की पंक्तियों के बाद रोली और उसके बाद हल्दी की तिहरी रेखाओं में अष्टदली दो फूल बनाए और उनके बीचों बीच फिर तीनों रंगों की छोटी कुंडली बनाई। यह काम अन्दाज़ से हुआ था किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो रेखागणित का अभ्यस्त व्यक्ति अपने कम्पास से भी इतनी गोलाई का चक्र शायद ही डाल सकता। फिर माँ बड़ी बारीकी से उस अष्टदल को संवारने लगी। दिन निकल आया था किन्तु बादलों में सूरज छिपा हुआ था। इसलिए समय का ठीक ठीक अन्दाजा नहीं लग रहा था।

जब शंकर के स्नान करने की आहट आई तो माँ चूल्हे के पास गई और झटपट उपमा तैयार करने लगी। आँच तेज़ थी। उपमा बनते देर क्या लगती? सुनते हैं प्राचीन काल में जब सिपाही लाम पर होते तो उनको खाने के लिए हलवा दिया जाता था। हलवा सबसे जल्दी बननेवाला किन्तु शक्तिदायक आहार है। दक्षिण भारत में उस हलवे का नमकीन रूप ही उपमा है जो अपनी स्वादिष्टता में शायद अनुपम ही कहा जा सकता है।

ज्यों ही शंकर कपड़े पहन कर बाहर निकला माँ ने कहा लो कुछ उपमा बनाया है। खा लो, भूख लगी होगी।"

"उपमा के साथ चटनी भी है?" शंकर ने बैठते हुए पूछा।

"उपमा बने और उसके साथ चटनी न हो, यह बात तो ऐसी ही हुई जैसे बिना साग के रोटी परोसी जाए।" माँ ने हँसते हुए उत्तर दिया।

शंकर उपमा खाने लगा और माँ उसकी ओर देखने लगी। न माँ कुछ कह रह थी और न शङ्कर कुछ बोल रहा था। वह स्तब्धता दोनों को अखर रही थी किन्तु दोनों उसे भंग करने का प्रयत्न नहीं कर रहे थे।

अन्त में माँ ने कहा—"अब तो मैं यहाँ किसी हालत में नहीं रहूँगी। जो कुछ हो गया है, काफ़ी है। मुझे मरना नहीं है।"

शंकर ने गम्भीरता से कहा—"नहीं माँ, सवाल यह नहीं है कि यहाँ से घर छोड़ दें तो कष्ट समाप्त हो जाएगा। यदि हम दूसरी जगह जा कर रहते हैं तो वहाँ भी उपद्रवी उपद्रव कर सकते हैं। क्या तू समझती है, लोग सुलतान बाज़ार में नहीं पहुँच सकते?

"मैं कहाँ कहती हूँ, नहीं पहुँच सकते। पर कुछ अन्तर है। और फिर क्या हैदराबाद में ही हमें मरना है!"

हाँ मरना तो यही है माँ। जब यहाँ पैदा हुए हैं तो यहीं मरेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ना बेटा, ऐसी बात मुँह से भी नहीं निकालनी चाहिए। प्राण प्यारे हैं, स्थान नहीं। जहाँ प्राण बचें वहीं चले चलेंगे। न मिलेगा काम एक दो ज़ेवर हैं, बेच कर खा लेंगे। जान है तो जहान है।"

"ये ज़ेवर कितने दिन के? यह लड़ाई पता नहीं कितने दिन खिंचे। काम चलेगा।"

"काम कैसे चलेगा। मैं मेहनत, मजदूरी करूँगी। दो पेट चलाना मुश्किल नहीं है। मैं पत्तल बना कर बेचूँ तो शाम तक एक रुपया कमाऊँ और बीड़ी बनाने का काम मिल गया तो डेढ़ रुपया रोज़ कहीं नहीं गया। तू चिन्ता मत कर बेटे।"

"नहीं माँ, मैं नहीं चलूँगा। बता ये लाखों आदमी क्या करेंगे? जो लाखों के साथ होगा सो हमारे साथ भी सही। हमारे प्राण ज्यादा कीमती नहीं हैं। मैंने तो तय कर लिया है मरेंगे सबके साथ और जिएँगे भी सबके साथ।"

बात समाप्त करते करते शङ्कर ने पानी पिया और हाथ धो कर खड़ा हो गया।

"नहीं यह नहीं होगा। तुमको यह मुहल्ला छोड़ना ही पड़ेगा। मैं यहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहती।"

माँ के स्वर में क्रोध नहीं था किन्तु दृढ़ता थी।

शंकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बाहर चला गया। माँ ने उसे रोका नहीं।

माँ कभी अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए जिद नहीं करती थी और शङ्कर जब जो चाहता करता। शङ्कर की किसी इच्छा का विरोध उसने नहीं किया। माँ का स्वभाव ही ऐसा था कि वह चुपचाप दूसरों की इच्छा पूरी करती रहती और किसी को कुछ भी नहीं कहती। किन्तु जब आज उसने अपनी इच्छा दृढ़ता के साथ प्रकट की तो शङ्कर उसका अर्थ अच्छी तरह समझ गया। वह इच्छा पूरी ही होगी, इसमें उसे कोई संदेह नहीं रह गया।

शंकर साइकल ले कर पाठशाला के लिए चल दिया। चलते समय उसने कह दिया आज मैं भोजन नहीं करूँगा। दोपहर की छुट्टी में एक मित्र के साथ भोजन कर लूँगा।

शालीबण्डा से चार मीनार तक आने में साइकल पर विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। कहीं पाँव मारने की जरूरत नहीं पड़ती। पाँच मिनट में वह पहुँच गया। साइकल अपने आप आगे बढ़ रही थी और इधर मस्तिष्क में कई विचार चक्कर मार रहे थे। वह क्या करे? कुछ करे भी या चुप बैठा रहे? आँखों के आगे जब इस तरह के अत्याचार हो रहे है तो क्या वह आँखें बन्द कर ले? यदि आँखें बन्द कर ली जाएँ या शङ्कर इस नगर से चला जाए तो क्या अत्याचार बन्द हो जाएँगे? नहीं बन्द होंगे तो उसके जाने से क्या लाभ? यदि जाने से लाभ नहीं तो सहने से क्या लाभ होगा? एक ओर जो अत्याचार और उद्दण्डता बढ़ रही है उसका क्या अर्थ है? और दूसरी ओर लाखों आदमियों में जो निराशा फैल रही है उसका क्या कारण है?

जब से नवाखाली में दंगा हुआ तब से यहाँ का वातावरण बहुत गंभीर बना हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति सशंक दिखाई देता है। सबके चेहरों पर प्रश्नवाचक चिह्न दिखाई देते हैं। एक संस्था ऐसी है जिस की ओर से प्रत्येक मुहल्ले में गुप्त सभाएँ होती हैं। इस सभा के नेता इस बात पर ज़ोर देते हैं कि जितना हो सके शस्त्र जमा किए जाएँ। प्रयत्न किया जा रहा है कि जनता के लिए पिस्तौल और बन्दूकें मुहय्या की जाएँ। कुछ दो चार आदमियों ने मिल कर कहीं बम बनाने का काम शुरू किया है, जो समय पड़ने पर लोगों को बाँट दिए जाएँगे।

इस प्रकार के प्रयत्नों के बारे में शङ्कर को काफ़ी पता था। वह अच्छी तरह जानता था कि कौन लोग इन प्रयत्नों के पीछे हैं।

अभी उसी दिन इस संस्था के एक आदमी ने शङ्कर के मित्र को सात सौ रुपए में एक पिस्तौल दिखाई थी। पिस्तौल का मालिक कोई अरब था। इस प्रकार के जो शस्त्र बेचे जा रहे थे उन सब के मालिक मुसलमान ही थे। शङ्कर को यह सुन कर आश्चर्य होता था कि जिन मुसलमानों विरुद्ध यह तैयारी चल रही है वे मुसलमान ही शस्त्र बेच रहे हैं। किन्तु यह एक वास्तविक घटना है। बीच के दलाल हिन्दू ही थे और बड़ी संस्था के प्रतिनिधि बनने का उसका दावा था। शङ्कर का मित्र जब सात सौ रुपए की पिस्तौल ख़रीद कर लाया तो बहुत सन्तुष्ट था। उसे विश्वास था कि अब कोई भी उसके घर को तिरछी नजर से नहीं देख सकता। जब कभी वह कोई बात सुनता तो उस पिस्तौल को छाती से लगा लेता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आइने के सामने खड़ा हो कर कल्पना करता कि यदि उसके घर पर कभी हमला हुआ तो वह इस तरह निशाना साधेगा।

किन्तु उसे निराश होना पड़ा अब वह फ़लकनुमा से कुछ दूर जङ्गल में निशाना साधने के लिए गया। मित्र ने लाख कोशिश की किन्तु गोली नहीं छूटी। अनुभव हुआ घोड़ा ठीक तरह से काम नहीं कर रहा है। लोहे के टुकड़ों को जोड़कर पिस्तौल का रूप दिया जा रहा है और उसके रुपए वसूल किए जा रहे हैं। दलाल देशभक्ति के साथ हज़ारों रुपए कमा रहे हैं और चाउसों के घर में पैसा जा रहा है।

जब मित्र ने शङ्कर को अपनी विफलता की कहानी सुनाई तो शङ्कर केवल मुस्करा कर रह गया। उसने मित्र को कहा कि इस प्रकार की पिस्तौलों से क्या होने वाला है। यह लड़ाई है जनता और राज्य की। जहाँ पुलिस और फ़ौज सभी जनता को कुचलने पर उतारू हों वहाँ इस तरह की तैयारी काम नहीं देती, किन्तु कुछ स्वार्थी ऐसी भी हैं जो इस प्रकार कि स्थिति से भी पैसा कमाने की बात सोच सकते हैं।

इस तरह के बहुत-से युवकों के साथ भी शंकर का परिचय हुआ जो कुछ कर गुज़रना चाहते थे किन्तु उनमें कुल लोग बहुत ही निकम्मे से भी लगे। एक दिन एक गोरे से लड़के ने पाठशाला में आकर बड़े विनय से शंकर को प्रणाम किया और कहा—"हम लोगों को एक ऐसा लुहार मिला है जो इंग्लिश पिस्तौल की तरह नौ कारतूस का तमंचा बना देता है। केवल नमूना भर चाहिए। सुनते हैं नमूना आपके पास है। बस रात भर के लिए आप अपना रिवाल्वर दे दें।

एक दूसरे आदमी ने आकर कहा "पता चला है और तीन सौ तीन नम्बर की बन्दूकें बेच रहे हैं। एक बन्दूक मुझे भी दे दीजिए, चाहे जो दाम ले लीजिए।"

शंकर को समझते देर न लगी कि ये दोनों आदमी कौन हैं और इनका उद्देश्य क्या है। एक आदमी तो दस बारह बार शंकर के घर आया और उसके बार बार ना कहने पर भी वह रिवाल्वर ख़रीदने आता था।

उन दिनों रिवाल्वर और स्टेन गन और मशीन गन तक बात चलती थी। मामूली आदमी बम बनाने की बात करते थे। इस प्रकार के लोगों में कुछ ईमानदार लोग भी थे। सरकार इन लोगों के बारे में बड़ी सतर्क थी और उसके गुप्तचर इस बात की थाह लगाते रहते थे कि किस के पास क्या शस्त्र हैं। वे लोग कभी ग्राहक बनते थे और कभी बेचनेवाले। कभी कभी तो यह भी देखा गया कि किसी ने किसी को कोई हथियार बेचा और बेचते ही पुलिस को सूचना भी कर दी।

इस प्रकार के दलों के बारे में सरकार की सतर्कता बढ़ गई। उसने इन गुप्त आन्दोलनों को नष्ट करने की योजना बना ली थी किन्तु जो लोग शस्त्रास्त्र बेचकर लोगों को ठग रहे थे उनके विरुद्ध वह कुछ करना नहीं चाहती थी। कुछ लोग इन प्रयत्नों को देशभक्ति का बहुत बड़ा साधन समझते थे किन्तु शंकर इन प्रयत्नों से घृणा करता था। शंकर पूरे रास्ते इन्हीं सब घटनाओं को सोचता जा रहा था। एक एक करके उसके दिमाग़ में सारी घटनाएँ चक्कर लगा रही थीं। जहाँ तक मध्यवर्ग या पैसे वालों का सवाल था वे लोग इस चक्कर में पड़े थे। कहीं कहीं इस काम के लिए चन्दा भी हुआ। एक मुहल्ले में तो यह भी तय हो गया कि कुछ पहरेदार रक्खे जाएँ जो रात दिन मुहल्ले का पहरा देंगे।

कुछ मुहल्लों में ज़रा गम्भीरता से काम हो रहा था। शंकर के तीन चार मित्र इस मुहल्ले में रहते थे। इस मुहल्ले में लोगों ने एक मुहल्ला-समिति बनाई। इस समिति की ओर से कुछ दवाएँ ख़रीदी गईं। दुमंज़िले मकान पर घण्टा बाँधा गया। मुहल्ले के महत्वपूर्ण मकानों पर रात रात भर पहरा देने की व्यवस्था की गई। पहरा देने वाले वैतनिक नहीं थे, सम्पन्न परिवार के व्यक्ति भी बारी बारी से पहरा देते थे। ये मकान ऐसे टुकड़ों पर थे जहाँ से हो कर कोई व्यक्ति बस्ती में घुस सकता था। आने जाने वालों पर नज़र रक्खी जाती थी। एक नुक्कड़ से दूसरे नुक्कड़ पर टार्च से प्रकाश फेंका जाता, और सब कुछ ठीक है का संकेत दिया जाता। शंकर ने इस प्रयोग को स्वयं आँखों से देखा और वह प्रभावित हुआ था। बस्ती का यह संगठन केवल सुरक्षात्मक कार्यवाहियों के लिए ही नहीं था वह आपसी सम्बन्धों को भी दृढ़कर रहा था। यदि बस्ती का कोई मुहल्लेवाला आदमी मरता तो प्रत्येक घर से एक व्यक्ति उसके शव के साथ जाता था। आवश्यक सामान पंचायत की तरफ़ से ख़रीदे गए जो सबके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम आते थे । थर्मामीटर और ज़रूरी सामान हर समय सब के लिए प्रस्तुत रहता था ।

पूर्णिमा के दिन घण्टा बजता और पाँच मिनट बाद ही सत्यनारायण की कथा प्रारम्भ होती। पाँच मिनट में बस्ती के सभी नर-नारी जमा हो जाते । ये श्रोता मनमाने ढंग से नहीं बैठ सकते थे। एक के बाद एक क़तार में बैठ कर कथा सुनते और प्रसाद पाते । इस तरह उस बस्ती के आदमियों में बहुत अनुशासन और पारस्परिक प्रेम की वृद्धि होती जा रही थी। पूरा मुहल्ला एक परिवार बन चुका था। इस मुहल्ले के संगठन में जिन लोगों ने भाग लिया था उनके प्रति शंकर की बड़ी श्रद्धा थी। वह अपने मित्रों के पास प्रायः जाया करता था और बस्ती-पंचायत के बारे में पूछा करता था। उसकी इच्छा थी कि इसी तरह की पंचायत वह अपने बस्ती में खोले और हर बस्ती में ऐसी पंचायतें हों। चाहे लोग अपनी रक्षा न कर सकें। लेकिन दुःख के समय में वे अपने को अकेला तो नहीं अनुभव करेंगे ।

एक दिन शंकर अपने मित्र के पास संध्या को गया तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा । उस दिन रात में मूसलधार वर्षा हुई थी । वैसी वर्षा हैदराबाद में पच्चीस-तीस वर्ष से नहीं हुई थी । वर्षा से पहले लगभग घण्टा भर तक भयानक तूफ़ान आया था । उस तूफ़ान में आदमी का चलना भी असंभव हो गया था । बस्ती में लगभग डेढ़ सौ हरिजनों की झोंपड़ियाँ थीं । ये विचारे रात भर अपनी झोपड़ियों को बचाने की कोशिश करते रहे किन्तु पूरे टाट हवा में उड़ गये और वर्षा के पानी में खाना-दाना भी गया। छोटे-छोटे बच्चे और औरतें पानी में, भीगे, कीचड़ में, खुले आसमान के नीचे बैठे थे जब कि बस्ती का घण्टा बजा और उस बरसते पानी में पंचायत के अधिकारी हरिजनों की झोंपड़ियों में पहुँचे और उन सब को एक मकान में ले आए । पूरा मकान ख़ाली कर दिया गया । देखते देखते उनका सामान उस मकान में लाया गया । राशन का युग दो सौ से अधिक लोगों के भोजन की व्यवस्था ! किन्तु व्यवस्था में एक घंटा भी नहीं लगा । प्रत्येक परिवार ने उस दिन उपवास किया और दिन भर का भोजन इन हरिजनों के लिए भेज दिया गया। उस समय यह गरम गरम भोजन उनके लिए अमृत से कम न था और फिर वह भोजन दो तीन घंटो में ही उन सब में बाँट दिया गया। घरवाले समझते थे ये उन्हींके परिवार के हैं। वे जहाँ चाहते घूम फिर सकते थे, । एक दूसरे पर इतना विश्वास था । जिस समय शंकर उस मुहल्ले में पहुंचा उसका मित्र इन हरिजनों को भोजन परोसने में लगा था । दो सौ आदमी वहाँ एक साथ भोजन कर रहे थे और उनको परोसने का काम अच्छे परिवार की महिलाएँ कर रहीं थी । भोजन भी उन्होंने ही बनाया था । नन्हे नन्हे बच्चे भी भोजन में जुटे थे, कहीं कोई शब्द नहीं था, इस भोज को देख कर शंकर का हृदय हर्ष से भर गया और जैसे उससे किसी ने कहा जो लोग इतनी एकता और प्रेम के साथ रहना जानते हैं उन्हें कोई कष्ट नहीं दे सकता ।

फिर शंकर के ध्यान में एक डाक्टर की बात आई। डाक्टर हैदराबाद में प्रसिद्ध था । उसने काफ़ी पैसा कमाया था । एक दिन की दवा के पाँच रुपये से कम नहीं लेता था और इस तरह उसने लाखों रुपये कमा लिये थे किन्तु इस युग में उसे भी देश सेवा की धुन समाई उसने कुछ आदमियों और विद्यार्थियों को अपने घर बुलाया । इन में शंकर भी था । प्रास्ताविक भाषण के बाद कहा--"हो सकता है जल्दी ही यहाँ हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो । ऐसे समय में बहुत से लोग घायल होंगे । उनकी दवा दारू का काम हमें ही करना पड़ेगा । इसी चिन्ता में मुझे नींद नहीं आती । मुझे एक संस्था ने पाँच सौ रुपए दिए हैं । मैंने इन रुपयों से कुछ पट्टियाँ और टिंचर आदि दवाएँ ख़रीदी हैं । आप लोग जहाँ घायलों को पाएँ मेरे बँगले पर ले आइये । मैं बिना किसी फ़ीस के उनके घाव धो दूँगा और पट्टी बांध दूंगा । समय बड़ा भयानक है । हम सब को सेवा में जुट जाना चाहिए । मैं तो देखिए जनता के लिए अपनी सेवाएँ समर्पित करने के लिए तैयार हूँ । "

इस भाषण को सुन कर कुछ लोगों ने तालियाँ बजाईं और कुछ ने डाक्टर की उदारता को सराहा, किन्तु शङ्कर बाहर आकर थोड़ी देर तक खिलखिला कर हँसता रहा था ।

[क्रमशः]

—श्रीराम शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-चर्चा

[श्री वंशीधर विद्यालङ्कार के नाम एक पत्र]

टीकम गढ़

विन्ध्य प्रदेश

प्रियवर,

हैदराबाद के कई सज्जनों का वर्षों से यह आग्रह रहा है कि एक बार मैं उधर की यात्रा करूँ। बन्धुवर बंकटलालजी ने तो एक बार मार्ग व्यय भी भेज दिया था! आप और श्री लक्ष्मीनारायण जी गुप्त की इस प्रकार की आज्ञा मुझे मिल चुकी है। बन्धुवर रंजन जी तो मुझे हैदराबाद में ही बसाना चाहते थे! इसके पूर्व श्री वाघ्रे द्वारा भी निमन्त्रण मिला था। सम्मेलन के अवसर पर तो ऐसे सामूहिक आदेश मिले कि रेल की यात्रा कष्टप्रद हो तो मैं हवाई जहाज से आऊँ! इस प्रकार के अपव्यय की कल्पना भी मेरे दिमाग़ में नहीं आ सकती। फिर भी मैं हैदराबांद नहीं पहुँच सका, यद्यपि कभी न कभी वहाँ पहुँचने की इच्छा मेरे हृदय में अब भी विद्यमान है।

एक बात प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देने की जरूरत है। मैं किसी संस्था का संचालक नहीं हूँ जो अर्थ संचय के लिए जगह जगह घूमता फिरूँ और न मैं कोई 'लीडर' ही हूँ जिसे अपने अनुयायियों के भरण पोषण की चिन्ता हो। कलम का मजदूर हूँ और वही रहना चाहता हूँ। इसलिए कोई भी आर्थिक प्रलोभन मुझे यात्रा के लिये उत्साहित नहीं कर सकता।

हाँ, यदि हैदराबाद के हिन्दी प्रेमी सज्जन किसी विशेष साहित्यिक यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हों और उसके लिये मेरी सेवाएँ आवश्यक समझी जाएँ तो अपनी सुविधानुसार कभी हफ्ते दो हफ्ते के लिए आ सकता हूँ।

'अजन्ता' का प्रकाशन स्वयं एक यज्ञ है। सहस्त्रों व्यक्तियों को सात्विक मानसिक भोजन देने का जो महत्व है, उससे कौन इनकार कर सकता है?

खेद इस बात का है कि जो महानुभाव ऐसे यज्ञों को प्रारम्भ करते हैं वे इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि पत्रों की भी एक 'आत्मा' होती है—हमारा अभिप्राय उनकी अन्तर्निहित शक्ति से है, जो धीरे धीरे ही विकसित हो सकती है। पत्र सम्पादक का कार्य जनतन्त्र के युग में तो और भी महत्वपूर्ण हो गया है। पर पत्र संचालकों ने अभी तक इस महत्त्व को नहीं समझा। डाक्टर लोग पाँच छै वर्ष पढ़ने के बाद डाक्टरी करते हैं। इंजीनियरों को भी कई साल तक विधिवत् अध्ययन करना पड़ता है। एकाउंटेण्ट भी कहीं न कहीं शिक्षा पाते हैं, पर सम्पादकों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं! बन्धुवर हरिशङ्कर जी शर्मा एक क़िस्सा सुनाया करते हैं। एक बार उनके एक सुपरिचित मित्र अपने लड़के को लेकर उनकी सेवा में उपस्थित हुए और बोलेः—

"पंडितजी जा लरिका कूँ हमने सब काम कराइ छोड़े, पर सबन्न में जि फेल भयौ। अब आप जाकूँ सम्पादक बनाइ देउ।"

उन महानुभाव ने वह प्रस्ताव मजाक में नहीं, बिलकुल गम्भीरतापूर्वक किया था। बड़ी मुश्किल से हरिशङ्कर जी अपनी हँसी रोक सके और जैसे तैसे समझा बुझा कर उन्होंने अपने मित्र को विदा किया! इस प्रकार हिन्दी जगत् एक भावी सम्पादक की सेवाओं से वंचित हो गया!

भाई हरिशङ्करजी के उपर्युक्त मित्र पत्र सम्पादन-कला के विषय में जितने अनभिज्ञ थे उतने ही अनभिज्ञ अधिकांश हिंदी के पत्र संचालक प्रतीत होते हैं। किसी पत्र के व्यक्तित्व का निर्माण करना उन्होंने हँसी खेल समझ रक्खा है! पत्र सम्पादन स्वयं एक यज्ञ है उसके लिये सबसे अधिक आवश्यक है सुयोग्य याज्ञिकों के समूह को एकत्रित करना। आधुनिक भाषा से आप उसे 'ग्रुप' का निर्माण कह सकते हैं। 'ग्रुप' और 'गुट' में मैं भेद करता हूँ। गुटबन्दी तो निम्न कोटि के स्वार्थों की दृष्टि से की जाती है और उसके पीछे जो भावना रहती है वह भी कोई उच्चकोटि की नहीं। मेरा अभिप्राय समानशील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों के संग्रह से है। इस संग्रह के बिना कोई भी अच्छा पत्र चल नहीं सकता। पर जिनमें स्वयं कोई विशेष योग्यता नहीं, जिनके जीवन का कोई आदर्श नहीं वे अपने चारों ओर आदर्शवादी लेखकों को इकट्ठा कर कैसे सकते हैं? और प्रधान सम्पादक के लिये सबसे अधिक जरूरी चीज़ है विस्तृत अवकाश और आकाश भी। 'पीर, बवर्ची और भिश्ती, ख़रों' से आप चाहे कोई अन्य काम भले ही करा लें, सम्पादन कार्य नहीं करा सकते। दो दो तीन तीन काम साथ साथ करने का युग कभी का लद चुका। जिसे किसी पत्र का सम्पादन करना हो, उसे तो सोते-जागते उसीकी चिन्ता होनी चाहिए। पत्र सम्पादक थे स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्याय, जो ७५ वर्ष की उम्र में भी दस दस बारह बारह घंटे श्रम कर लेते थे और जिन्होंने पूरे बीस वर्ष अपने को बिलकुल कोठरी में बन्द कर लिया था—"प्रवासी" तथा माडर्न रिव्यू के लिए क्षेत्र संन्यास-सा ले लिया था। १९०७ से १९२६ तक उन्होंने जो महान् साधना की उसके परिणामस्वरूप माडर्न रिव्यू की गणना संसार के सर्वोत्तम पत्रों में होने लगी और स्वयं उन्हें लीग आफ़ नेशन्स ने निमंत्रण दिया।

और उन्हीं की कोटि के दूसरे पत्र सम्पादक थे चिन्तामणि जी, जिन्होंने मरने के दिन तक अग्रलेख लिखाया। पूज्य पं. महावीर प्रसाद जी द्विवेदी तथा अमर शहीद गणेश शङ्कर जी विद्यार्थी की असाधारण परिश्रमशीलता से हिन्दी जगत् भली भाँति परिचित ही है।

आज किसी पत्र के विधिवत् संचालन के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है वे हिन्दी जगत् में तो प्रायः अप्राप्य हैं। किसी हिन्दी पत्र के कार्यालय में कोष भी नहीं है, अन्य संदर्भ ग्रन्थों (Reference Books) की बात तो रही दूर! कटिङ्ग रख कर रिफ़रेंन्स की जिल्दें तैयार करने की प्रथा का तो हमारे यहाँ अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है! अलल टप्पू ढंग पर चाहे जो व्यक्ति, जिसके पास पाँच सात हज़ार रुपए खोने के लिए होता है, पत्र संचालन का कार्य प्रारम्भ कर देता है! और फिर साल डेढ़ साल में अपने रुपए खो कर बैठ जाता है! और दोष जनता के सिर मढ़ता है।

भारतवर्ष में संतान निग्रह की जरूरत चाहे हो या न हो, पर पत्र जन्म निग्रह की आवश्यकता अवश्य है। नवीन पत्रों के जन्म पर आशीर्वाद या अभिनन्दन अथवा सद्भावना भेजते समय हम निजी तौर पर यह लिख देते हैं कि बेहतर यही होता कि आप मौजूदा अखबारों से ही काम लेते, यद्यपि इस प्रकार के परामर्श के भोंडेपन को हम भली भाँति समझते हैं।

'अजन्ता' के साधनों के विषय में हमें कुछ भी पता नहीं। हम यह भी नहीं जानते कि वह कितनी रकम प्रति मास लेखकों पर खर्च कर सकती है। हिन्दी के लिये उधर की ओर क्षेत्र कैसा है, इसका अनुमान हम यहाँ बैठे बैठे नहीं लगा सकते।

यदि हैदराबाद वालों के पास साधन हों तो उन्हें अजन्ता के साथ साथ एक बढ़िया ग्रन्थ माला और ट्रैक्ट माला का भी प्रकाशन करना चाहिये।

अन्य प्रान्तीय भाषाओं की सेवा करके ही हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद को सुशोभित कर सकती है। यदि हिन्दी वालों में Superiority Complex या बड़प्पन की भावना आ गई तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा। जिस क्षेत्र में हम लोग रह रहे हों उस क्षेत्र की भाषा अथवा भाषाओं को ही प्रमुख स्थान देने की जरूरत है। उर्दू के विषय में भी हमारा दृष्टिकोण व्यापक तथा स्वस्थ होना चाहिये। कौन कहता है कि नज़ीर की कविता हिन्दी कविता नहीं है? अपने इस विश्वास को मैं फिर से दुहरा देना चाहता हूँ कि उर्दू पढ़े बिना अच्छी मुहावरेदार हिन्दी लिखना उतना ही कठिन है, जितना हिन्दी जाने बिना ज़ोरदार उर्दू। उर्दू को हिन्दी की एक शैली के रूप में ग्रहण करने की जरूरत है।

अन्त में एक बात और। आज इस देश में राजनीति को ही प्रथम स्थान दिया जाता है। भिन्न भिन्न दलों के राजनैतिक नेताओं के उछलकूदों या लंगूरीयोगों के समाचार सुनते सुनते कान पक जाते हैं साहित्य संगीत कला इत्यादि को कौन भला पूछता है?

इस विनाशकारी क्रम को बदलना है। राजनीति को हम महत्त्वपूर्ण मानते हैं, पर वही सब कुछ नहीं है।

विलायत के "टाइम्स" के साप्ताहिक साहित्यिक क्रोड़ पत्र को हम बराबर पढ़ते रहते हैं और "जॉन ओ लन्दन वीक्ली" को भी। और जब जब ये पत्र आते हैं हमें हिन्दी की हीनता का अनुभव होने लगता है।

माधुरी और सुधा जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं का बन्द हो जाना क्या सांस्कृतिक दुर्घटना नहीं है? और ज़रा ग़ौर कीजिये उस छीछालेदर पर जो पिछले दिनों हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हुई हैं! प्रान्तीय भाषा भाषियों के सम्मुख हम लोगों के उज्ज्वल मुख पर कैसी गहरी कालिमा पोती गई है ?

साहित्य क्षेत्र में Power Politics (सत्तात्मक राजनीति) का प्रवेश करना वैसा ही है जैसा कटोरा भरे शुद्ध दूध में संखिया डाल देना।

अब वक्त आ गया है कि साहित्यिक बन्धु अपने स्वरूप को पहचानें और अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को Assert करें। (एसर्ट का हिन्दी अनुवाद आपही कर लीजिये और इस अंग्रेजी की गुलामी के लिये मुझे मुआफ़ कीजिये)

क्या कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं हो सकता कि प्रति पक्ष हम लोग पत्र व्यवहार द्वारा ही सही भिन्न भिन्न विषयों पर विचार परिवर्तन ही कर लें ? इस ख़त को जो आपकी खिदमत में जा रहा है, मैं अपने अन्य साथियों को भी भेजना चाहता हूँ, पर क्या यह कोई आसान काम है ?

विलायत के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ कर्तिस साहब, जो राउण्ड टेबिल ग्रुप के एक प्रमुख सदस्य थे, अपने पत्रों को साइक्लोस्टाइल कराके जगह जगह भेजते थे। उन्हीं का एक पत्र मि. पोलक के हाथ लग गया था और उसका बड़े मार्के का भण्डाफोड़ भी हुआ था ! चूँकि हम लोग कोई साहित्यिक षड्यन्त्र नहीं कर रहे, इसलिए इस प्रकार के पत्र व्यवहार को छपाने से किसी का कुछ अहित नहीं हो सकता। हमने अपने एक सम्पादक मित्र को लिखा कि आप प्रति मास छै पृष्ठों को साहित्यिक नोट्स के लिये रिजर्व कर दीजिये और उसके एक हज़ार रिप्रिंट्स छाप दीजिये। हमारा ख़याल है कि इसमें तीस रुपये से अधिक कागज़ तथा छपाई में व्यय न होगा। पर वे इस प्रस्ताव अमल में न ला सके, क्योंकि उनके सामने बड़ी मुश्किल यह थी कि प्रति मास नियमानुकूल लिखनेवालों का वे संग्रह नहीं कर सकते थे। यहाँ तो वह किस्सा चरितार्थ होना है 'जो बोले सो घी को जाय'। एक बार चार प्रमादी मित्रों ने खिचड़ी बनाई। उसके लिये घी की जरूरत थी पर उन आलसियों में किसी का यह साहस नहीं पड़ रहा था कि घी लाने के लिये बाज़ार कौन जाए। इसलिये प्रमादी नं. १ ने यह प्रस्ताव किया कि हम सभी लोग मौन हो जायँ और जो कोई मौन तोड़े वही घी लेने जाय ! मालूम नहीं कि कौन पहले बोला और खिचड़ी घी सहित या घी रहित खाई गई। पर हिन्दी जगत् में साहित्य चर्चा के विषय में यही कहावत चरितार्थ हो रही है। साहित्य सन्देश (आगरा), 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' (दिल्ली) अवश्य इसके अपवाद हैं।

हिन्दी लेखक और पत्रकार प्रायः साधनहीन हैं। वर्ष में एक बार साहित्य सम्मेलन के मौक़े पर पारस्परिक मिलन हो जाता था पर जब से वह संस्था दलबन्दी का अखाड़ा बन गई उसके अधिवेशनों पर जाने के लिये मन में कोई उत्साह ही नहीं होता। इस विस्तृत देश में यात्राएँ भी विपुल अर्थसाध्य हैं और आचार्य विनोबाजी की तरह पैदल चलने का शक्ति हम लोगों में है नहीं।

हम साहित्यिकों के लिये सम्भाषण निहायत ज़रूरी है। बिना उसके अक्ल की धार भोथरी हो जाती है। पत्र व्यवहार द्वारा सम्भाषण की कमी की पूर्ति कुछ अंशों में तो हो सकती है। पर बिना निकट सम्पर्क में आए कोई ठोस साहित्यिक कार्य सम्भव नहीं। जब आपने महर्षि दयानन्द शताब्दी के अवसर पर:—

"दरवाज़े को खोल दे माली। मुझे बुलाती डाली डाली॥"

नामक सुन्दर कविता सुनाई थी उसे आज सत्ताईस वर्ष हो गये। और इन सत्ताईस वर्षों में यद्यपि हम लोगों का पर्याप्त पत्र व्यवहार हुआ है (विशाल भारत के गौरवको बढ़ाने में अपने जो महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया, उसे भला मैं कैसे भूल सकता हूँ ?) तथापि हम लोग फिर मिल ही नहीं सके !

कुछ ऐसा उपाय होना चाहिये, जिससे वर्ष में एक बार तो समानशील लेखकों कवियों और पत्रकारों का पाँच सात दिन तक साथ हो जाय।

आपने मुझे 'अजन्ता' के लिये लेख लिखने का आदेश दिया था और मैंने शैतान की आँत की तरह लम्बी ये चिट्ठी आपको लिखदी। इसमें कुछ मतलब की बात आपको मिल जाय तो उसका उपयोग कर लीजिए वरना इसे रद्दी की टोकनी में डाल दीजिए। अपने संपादकीय जीवन में मैंने कितने ही लेखों को W. P. B. हवाले किया था। उस अपराध की कुछ सज़ा तो मुझे मिलनी ही चाहिए।

आपको यक़ीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं हैदराबाद जरूर आऊँगा, पर उस किस्से के भेड़िए की तरह जो बिना नोटिस दिए अकस्मात् आ गया था।

विनीत
बनारसीदास चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१)

वली का देशदर्शन

'वली' औरंगाबादी को उर्दू का आदम कहा जाता है। उनके पहले उत्तर भारत के मुसलमान व्रजभाषा या फ़ारसी में रचना करते थे। खड़ी बोली या नागरी में रचना करने की प्रेरणा उन्हें 'वली' तथा उनके 'दीवान' से मिली। वली से संकेत पाकर उर्दू कहाँ से कहाँ गई अथवा दिल्ली के इशारे पर वली हिन्दी से कितने विलायती बन गए, इसकी जानकारी से यहाँ कोई लाभ नहीं। अभी दिखाना तो यह है कि वली की दृष्टि में कभी हिन्द को कितना स्थान था। और देखते भी उसे वह थे किस रूप में। कहते हैं—

"यो तिल ज़ंगी व ख़ाल मुश्के खुतन है।
सखुन मिसरी व लब काने यमन है॥
मेरे पर खींचते हैं तेग़ हिन्दी।
तेरे अबरू कि चीं जिनका वतन हैं॥
हुए हैं दंग तसवीर फ़िरंग देख।
तेरी सूरत कि यह इश्के वमन हैं॥
दिसे तेरे नयन में कॉवरू देस।
तेरी बाताँ में बँगाले का फ़न हैं।
तेरे लब में दिसे लाले बदख्शाँ।
सखुन तेरा हर इक दुर्रे अदन है।
तेरी यह ज़ुल्फ़ है शा मे ग़रेबाँ।
जबीं तेरी मुझे सुबहे वतन हैं॥
'वली' ईरान व तूरान में है मशहूर।
अगरचे शाइर मुल्के दक्कन है॥"

'दक्न' के शाइर 'वली' ने प्रिय के शरीर को जिस शोभा के साथ जिस रूप में देखा है वह आज भी उनके हृदय का परिचायक है। अन्य देशों के उल्लेख से कोई प्रयोजन नहीं। हाँ, 'हिन्द', 'कॉवरू' और 'बङ्गाल' के विषय में कुछ कहना अवश्य है। हिन्द तो तेग़ के साथ आ गया और बता गया कि वस्तुतः हिन्दी तलवार की धाक क्या है। 'बङ्गाल' भी मौन नहीं। यहाँ उसके फ़न का उल्लेख है पर पता नहीं कि इस 'बङ्गाले का फ़न है' से कवि का भाव क्या है: "उसकी बात में बङ्गाले का फ़न है तो वह स्वयं मधुभाषी है।" औरंगाबादी वली का यह मनसूबा कहाँ तक ठीक है कि वह एक ही साँस में कह जाते हैं—

"दिसे तेरे नयन में कॉवरू देस।
तेरी बाँतों में बङ्गाले का फ़न है॥"

'वली' को प्रिय की आँख में 'कॉवरू देश' का दर्शन हो गया तो कोई बात नहीं, पर उनकी 'जादू-बयानी' को समझना अभी शेष रहा। सो लीजिए, उन्हीं का तो यह भी कहना है—

"उन आँखों और ज़ुल्फ़ का अजब बस कि देखा है तिलिस्म।
शेर तेरा ऐ 'वली' यो सहर बङ्गाला रहे॥"

भाव यह कि 'बङ्गाल' का जादू 'वली' को भी भाता है और वह इसी से प्रिय की बात में बङ्गाल का साक्षात्कार भी करते हैं। यह भाव इन्हें इतना प्रिय है कि इसी को इस प्रकार भी व्यक्त करते हैं—

"हुआ है दंग बङ्गाला तेरी नरगिस के जादू सों।
मुअत्तर हैं सवादे हिन्द तेरी ज़ुल्फ़ की बू से॥"

'नरगिस' आँख ही को तो कहते हैं न? फिर क्या 'कॉवरू' और 'बङ्गाला' का काम जादू टोना ही रह गया? वली को दिखाई तो यही देता है। देखिए, इसी के आगे इतना और भी कह जाते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क़सम तेरे तग़ाफ़ुल की कि नरगिस की क़लम ले कर।
तेरी अँखियाँ की जादू कूँ लिखा हूँ खून आहू सों॥"

तात्पर्य यह निकला कि 'वली' ने इस देश-दर्शन में 'कँवरू' को 'बङ्गाल' से अलग करके देखा है अवश्य पर विशेषता दोनों की मानी गई है उनके यहाँ दोनों की एक ही। वही जादू जिसके लिए 'कँावरूकमच्छा' आज भी प्रसिद्ध है। बंगालिनों का जादू मार कर मेड़ा बना लेना आज भी लोक में प्रसिद्ध है। इसी से तो वली की चेतावनी भी है—

"पीतम की ज़ुल्फ़ बीच दिसा मुझ सवादे हिन्द।
इस राह मार बीच में ऐ दिल सँभाल चल॥"

'ऐ दिल सँभाल चल' कैसी भली सीख है। वली की, दक्खिनी की, यह देन!

बनारस —**श्री चन्द्रबली पांडे,** एम. ए.

: :

(२)

छायावाद का लक्षण

हिन्दी में कविता की समालोचना एक दर्शन का सा स्वरूप धारण करती जा रही है। श्री शुक्ल जी ने प्रारंभ से ही इसे कुछ ऐसा ही Twist दे दिया है। कहा तो यह जाता है कि कवि स्वतन्त्र होता है। वह किसी प्रकार के बन्धनों की परवाह नहीं करता परन्तु इन समालोचनाओं को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि जैसे किसी एक विशेष विचारधारा के या "वादों" के लक्षणों को हृदयंगम कर के फिर अपनी कविताएँ लिखते हैं। वे इन "वादों" के बन्धनों में जकड़े हुए हैं। आश्चर्य तो यह है कि इन "वादों" के लक्षण भी प्रति दिन परिवर्तित होते जा रहे हैं। छायावाद के बहुत-से लक्षण किए गए। हम इस पत्र में उन लक्षणों के विषय में कुछ न कहेंगे। छायावाद का अप टू डेट लक्षण हिन्दी के एक विद्वान् ने निम्न प्रकार किया है:—

"छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता की वह शैली है जिसमें सूक्ष्म अथवा काल्पनिक स्वानुभूति को लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक ढंग पर प्रकाशित किया जाता है। इसमें आलम्बन प्रायः अस्पष्ट रहता है॥"

इस लक्षण को पढ़ कर हमारे मन में यह विचार उठा कि क्या अनुभूति और वह भी स्वानुभूति काल्पनिक हो सकती है? क्या सुख और दुःख की अपनी अनुभूति भी काल्पनिक हो सकती है? क्या भावनाएँ भी काल्पनिक हो सकती हैं? क्या जीवन भी काल्पनिक हो सकता है? क्या सत्य भी काल्पनिक हो सकता है? यह ठीक है कि हम दूसरों के सुख या दुःख या भावनाओं की कल्पना कर सकते हैं परन्तु जब हम उसे अपने हृदय में अनुभव करने लग जाते हैं, जब हमें उनकी स्वान्तःकरण में अनुभूति हो जाती है तब वे भावनाएँ या अनुभूतियाँ काल्पनिक नहीं रह सकतीं। वे सत्य हो जाती हैं। अनुभव और कल्पना में अंतरम्—महदन्तरम्। कल्पित वस्तु और अनुभूति एक साथ नहीं रह सकतीं। कल्पना में अविद्यमान वस्तु का, सम्भावित वस्तु का-असत्य का आभास होता है परन्तु अनुभूति में विद्यमान वस्तु का, वास्तविक वस्तु का और सत्य का साक्षात् अनुभव होता है। कल्पना द्वारा अनुभूति हो सकती है परन्तु अनुभूति स्वयं कभी काल्पनिक नहीं हो सकती। वह कल्पना की सहायता लेती है परन्तु स्वयं कल्पनात्मक नहीं होती। यदि इस "काल्पनिक स्वानुभूति" की जगह "काल्पनिक सत्य" शब्द लिख दें तो हमें इन शब्दों का पारस्परिक विरोध सुगमता से समझ में आ जाएगा। काल्पनिक स्वानुभूति—या काल्पनिक सत्य—"एक म्यान में दो खड्ग देखा सुना न कान।"

रामकोट —**विद्यासागर,** एम. ए.

: :

(३)

कुछ निर्देश

"यदि आप क्षमा करें तो "मैं कहूँगा कि अजन्ता के नवम्बर के अंक की सबसे सुन्दर रोचक सामग्री पिछले तीन स्तम्भ हैं। विशेष कर 'सामयिक'। मेरा निवेदन है कि इन्हें अधिक से अधिक 'अप टू डेट' और रोचक बनाए रक्खें। एक सुझाव और देना चाहता हूँ। पिछले दिनों 'हिमालय' में बाबू शिवपूजन सहाय, 'गत मास का साहित्य' नाम से पिछले साहित्य का सिंहावलोकन निकालते थे। 'प्रतीक' (दिल्ली) में भी ऐसा निकलना शुरू हुआ है किन्तु वह उतना अच्छा और सम्पूर्ण नहीं है। इस नाम से एक स्तम्भ आप भी प्रारम्भ कर सकें तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ही अच्छा हो। पिछले मास में पढ़ने योग्य सामग्री क्या निकली यह बड़ी आसानी से पता लग सकेगा।

आज के सामाजिक जीवन में सिनेमा का जो अपरिहार्य स्थान हो गया है उसे देखते हुए यदि अच्छे स्तर से आप सिनेमा की आलोचना का भी एक स्तम्भ खोल सकें तो काफ़ी उपयोगी होगा। पत्र में प्रकाशित विभिन्न रचनाओं के सम्बन्ध में पाठकों की सम्मति अर्थात् पाठकों से पत्र का सम्बन्ध लेखक और पाठक दोनों को निकट लाता और लाभान्वित करता है। आशा है इन कुछ रूपों में भी आप 'अजन्ता' को उपयोगी बनाएँगे।

आगरा —**राजेन्द्र यादव**, एम-ए.,
साहित्यरत्न

[हम श्री राजेन्द्र जी यादव के निर्देशों का स्वागत करते हैं। हम "अजन्ता" के चिट्ठी-पत्री के स्तम्भों को बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि 'चिट्ठी-पत्री' साहित्य का एक ऐसा अंग है जिसमें लेखक और पाठक दोनों समान रूप से भाग ले सकते हैं। हम चाहते हैं कि ये स्तम्भ ऐसे हों जिनमें हमारी साहित्य विषयक धारणाओं और अवस्थाओं आदि पर व्यक्तिगत दृष्टि से विचार किया जा सके। इसी प्रकार "सामयिक" में भी हम अच्छे साहित्य का संग्रह करना चाहते हैं परन्तु थोड़ी-सी जगह में समस्त अच्छे प्रकाशित साहित्य का पूर्ण संग्रह करना कठिन है। सिनेमा के विषय में हम अपने विचार किसी और अंक में लिखेंगे।—सं]

: :

(४)

उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का उर्दू अनुवाद

"आपने 'नीर-क्षीर' में श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई. सी. एस. की पुस्तक की जो समालोचना की है वह Thought Provoking है।

हिन्दी में उमरख़ैयाम के कई अनुवाद हुए हैं, किन्तु वे प्रायः अँग्रेज़ी से ही किये गये हैं। उर्दू में एक साहब ने फ़ारसी से तर्जुमा किया है, पर वह अच्छा नहीं बन पड़ा। हमारे स्थानीय हाईस्कूल के मौलवी 'मज़र' साहब ने मूल फ़ारसी से एक नया तर्जुमा किया है और उसके कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मौलवी साहब के अनुवाद में सरलता और प्रवाह है। क्या ही अच्छा हो यदि वे अपने अनुवाद को पुस्तकाकार हिन्दी और उर्दू दोनों में प्रकाशित कर दें।

ऐ मेरे मालिक दिलों में करके पैदा इख़्तिलाफ़
पेच वो डाला है तूने, हो नहीं सकता जो साफ़
मूरतें अच्छी अगर हैं, तोड़ते हो क्यों उन्हें?
हैं बुरी तो क्यों गढ़े जाते हो? गुस्ताख़ी मुआफ़?
गरचे मसजिदमें क़दम रक्खा है वाइज़ जो नियाज़
लेकिन अल्लाह की क़सम आया नहीं पढ़ने नमाज़
मैं चुरा भागा था याँ से इक मुसल्ला पार साल
फट गया वो, इसलिये आया हूँ फिर बन्दा नवाज़।
हैफ़ सरमाया था जितना हो गया गुम सर बसर
मौत के हाथों न जाने खूँ हुए कितने जिगर?
क़ाफ़िले के क़ाफ़िले दिन रात जाते हैं उधर
जानेवालों की मगर, कोई नहीं लाता ख़बर।"

—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

: :

(५)

मध्य प्रदेश के गीतकार श्री विनय कुमार

मध्य प्रदेश के स्व. कवि श्री विनयकुमार के गीतों का प्रकाशन कर मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने एक पुण्य का कार्य किया है। आप प्रान्त के बड़े ही प्रतिभाशाली नवयुवक कवि थे और तैंतीस वर्ष की अवस्था में आपका देहान्त हो गया था।

चिर संगीत प्रवाहिनी नर्मदा के किनारे होशंगाबाद ज़िले में झालसिर नामक एक छोटे-से गाँव में सन् १९४० में आपका जन्म हुआ था और घर की स्थिति ठीक नहीं थी इसलिए उन्हें विद्यार्थी अवस्था में ही स्वावलंबी होना पड़ा। आप बैतूल तथा इटारसी में शिक्षक रहे थे। ८ दिसम्बर १९४० को आपका देहान्त हुआ और आप अपने पीछे विधवा पत्नी तथा अबोध पुत्र घनश्याम को छोड़ गए हैं।

इख़्तिलाफ़=फ़र्क़, भेद मुसल्ला=नमाज़ पढ़ने का कपड़ा, हैफ़=अफ़सोस, सरमाया=पूँजी, सर बसर=बिल्कुल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उज्ज्वल चरित्र, उदार हृदय, स्वतन्त्र विचार, स्पष्ट भाषा जसे आपके जन्मजात गुण थे। बहुत ही मिलनसार थे। पं. माखनलाल जी चतुर्वेदी को आप अपना गुरु मानते थे।

पं. माखनलाल जी ने श्री विनयकुमार के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि—हुस्न से "बेबाक" इश्क के बादशाह की तरह, अपने गीतों के उड़नखटोले पर बैठ कर जब वह सतपुड़ा के जङ्गलों में, आमों, जामुनों, हरों और सागौनों, के वृक्षों के नीचे, कलेजे में नाच कर, कलम पर उतर उठता, तब अपने ही गीतों के आनन्द से वह इतना भर उठता कि लोग उसके काव्य सुनाने को, उसकी बीमारी समझने लगते। किन्तु जिनकी आँखों में उसके आँसू तसवीर बन कर दीख सकते, वे जानते थे कि वह जीवन तक को, एक लाचारी, एक बीमारी से अधिक क़ीमत देने के लिए तैयार नहीं है। उसकी सरलता उसका मूलधन थी। भाई दीपचन्द जी गोठी, सहृदय साधु वियोगी हरिजी, श्रद्धेय टण्डन जी, कलम के धनी और जीवन की भाषा के व्याकरणकार काका कालेलकर और स्वयं महात्मा गांधी, इस मस्ताने गरीब कवि से बड़े चाव से मिलते।

"हरिजी" से तो "विनय" ने अद्भुत प्रेरणा पाई थी। प्रभु, प्रेयसी और पूज्यचरण—इन तीनों दिशाओं में, विनयकुमार के गीतों का संचार होता। अपनी जीवन संगिनी को काव्य पुष्प चढ़ाते समय भी उसे न जाने कौन-सा पुण्य भाव प्रेरित करता। बैरागी वह, जब रागमयी वाणी में, अनुभव रंजित स्वर उमेठ कर अपने प्रभु के लिए अपनी बिना तारों वाली उर की वीणा झंकारता तब जाने वह कैसा हो जाता। कभी कभी मुझे भ्रम होता, कहीं वह पागल तो नहीं हो जाएगा? किन्तु उसके गीत और उसकी भर्त्सना, बहुतों के बड़प्पन का ज्वर उतार दिया करते।"

श्री विनयकुमार "भारती" असमय में ही हमारे बीच में से उठ गए। विंध्या-सतपुड़ा का सौन्दर्य और नर्मदा, ताप्ती की संगीत उनके शब्द शब्द में मूर्तिमान् हो उठा था। आराध्य के प्रति एकान्त समर्पण उनका धर्म बन गया था।

उनके गीतों में मस्ती और सौन्दर्य के दर्शन होते हैं, उनके गीतों में प्रतिमा की झलक दिखाई देती है और उनके गीत मानों मानव से कुछ बोलते से हैं। उनके गीतों की हर पंक्ति, पंक्ति का हर शब्द अपनी गहराई और व्याकुलता प्रकट करता है और ऐसा मालूम होता है कि कवि ने कलम से नहीं हृदय से गीतों का निर्माण किया है! गीतों में मादकता, निर्मलता और सौन्दर्य की त्रिवेणी बहती है। वह कहता है—

"मैं जिस बिन्दु पर तपस्या की घड़ियों में अपने को खोता हूँ—उसकी परिधि के भीतर कोई आपत्ति आ नहीं सकती। मैं समुद्र नहीं हूँ, किन्तु मीठे पानी का छोटा-सा झरना हूँ। स्वयं अपने पतन-प्रवाह में अपनी प्यास भले ही न बुझा सकूँ, परन्तु कोई भी मेरे किनारे आ कर अपनी प्यास बुझा सकता है।"

"मैं वह गुलाब हूँ, जिसकी साथ के काँटे, अपने ही बदनपर उगे हैं और जिसके कुसुम कुसुम में औरों लिए मधु संचित है।"

: : : : : :

जाने किसका आगमन जान!
सुर-दीप बुझा जाता समीर,
लहरों में हलचल सी होती,
उठ जाते कलियों के घूंघट,
दूर्वादल पर आते मोती।
गुपचुप गाती है तान उषा,
इस प्राची में स्वर्गिम वितान।
गद्‌गद हो जाता हृदय और—
पुलकित हो उठते अंग अंग,
आँखों में बरस बरस पड़ती,
पथ हेर हेर दर्शन उमंग।
मिलने को मचल मचल उठते
रह रह कर ये अभिलाषित प्राण।
जाने किसका आगमन जान

: : : : : :

जीवन के प्रभात में संध्या,
के सपने पाता हूँ,
कौन बुरा करता हूँ जो मैं,
मृत्यु गीत गाता हूँ,
छाया है विछोह आँखों में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तित है प्यारा मन,
साथ छोड़ कर चला गया है,
शैशव का भोलापन,
इधर उधर में यौवन की,
दुनिया में टकराता हूँ,
आज निराशा में आशा को,
ढूंढ कहाँ पाता हूँ,
झंझा का उत्पात मचा है,
देखो, सत्वर आओ,
फेनिल सिन्धु तरी जर्जर है,
मांझी पार लगाओ।

: : : : : :

अंधकार में देखा निशि भर,
तारों का मुसकाना,
देखा खुलकर काँटों में,
कलियों का सुरभि लुटाना।
चिड़ियों का सूनी डालों पर,
सुना सुरीला गाना,
सजल घनों का देखा,
घिर घिर मरु भू पर झरलाना।

विन्ध्याचल को देखा,
इन्द्र धनुष का मुकुट लगाते,
देखा, बिजली को शरमाकर,
मेघों में छिप जाते।
देखा सरि को,
सिन्धु मिलन की प्यास लिए द्रुत जाते,
उसके पीछे शिखरों में,
निर्झर को दौड़ लगाते।

और छै पंक्तियों के इस छोटे से गीत में कवि ने कितने उदार भाव अंकित किए हैं—

इस उपवन की कलिएँ उदार,
मुझसे कहती हैं बार बार,
मत हँसो, हँसे थे प्रात फूल,
झड़ गए सभी, मिल गए धूल,

कवि प्रश्न पूछता है—

क्या सचमुच ही हँसना उदार
आसन से देता है उतार।

निस्संदेह स्व. विनयकुमार जी मध्यप्रदेश के प्रतिभावान् कवि थे जो असमय में ही उठ गए। हम अपनी विनम्र श्रद्धांजलि कवि के चरणों में समर्पित करते हैं।

वर्धा —उमाशङ्कर शुक्ल

: :

(६)

मंगोलिया में हमारी धर्म विजय

एशिया भारत को स्वर्गभूमि के रूप में देखता था। भारतभूमि की दर्शन लालसा, एशिया के सुदूरवासी श्रद्धा परिपूर्ण हृदयों को, हमारी मातृभूमि की ओर आने के लिये प्रेरित करती थी। वे बड़ी उत्सुकता से मरुस्थल तथा दुर्गम पर्वतों के कष्टों को झेल कर अस्थिप्रवेशी शीत और असह्य आतपोष्णता की अवहेलना करके धीरे धीरे पग बढ़ाते हुये "स्वर्ग भूमि की" ओर अग्रसर होते और यहाँ के आचार्यों के चरण-कमलों के समीप बैठ कर विद्यामृत पान करते थे। परन्तु इस स्थिति में दसवीं शताब्दि के अनन्तर परिवर्तन हो गया। चीन के चिरकालिक यातायात को मध्य एशिया के शासकों ने रोक दिया एवं अन्यदेशीय भक्तों की तीर्थ यात्रा में बाधा डाली। भारतवर्ष के बौद्धों को भी धार्मिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। अतः कुछ बौद्ध आचार्यों ने नैपाल, तिब्बत आदि में शरण ली और भगवान् तथागत की "मध्यमाप्रतिपत्" का उन देशों में प्रचार किया। इसी युग में बख्त्यार-खिल्जी ने भारत के विख्यात शिक्षा केन्द्रों का नाश आरम्भ किया। तब विक्रमशील विश्वविद्यालय के अध्यक्ष काश्मीर निवासी पंडित शाक्यश्री इस बर्बरता के नृत्य से विषण्ण हृदय हो नेपाल होते हुए तिब्बत को चले गये। वहाँ उन्होंने संसार के उच्चतम गौरीशंकर पर्वत से पचास मील की दूरी पर विद्यमान सास्क्या विहार में निवास किया। उस विहार के महन्त ने उनके भारत के आचार्य तथा प्रकाण्ड विद्वान् होने के" कारण उनका शिष्यत्व स्वीकार करके अपने जन्म को कृतकृत्य माना। अपने पूज्य गुरु शाक्यश्री के उपदेशों से उत्साहित होकर सास्क्या विहाराधीश ने मंगोलिया में धर्म विजय के लिये प्रस्थान किया। वहां पर उन्हें असीम सफलता प्राप्त हुई और एक और देश भारतभूमि को अपनी स्वर्गभूमि मानने लगा। उस देश के लोगों ने भगवान् बुद्ध को अपना श्रद्धादेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार किया। बौद्ध धर्म सामान्य लोगों तक ही सीमित न रहकर राजधर्म बना। चंगेजखां का पुत्र आगोताई सास्क्या विहाराधीश का शिष्य बना। तदनन्तर आगोताई भाई सम्राट् मनाकुवीन ने एक विराट् धर्म सभा बुलाई, जिसमें यशस्वी सास्क्या विहाराधीश के शिष्य फग्स्पाने अन्य धर्म पर महान् विजय प्राप्त की और राजकुल को बौद्ध धर्म में दीक्षा दी। यह है मंगोलिया में बौद्धधर्म की स्थापना की कथा।

इसके पश्चात् सास्क्या विहार के किसी अधीश ने भारतीय अक्षरों के आधार पर एक लिपि बनाई। मंगोलिया के नए नए प्रारम्भ किए हुए साहित्य को लिखने के लिए इस चीनी भाषा के समान ऊपर से नीचे लिखी जाने वाली लिपि का आविष्कार हुआ। इस लिपि का प्रयोग सम्राट् चंगेज खाँ तथा कुबलई ख़ान के उत्तराधिकारियों की स्वर्णमुद्राओं पर मिलता है। आदि में लिपि गोलाकार थी। परन्तु कुछ समय के उपरान्त चौकोर हो गई। इसके अक्षर भारत की तत्कालवर्तिनी तथा तिब्बती लिपि से बहुत मिलते हैं और आधुनिक देवनागरी से भी कई अक्षर बहुत दूर नहीं हैं।

मंगोल सम्राट् बौद्ध धर्म के दृढ़ अनुयायी और उनकी अगाध श्रद्धा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि सम्राट् कुबलई ख़ान ने सास्क्या विहाराधीश को पश्चिमी भोट देश (तिब्बत) का साम्राज्य अर्पण कर दिया। तदनन्तर सास्क्या विहार के अधीशों का समस्त तिब्बत पर राजनैतिक-धार्मिक प्रभाव बहुत बढ़ा रहा। विक्रम संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में सम्राट्-अलतान खान ने तिब्बत के दलाई लामा को जो कि उन दिनों मंगोलिया के राजनैतिक प्रभाव में बंधे थे, धर्म सेवा के निमित्त वज्र की उपाधि दी।

मंगोलिया में बौद्ध धर्म के जाने से पहले कोई साहित्य न था। भगवान् बुद्ध की शरण लेने के उपरान्त मंगोल-निवासियों ने संस्कृत से "भोट भाषा" में अनूदित "कंजूर" नामक ११०० ग्रन्थों से अधिक सम्पूर्ण समूह का अनुवाद किया। यह बृहत्काय ग्रन्थ समूह आज भी संसार में विद्यमान है। परन्तु क्या भारत भी कभी इस अपने महान् गौरवचिन्ह को रखने तथा अध्ययन करने की इच्छा करेगा?

भारतीय शब्द भी मंगोल देश की भाषा में प्रचुर-मात्रा में मिलते हैं। सूर्य की किरणों को वहाँ के सामान्य व्यक्ति को "रश्मि" कहते हुए सुन कर किस भारतीय का हृदय उल्लसित न होगा। महाराज शब्द का आज भी प्रयोग होता है। परस्पर सखा सम्बन्ध को अद्यापि मंगोल संस्कृत-मैत्रि (मंगोल भाषा में ह्रस्व ही लिखा जाता है) शब्द से द्योतित करता है। भारतीयों के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती जब वे "खतमल" शब्द सुनते हैं। यह खतमल मानवनिद्रा-भंगकारी रक्त पिपासु "खटमल" (संस्कृत "खट्वामल" खाट का मल) है। पूजास्थानों तथा विहारों पर लहराती हुई ध्वजा का नाम अब भी "ध्वजा" ही है। विद्या का आजकल वहाँ पर अभियस् (अभ्यास का विकृत रूप) ही होता है। कई भारतीय सम्भव है इस शब्द को न समझें, परन्तु उस देश के वासियों के लिए यह सामान्य शब्द है। "लोकेश्वर," "मंजूश्री" "शाक्यमुनि" आदि धार्मिक शब्दों से उनकी शब्दावली पूर्ण है। उस दूर देश में दैनिक उपासना संस्कृत में ही श्रद्धा से की जाती है। अंत में यह जान कर प्रत्येक भारतीय का मन प्रफुल्लित होगा कि बोखारा शब्द संस्कृत विहार का विकृत मंगोल रूप है। मध्य-एशिया स्थित बोखारा नगर विहार शब्द का ही अपभ्रंश है। किसी काल में यह नगर बौद्ध विहारों से सुशोभित था पर आज.........।

रूस देश भी मंगोल निवासियों की बौद्ध धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा को दूर नहीं कर सका। जब बुरियतों का नया गणराज्य स्थापित हुआ, तब साम्यवादियों ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना आरंभ किया और उन्होंने दर्शाया कि आधुनिक विज्ञान का आधिभौतिक दृष्टिकोण है। गणराज्य के महायान बौद्ध भिक्षुओं ने उसका निराकरण किया और प्रमाणित कर दिया कि बौद्ध के लिए आधिभौतिक दृष्टिकोण कोई नई बात नहीं तथा विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त उनके दर्शन-शास्त्र में पूर्व से ही विद्यमान हैं। इस प्रकार साम्यवादियों के मंगोल निवासियों को बौद्ध धर्म से विमुख करने के प्रयत्न विफल हुए। क्या भारतीय इससे शिक्षा ग्रहण न करेंगे? क्या वे अपने आंग्ल तथा अन्य विदेशी प्रभावों के मोह को छोड़ कर अपनी सनातन संस्कृति को न अपनाएँगे।

नागपुर —डा. लोकेशचन्द्र, डी. लिट्.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीर-क्षीर

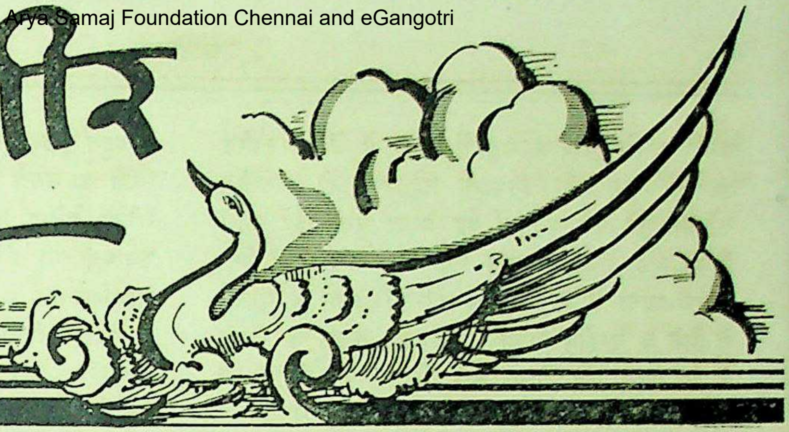

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम भेजी जानी चाहिएँ]

एक युग : एक प्रतीक

लेखक—श्री देवेन्द्र सत्यार्थी।

प्रकाशक—राजहंस प्रकाशन, दिल्ली।

मूल्य—चार रुपए।

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी लोकगीतों के संग्रह में पर्याप्त कार्य और प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं और जिस प्रकार वे भिन्न भिन्न प्रान्तों और भूखण्डों से वहाँ के निवासियों से परिचय प्राप्त करते हैं वैसे ही कुछ विशिष्ट लोगों से भी वे परिचय प्राप्त करते हैं और उनका यह परिचय ही लेखों का विषय और आधार बन जाता है। जीवन से सम्बन्ध एक प्रकार का नहीं होता, जिसका सम्बन्ध जिस प्रकार का और जितना गहरा होता है वह साहित्य में भी उसी प्रकार के स्वरूप धारण करता है और उतनी ही गहराई को लेकर अभिव्यक्ति में प्रकाशित हो उठता है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के २७ लेखों का संग्रह किया गया है और लेखक की प्रस्तावना के अनुसार "एक युग: एक प्रतीक के अनेक निबन्ध रेखा चित्रों से सटे हुए (?) हैं।" ये लेख और निबन्ध एक प्रकार के नहीं हैं। इनमें से अधिकांश साहित्यकारों, कलाकारों और पत्रकारों के व्यक्तित्व और साहित्य, कला और कार्य के सम्बन्ध में हैं; कुछ महात्मा गान्धी जी के विषय में और कुछ अन्य विषयों पर हैं। कई लेखों में तो कुछ थोड़ी-सी उठान भर की गई है परन्तु उन्हें ठीक तरह पल्लवित नहीं किया गया।

लेखक की शैली व्यक्तिगत सम्बन्धों और प्रभावों को लेकर चलती है इसलिए इन लेखों के पढ़ने में एक प्रकार का व्यक्तिगत वातावरण है और इसी कारण इनको पढ़ने में एक विशेष आकर्षण है और इनको पढ़ने से मन पर वैसी ही प्रतिक्रिया होती है जैसी कि किसी व्यक्ति से साक्षात् भेंट करने पर होती है। अधिकांश में हम इन लेखों को "संस्मरण" ही कह सकते हैं। लेखक की लिखने की शैली में यह विशेषता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे पढ़नेवाला लेखक से बातचीत कर रहा हो और लेखक अपने अनुभव आदि का विवरण सुना रहा हो। लेखक ने जिन साहित्यकारों, कलाकारों और पत्रकारों के विषय में लिखा है वे विशिष्ट व्यक्ति हैं और उनकी विशेषता ने भी इन निबन्धों में एक आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। लेखक का परिचय इन व्यक्तियों से इतना गहरा और विस्तृत नहीं प्रतीत होता और वह इतना निकट और व्यक्तिगत भी नहीं है कि वह विविध रंगों में और एक ऐसी अभिन्नता में प्रकट हो जिसमें जहाँ जीवन की महानता से परिचय प्राप्त होता है वहाँ उसकी मर्यादा, बंधनों और सीमाओं से भी परिचिति प्राप्त होती है। उनके सम्बन्धों में यद्यपि प्रतीयमान रूप में निकटता है परन्तु उनमें और लेखक में एक तरह की दूरी का स्पष्टतया आभास प्राप्त होता है और इसी दूरी के कारण वह अधिकतर उनके जीवन और कला के ऐसे पहलुओं को लिए हुए है जिनमें दूरी के कारण विशेष महत्व और आकर्षण अनुभव होता है। इन निबन्धों या लेखों को पढ़ने में दिल लगता है परन्तु इनमें जो विवरण हैं वे इतने अलग अलग हैं कि वे आपस में प्रायः शिथिलता से परस्पर सम्बद्ध हैं।

लेखक ने अनुवादों के विषय में गुरुदेव के जिन विचारों को उद्धृत किया है वे सत्य हैं परन्तु यदि ये अनुवाद न होते और विशेषतया काव्य और सांस्कृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों के तो विश्व के मनुष्यों के हृदयों में पारस्परिक आदान-प्रदान और निकटता न उत्पन्न हो सकती। कई बार टूटे फूटे अनुवाद वह प्रेरणा प्रदान कर जाते हैं जो मूल सौन्दर्य प्रदान नहीं कर पाते। हमें ऐसा स्मरण आता है कि जब हम शान्ति-निकेतन में गुरुदेव से मिले थे उन्होंने अपने 'चित्रांगदा' नाटक के विषय में ये शब्द कहे थे—"मेरी 'चित्रा' को बंगाली से अनूदित किया जा सकता है परन्तु अंग्रेज़ी से नहीं।" उन्हें 'चित्रा' के अंग्रेज़ी अनुवाद में एक विशिष्टता अनुभव होती थी। अन्ततः यह तो मानना ही पड़ेगा कि गुरुदेव को विश्व में लोकप्रियता और ख्याति अनुवादों के कारण ही प्राप्त हुई। श्री सत्यार्थी जी ने गुरुदेव के सम्बन्ध में जिन Anecdotes कथानकों का उल्लेख किया है उनमें एक डाक्टरेट डिग्री प्राप्त अध्यापक की कथा बड़ी रोचक है और इसी प्रकार उन्होंने अन्य कई दिलचस्प घटनाओं का उल्लेख किया है। हम उनके इन निबन्धों में आलेख्य की ऐसी रेखाओं को नहीं देखते जैसी उनकी स्मृतियों का उल्लेख पाते हैं। ये निबन्ध इतने रेखा-लेख नहीं हैं जितने स्मृतिलेख हैं परन्तु इससे इनकी दिलचस्पी में कोई कमी नहीं होती। स्मृतिलेख होने के कारण उनके लेखों में एक तरह के Fragments का pieces का, टुकड़ों का एकत्रीकरण है और यह एकत्रीकरण प्रत्येक स्थान पर एक सदृश नहीं हो सका है। जो धागा इन सब को एक करता है वह है उनकी अपनी विचारधारा और वह छाप जो उनके हृदय पर पड़ी है।

इन लेखों में हमें एक पंजाबी कवयित्री "अमृत प्रीतम" के लेख में उनकी एक पंजाबी कविता जिसका उन्होंने उद्धरण दिया है अत्यन्त मौलिक और बड़ी सुन्दर प्रतीत हुई। इस एक कविता के कारण हमें इस कवयित्री के विषय में जानने की अत्यन्त उत्कण्ठा हुई परन्तु उनका जो कुछ परिचय लेखक ने दिया है वह न केवल अत्यन्त स्वल्प है परन्तु वह इस प्रकार का है कि उससे उनके काव्य या कला पर किसी प्रकार का विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। उन्होंने स्वयं लिखा है :-"शायद यहाँ आपत्ति की जाए कि इस कवयित्री महोदया की कविता के सम्बन्ध में अधिक न कह कर इधर उधर की बातें क्यों कही जा रही हैं।" और सचमुच उन्होंने इस कवयित्री के विषय में बहुत कुछ टाल टूल-सी ही कर दी है और वे कवयित्री का उसके काव्य जैसा परिचय नहीं दे सके हैं। श्रीयुत देवेन्द्र जी सत्यार्थी स्वयं पंजाबी हैं और ये कवयित्री भी पंजाबी हैं इसलिए हमें इस परिचय में कुछ विशेषता की आशा थी। उन्होंने पुस्तक में कवयित्री का चित्र भी दिया है। उनका सच्चा परिचय तो उनकी उसी एक कविता द्वारा हो जाता है जो कि उन्होंने उद्धृत की है। यदि वे उनकी कुछ और कविताओं को भी उद्धृत कर सकते तो हमें बड़ी प्रसन्नता होती। उन्होंने जो कविता उद्धृत की है वह इतनी सुन्दर है कि उसे बार बार पढ़ने का दिल होता है :-

"मेरी उमर तों वी लम्मी है मेरी वफ़ा दी लकीर"

: : :

इश्क नूँ आदत न पाओ बोलण दी,
अजे तो लोक-कन्नां नूँ सुनन दी जाच नहीं आई,
लफ़्ज़ाँ दी दौलत बिना वी, वफ़ा है अमीर।

: : :

हीरा किसे लैला दी नकल नहीं,
न मजनूं किसे रांझे दी रीस।
इश्क कदे तारीख नूँ दोहरांदा नहीं,
एहदा हर सफ़ा हुन्दा है बेनज़ीर।

: : :

मेरी उमर तों वी लम्मी है मेरी वफ़ा दी लकीर ॥

: : :

कविता के भाव कितने अछूते हैं।

मेरी आयु से मेरा प्रेम बड़ा है।

: : :

प्रेम को बोलने की आदत मत डालो
क्योंकि लोगों के कानों को इसके सुनने का तरीक़ा नहीं आता,
वे इसे सुन कर समझ ही नहीं सकते।
शब्दों की दौलत के बग़ैर भी प्रेम अमीर है।

: : :

हीरा किसी लैला की नक्ल नहीं थी,
और न मजनूँ किसी राँझे की रीस थी,
प्रेम कभी अपनी कहानी को नहीं दुहराता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका प्रत्येक पृष्ठ अपना और सम्पूर्णतया
अपना ही होता है;
यह अनुपम है। यह अपनी उपमा स्वयं है।

. . .

मेरी आयु से भी बड़ा है मेरा प्रेम।"

सारी कविता में एक अजीब टीस और दर्द है।

लेखक ने अपने पहले लेखों को काफ़ी लम्बा लिखा है परन्तु अन्त के लेख छोटे हैं! उनमें अधूरापन है और यद्यपि उनमें भी रोचक सामग्री है तो भी वे पल्लवित नहीं हो पाएँ हैं। उन्हें और भी अधिक विस्तृत करने की आवश्यता है! बन्धुवर श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी के जिन संस्मरणों को लिखा गया है वे अत्यन्त स्वल्प हैं और उनमें उनके जीवन की कुछ छोटी-सी घटनाओं का ही उल्लेख है परन्तु वह उल्लेख मात्र ही है और कुछ नहीं। श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी की जो विशेषता हमारे हृदय पर प्रभाव डालती है वह है उनका साहस, और है उनकी वीरता। वे जीवन में किस प्रकार एक के बाद दूसरे कष्टों को झेलते हुए अपने जीवन में अग्रसर हो रहे हैं परन्तु अपने मार्ग से हटते नहीं। वे जहाँ एक और विनम्र हैं वहाँ वे जिस बात पर डट जाते हैं फिर वहाँ अपने लाभ या हानि को नहीं देखते। उनमें जहाँ अपनी स्वतन्त्रता की वृत्ति है वहाँ दूसरों की स्वतन्त्रता के लिए आदर भी है। श्री सत्यार्थी जी श्री चतुर्वेदी जी के साहित्यिक जीवन के कुछ पहलुओं तक ही रह गए हैं परन्तु साहित्य चतुर्वेदी जी के जीवन का एक भाग है वह उनका समस्त जीवन नहीं है। इसी प्रकार श्री रामानन्द बाबू के विषय में भी जिन घटनाओं का उल्लेख है वे जितना व्यक्तिगत पहलू लिए हुए हैं उतना वे उनकी विविधता और महानता के परिचायक नहीं है। उनके 'ओ जोग के जल-प्रपात' के भी कुछ भाग हमें अत्यन्त रोचक प्रतीत हुए विशेषतया उन्होंने इस प्रपात के विषय में "विजिटर्स बुक" की जो सम्मतियाँ उद्धृत की हैं वे बहुत रोचक हैं।

"......एक यात्री ने लिखा था—"आज मैंने यह जल-प्रपात देखा। जी में आया इसे उठा कर अपने देश ले जाऊँ।"

"यह जल प्रपात भगवान् की सब से बड़ी कविता है।"

"प्रकृति के चित्रपट पर स्वयं भगवान् ने अंकित किया है यह चित्र।"

"जल प्रपात से मैंने सर्वोत्कृष्ट गान की स्वर लिपि सीखी।"

: : :

इन लेखों में यदि इस बात का ध्यान रक्खा जाता कि सभी निबन्ध एक ही प्रकार के होते तो अच्छा था। इस पुस्तक में कई प्रकार के निबन्धों लेखों का मेल हो गया है और इस प्रकार यह संग्रह की ही पुस्तक हो गई है। श्री देवेन्द्र जी सत्यार्थी जो कुछ भी लिखते हैं उनमें जहाँ वे दूसरों का या अन्य विषयों का अध्ययन करते हैं वहाँ वे अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं और विचारों का भी अध्ययन करते हैं और इसी कारण उनके लेखों में अपनी ही एक विशेषता होती है और अपना ही एक आकर्षण और दृष्टिकोण भी होता है। इस कारण उनके निबन्धों का संग्रह पठनीय और संग्राह्य है।

—वंशीधर विद्यालङ्कार

निम्न लिखित पुस्तकें समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं:—

(१) जय काश्मीर : लेखक विष्णुदत्त 'तरंगी' प्रकाशक......दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली मूल्य ७॥ रु०

(२) मध्य शताब्दी—प्रथम भाग। सम्पादक विश्वनाथ प्रकाशक......दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली। मूल्य २ रु०

(३) भावों की भीख—लेखक श्री रामनिवास जाजू, एम. काम। प्रकाशक......पिंडार्स लिमिटेड-७, लोअर राउडन स्ट्रीट, कलकत्ता २० मूल्य १॥ रु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामयिक

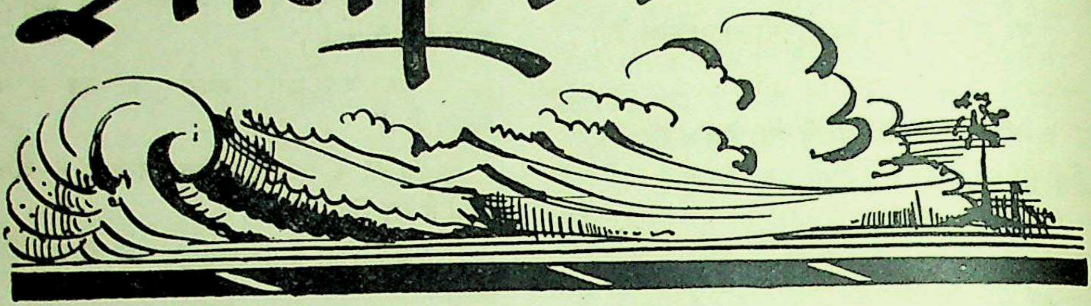

(१)

प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय

नालन्दा में अब फिर भारत सरकार ने पाली और बौद्ध दर्शन के लिए एक शिक्षा का केन्द्र बनाया है। इसका नाम "मगध इन्स्टीट्यूट" है। प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय में किस प्रकार पढ़ाई होती थी-इस विषय में बम्बई के "धर्मयुग" में श्री देवनन्दन प्रसाद सिंह ने एक उत्तम लेख लिखा है। वे लिखते हैं:—

"नालन्दा विश्वविद्यालय के भग्नावशेष राजगृह और विहार शरीफ़ के बीच बड़गाँव पटना से ५५ मील दक्षिण पूर्व और राजगृह से ८ मील उत्तर की ओर हैं। नालन्दा का खण्डहर बिहार बख्तियार पुर रेलवे के नालन्दा से लगभग ३ मील पश्चिम में है।

नालन्दा विश्वविद्यालय के पढ़ाई बहुत उच्चकोटि की थी। यहाँ न केवल बौद्ध शिक्षा का केन्द्र था बल्कि यहाँ वेद, उपनिषद् आदि हिन्दू ग्रन्थों का पाठन-पाठन होता था। और साथ ही साथ विष्णु, शिव, पार्वती, गज, लक्ष्मी, कुबेर, सरस्वती, गणेश, तथा सूर्य की भी पूजा होती थी। नालन्दा महाविहार में प्रवेश पाने की इच्छा लेकर चीन, कोरिया, सावा, सुमात्रा, तिब्बत, नेपाल, मध्य एशिया और सिंहल द्वीप तक के छात्र आते थे। इन सभी को प्रवेश परीक्षा में बैठना पड़ता था। यह परीक्षा नालन्दा के द्वारपंडित लेते थे। पंडित उनसे शास्त्रार्थ करता था। बहुधा प्रति दस छात्रों में सात-आठ छात्र असफल हो कर लौट कर जाते थे।

नालन्दा महाविहार में प्रति दिन १०० व्याख्यान होते थे। पढ़ाए जाने वाले विषयों में बौद्ध धर्म, बुनियादी तालीम, कृषि, तन्त्र-मन्त्र शास्त्र, शब्दविद्या (व्याकरण) हेतुविद्या (दर्शन, योगशास्त्र) शिल्प, स्थान विद्या, चिकित्सा विज्ञान, अध्यात्म विद्या, सांख्यवाद, साहित्य, धर्मवेद, आगम, उपनिषद् आदि थे। यहाँ शिक्षा के दो विभाग थे, प्राथमिक और उच्च। प्राथमिक शिक्षा में सबसे पहले व्याकरण पढ़ना पड़ता था। उसके बाद क्रमशः हेतुविद्या, अभिधर्म कोष और जातक का अध्ययन करना पड़ता था।

विश्वविद्यालय का नियमानुशासन भी प्रशंसनीय था। संघ के सभी निवासियों को सब काम ठीक समय पर करने पड़ते थे। पूजापाठ, भोजन, शयन सबके लिए समय नियत था। समय के ज्ञान लिए जलघड़ी का प्रबंध था। यह जलघड़ी तांबे के एक तसला से बनी हुई थी। इसे जल से भर दिया जाता था और इस जल में तांबे की एक हलकी पतली और छोटी-सी प्याली तैराई जाती थी जिस के पेंदे में सुई के छेद का-सा सुराख़ रहता था। इसी सुराख़ से जल धीरे-धीरे प्याली में भरता जाता था! दो प्रस्त (जल नापने का माप) जल भरते ही प्याली तसले के जल में डूब जाती थी। प्रातःकाल तक प्याली के जल में डूबने की क्रिया आठ बार होती थी। अर्थात् चार प्रहर दिन के और चार प्रहर रात के होते थे। प्रातःकाल प्याली के प्रथम बार डूबते ही ढोल पर एक चोट की जाती थी। दूसरी बार ढोल पर दो और तीसरी बार तीन चोट की जाती थी। परन्तु प्याली के चौथी बार डूबने पर ढोल पर चार चोट की जाती थीं और दो बार शंखध्वनि होती थी। यह पहला पहर होता था। इस पहर में सूर्य पूर्व दिशा के क्षितिज पर में दिखाई देता था। प्याली के चार बार डूबने की क्रिया दुबारा पूरी होने पर दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहर होता था। इस समय ढोल पर चार चोट, एक बार शंखध्वनि और ढोल पर दो चोट फिर होती थी। वह मध्याह्न का समय होना था। इसी प्रकार की क्रिया मध्याह्न के बाद भी होती थी। इस जलघड़ी से वर्षा ऋतु में जब काले-काले बादल आकाश में छाते थे, उस समय भी इसका कार्यक्रम चालू रहता था और समय का पता ठीक-ठीक लग जाता था।

नालन्दा की शिक्षा निःशुल्क होती थी। हुएन सांग ने लिखा है कि देश के तत्कालीन राजा ने एक सौ गाँव का कर विश्वविद्यालय के लिए निःशुल्क दान कर दिया था। इन गाँवों के २०० गृहस्थ भी पारी-पारी से कई सौ मन चावल, दूध तथा मक्खन प्रतिदिन दान करते थे। छात्रों को विश्वविद्यालय की ओर से इतना अधिक खाने और पहनने को मिलता था कि वे अपने जीवन की चारों अवश्यकताओं-जैसे भोजन-वस्त्र, बिछाव और औषधि के सम्बन्ध में चिन्ता से मुक्त हो कर निःशुल्क शिक्षा पाते हुए हमेशा ज्ञान विज्ञान दत्त-चित्त रहते थे। नालन्दा में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था। इसके लिए यहाँ के धर्मगज नामक स्थान में तीन भवन निर्मित हुए थे। इनके नाम रत्नसागर, रत्नदधि और रत्नरंजक थे। इनमें रत्नदधि नौमंजिला था। यद्यपि अब इसका कोई चिह्न शेष नहीं रह गया है। इस नौमंजिले में असंख्य पुस्तकें सजी रहतीं थीं। तीनों भवन बुद्ध के जीवन, उनके धर्मोपदेश और उनके प्रतिस्थापित संघ पर लिखे गए हज़ारों ग्रन्थों और पांडुलिपियों से परिपूर्ण थे। पांडुलिपियाँ विभिन्न भाषाओं में लिखी होती थीं। पुस्तकालय में बौद्ध धर्म की प्रतिलिपियाँ तैयार करने के लिए अनेक भिक्षु नियुक्त थे। दूर-दूर के विद्वान् आ कर यहाँ के ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ ले जाया करते थे। हुएन सांग यहाँ दो वर्ष रह कर छः सौ सत्तावन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार करके अपने साथ ले गया था।

संक्षेप में नालन्दा-विश्वविद्याय की यही अमर कहानी है। और यह बहुत हर्ष की बात है कि विहार सरकार ने नालन्दा के भग्नवशेषों के निकट ही पाली तथा बौद्ध दर्शन के उच्च शिक्षा के लिए एक विश्वविद्यालय की योजना बनाई है। विश्वविद्यालय का नाम मगध इन्स्टिट्यूट है। इस संस्था के लिए बिहार सरकार ने भवन बनाने के लिए ५०,००० रुपया और वार्षिक व्यय के लिए २३,००० रु० देने का वादा किया है। यहाँ पाली में एम. ए. की पढ़ाई होगी। एम. ए. में वही व्यक्ति लिए जाएँगे जिन्होंने संस्कृत ले कर बी. ए. पास किया है। इस समय इन्स्टिट्यूट के डाइरेक्टर भिक्षु श्री जगदीश कश्यप जी हैं। लङ्का, तिब्बत, आदि देशों से भी कई योग विद्वान प्रोफेसर आ रहे हैं। कुछ समय के लिए इन्स्टिट्यूट का आफिस नालन्दा कॉलेज, बिहार में रखा गया है।"

: :

(२)

विश्व संस्कृति के कोष की आवश्यकता

बम्बई के इसी सुन्दर सप्ताहिक पत्र में अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीयुत मुल्कराज आनन्द ने विश्व की संस्कृति के विषय में लिखा है:—

"इतिहासकार किसी भी संस्कृति का इतिहास लिखते समय सत्य का गला घोंटकर उसे झूठे रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। इसलिए हमें यदि इतिहास की सचाई भली भांति जानना है, तो हमें चाहिए कि उसके कोमल और कच्चे डोरों का पुनः बिना किसी पक्षपात के एकत्रीकरण करें। इसी तरह हम ऐतिहासिक असत्य का अनावरण कर सकेंगे।

इतिहासकार "सच्ची घटनाओं" की अपेक्षा "काल्पनिक विचारों" को अधिक महत्व देता है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे "विचार" "गूढ़ भावनाएँ" अथवा "दृष्टिकोण" किसी समय यथार्थ माने गये हों अथवा किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण उन्हें प्रचलित होने का अवसर मिला हो परन्तु वर्तमान का भी तो अपना अस्तित्व है, वर्तमान भी तो कालशून्य नहीं है। उलटे हम एक ऐसे वातावरण में रहते हैं, जो हमें भूतकाल की घटनाओं के परस्पर संघर्ष से और परिवर्तन की कितनी ही सीढ़ियां चढ़ जाने पर प्राप्त हुआ है, और यदि भूतकालीन सभ्यता की विचारधाराओं एवं दृष्टिकोण का कुछ महत्व है तो वह यह है कि वे हमारे वर्तमान सम्पूर्ण को बनाए रखने में सहायक होते हैं। वर्तमान जीवन-संघर्ष के थपेड़ों से बचने के लिए हम उनका सहारा ढूंढने नहीं जाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास के "महान् विचारों" को यदि छोड़ दिया जाय तो इतिहासकार अपने दृष्टिकोण की पुष्टि के लिए इतिहास में से सच्ची घटनाओं को भी अलग निकाल कर मनमाने ढंग से प्रदर्शन नहीं कर सकते, यदि हमारा लक्ष्य लोगों को विषय की पूरी जानकारी देना है, तो सारी घटनाओं का संग्रह कर उचित क्रम से जांचना जरूरी है, जिससे हमें यह पता लग सके कि इतिहास की आत्मिक गति-विधि आर्थिक, राजनैतिक एवं माननीय परिस्थितियों की परस्पर भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं के भीतर से वर्तमानकालीन विश्व घटनाओं से किस तरह आकर मिलती है, इसके लिए क्रम बनाये रखना अनिवार्य है।

यह निष्पक्ष दृष्टिकोण विश्व संस्कृति के कोष निर्माण की आवश्यकता की ओर इंगित करता है, किन्तु यह कोष किसी एक इतिहासकार द्वारा नहीं लिखा जाना चाहिये। विश्वकोष को यदि सचमुच ज्ञान का प्रामाणिक भण्डार बनाना है तो उसका निर्माण एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के लोगों द्वारा होना चाहिये, जो वैज्ञानिकों की तरह किसी भी राष्ट्र के मातहत न हों; साथ ही वह विश्व इतिहास इतना संक्षिप्त न हो कि केवल प्राध्यापक एवं विशेषज्ञ ही उससे लाभ उठा सकें! किन्तु उसे इस ढंग से लिखा जाना चाहिये कि जन साधारण भी उससे पूरा लाभ उठा सकें, और इतिहास का पूरा एवं सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकें।

इतिहासकार के रास्ते में अन्य कठिनाइयाँ भी आती हैं। उदाहरण के रूप में वास्तविक घटनाओं का एकत्रीकरण करना होता है। कहा जाता है कि जब सर वाल्टर रैले को लन्दन टावर में कैद किया गया तो उन्होंने अपना समय बिताने के लिए विश्व इतिहास लिखने की ठानी। उन्होंने प्रथम भाग लिख डाला, और दूसरा भाग लिखना शुरू किया। जब वे दूसरा भाग लिख रहे थे तो एक दिन नीचे सड़क पर कुछ आदमियों में उपद्रव हो गया और उसमें से एक मारा गया, यद्यपि सर वाल्टर रैले ने स्वयं ऊपर खिड़की में से अपनी आंखों यह दृश्य देखा था और अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्होंने खूब पूछताछ की। उन्हें इस कांड का मूल कारण कभी नहीं मालूम हुआ। इस पर उन्होंने जो कुछ अब तक लिखा था सारा जला दिया और विश्व इतिहास लिखने का विचार भी छोड़ दिया।

इस उदाहरण से भावी इतिहासकार को एक चेतावनी मिलती है। आज के विश्व में जब कि सामूहिक रूप से "सत्य" का गला घोंटा जाता है, इस चेतावनी को क्रिया में लाना बहुत आवश्यक है।"

: :

(३)

टालस्टाय और रवीन्द्रनाथ

कलकत्ता के नवम्बर के "नया समाज" में एशिया के प्रसिद्ध चित्रकार निकोलाई रोरिक का "टालस्टाय और रवीन्द्रनाथ" पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। वे लिखते हैं:—

"एक महान् लेखक और कलाकार होने के नाते टालस्टाय का जीवन आश्चर्यजनक है। उनके जीवन की प्रत्येक घटना ने लोगों के मन में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी थी। जब उन्हें 'धर्मच्युत' किया गया, तो जनता की सद्भावना उनके साथ थी। प्रकाशित ग्रन्थों के अलावा रूस के समाज में उनके बहुत-से जब्तशुदा निबन्ध और पत्र पढ़े जाते थे। धर्म से निकाले जाने के कारणों पर लोग चुपके-चुपके बातें करते थे। उनकी सम्राट् से भेंट के बारे में भी अफ़वाहें उड़ती थीं। अनेक लोग उनकी भविष्यवाणियों पर बहस किया करते थे। बाद में इन सब भविष्यवाणियों की घोषणा अखबारों में हुई। इस पूर्वदर्शी को युद्ध तथा अन्य घटनाएँ पहले से ही दिखाई पड़ गई थीं।

उनके बारे में प्रत्येक खबर का जिज्ञासापूर्वक इंतजार किया जाता था, मानो सरकार के मुकाबले में भी उनके विचार अधिक शक्तिशाली हों। उनके साहित्य में बुराई का मुकाबला न करने, मानव-प्रेम और वास्तविक जन-शक्ति के जोरदार उपदेशों के सिवा बहुत-से कारुणिक विवरण भी थे, जैसे 'पेड़ की मौत पर'। भारत में इन सरल सत्य गर्भित शब्दों का सही मूल्यांकन होगा, जिनमें कि सर्वव्यापी जीवन-शक्ति का विचार भरा हुआ है। टालस्टाय ने अपनी एक पात्री नटाशा के मुँह से कहलवाया है—"हाँ, मैं सोचता हूँ कि हम लोग जा रहे हैं, हम लोग घर जा रहे हैं। लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर ही जानता है कि हम लोग इस अंधकार में किस ओर जा रहे हैं। शायद हम लोग कहीं पहुँच जाएंगे और अपने आपको परियों की कहानी के देश में पाएँगे।..."

जब वे हाथ में हल लेकर शारीरिक श्रम करते थे, तब उनके हृदय में एक सुन्दर देश की कल्पना निवास करती थी। यह व्यक्ति अथक परिश्रम से बीज बोता था, और ये बीज रूसी लोगों के दिमाग़ में जमकर बैठ गए थे। टालस्टाय के नाम पर रूस में असंख्य म्यूज़ियम, वाचनालय, पुस्तकालय आदि हैं। टालस्टाय ने एक छोटे-से रेल्वे-स्टेशन पर अपनी महायात्रा की। क्या इससे भी अधिक शानदार समाप्ति की कल्पना की जा सकती है! यह एक महान् यात्री की यात्रा का महत्त्वपूर्ण अन्त था। ऐसा अन्त कल्पनातीत है। इसीलिए प्रारम्भ में समूचे रूस को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। मुझे वह समय याद है, जब इलेना इवानोवना (मेरी पत्नी) ने इस दुर्घटना की ख़बर दी। वे बार-बार कह रही थीं—"इसपर विश्वास नहीं होता—विश्वास करने को जी नहीं चाहता। ऐसा प्रतीत होता है, मानों कोई विशेष चीज़, रूस का कोई भाग हम लोगों ने खो दिया हो; मानों एक युग की ही समाप्ति हो गई हो!"

एक बार फिर इलेना इवानोवना एक खबर लाई, लेकिन यह दूसरी तरह की थी। वे एक किताब की दुकान से टागोर की 'गीतांजलि' का अनुवाद ख़रीद लाईं। ये मधुर कविताएँ भी इन्द्रधनुष की भाँति मनोहर थीं। उस समय तक रवीन्द्रनाथ को रूस के लोग पूरी तरह नहीं जानते थे कि टागोर का यश सारी दुनिया में फैला हुआ है, लेकिन तब तक हम लोगों को इस महाकवि के हृदय को पहचानने का मौका नहीं मिला था।

'गीतांजलि' हमें देववाणी की तरह मालूम पड़ी। ये कविताएँ सभाओं और पार्टियों में पढ़ी गईं। वास्तविक प्रतिभा के द्वारा ही एक दूसरे को भली भाँति समझना सम्भव होता है। एक दूसरे को समझना रहस्य पूर्ण चीज़ है। सौन्दर्य के स्रोत को शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रत्येक हृदय ज्योति के सम्पर्क में आने से आनन्दित हो उठता है। सौन्दर्य की यही अनुभूति टागौर में है। वे कैसे होंगे? यह महान् विचारक और सौन्दर्य-स्रष्टा कहाँ और कैसे रहता होगा? प्राची का स्वाभाविक ज्ञान-प्रेम इस कवि की करुणामयी पुकार से भरी हुई वाणी में पाया जा सकता है। हर एक आदमी का हृदय टागौर के प्रति प्रेम से भर गया। यह साफ़ ज़ाहिर हो गया कि परस्पर-विरोधी स्वभाव और विचारवाले जनों में इस कवि की पुकार पर एकता स्थापित हो गई जैसे मंदिरों में गाए हुए प्रार्थना-गीत पर सारे मानव-हृदय एक हो जाते हैं। हर कोई जानता है कि टागौर क्षुद्र संसार के प्राणी नहीं हैं; वे सत्य और सौन्दर्य के संसार के वासी हैं।

कला के ऊपर उनकी प्रेरणापूर्ण बात-चीत और चित्रों के बारे में पत्र भी उतने ही चिरस्मरणीय हैं। इसके बाद हम लोगों की मुलाकात अमरीका में हुई, जहाँ कवि ने सौन्दर्य के नियम और परस्पर प्रेम-सम्बन्ध पर प्रभावपूर्ण व्याख्यान दिए थे। यहाँ कभी-कभी वे उतने ही आश्चर्यजनक प्रतीत होते थे, जितने कि टालस्टाय का परियों की कहानी का देश! इसमें टागौर की सफलता अधिक महत्त्वपूर्ण थी, जिन्होंने सौन्दर्य का संदेश देते हुए सारे संसार की अथक यात्रा की थी। चीन में कवि ने कहा था—"सभ्यता को अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति सौन्दर्य में पाने की आशा है।" इस सम्बन्ध में टागोर की पुस्तकों में से उनकी प्रार्थनाओं और समुन्नत जीवन के लिए आदेशों के अनेक उद्धरण दिए जा सकते हैं, जो अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक कवि के हृदय को चित्रित करते हैं।

क्या यह पुकार जीवन से दूर भागने की है? क्या यह कोरी कवि-कल्पना है? नहीं, कभी नहीं। चरम सत्य पार्थिव जीवन में ही प्राप्त हो सकता है। कुछ अज्ञान के पुतले कह सकते हैं कि टागोर और टालस्टाय के शब्द कोरी कल्पनाएँ हैं, यथार्थ नहीं। यह ग़लत है और सरासर ग़लत है। क्या यह कल्पना-मात्र है कि लोग सुन्दरतापूर्वक रहें? क्या यह कल्पना-मात्र है कि लोग एक-दूसरे की हत्या न करें? क्या यह कल्पना-मात्र है कि लोग अपने चारों ओर के वातावरणों में ज्ञान फैलाएँ? यह काल्पनिक नहीं वरन् यथार्थ है—उतना ही सत्य है, जितना यह कि लोग यथासम्भव एक-दूसरे की सहायता करें। यदि सौन्दर्य ज्योति पृथ्वीतल पर नहीं आएगी, तो जीवन असह्य हो जाएगा। मानवता कितनी कृतज्ञ है इन महान् विचारों के प्रति, जो सदा आत्मदान और जीवन के वास्तविक आधार का पाठ पढ़ाते रहे! सुन्दरता के इन नियमों के बिना जीवन इतना कुरूप हो जाएगा, इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैवानियत भर जाएगी कि साँस लेना भी मुश्किल हो जाएगा। कुरूपता भंयकर चीज है।"

: :

४

अमर संदेश

हिन्दी के मासिक पत्रों में पटने से निकलने वाली "नई धारा" का एक विशिष्ट स्थान है। इन में श्रीयुत सुरतदास, एम. ए. का अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि Wordsworth की प्रसिद्ध कविता Ode to Immortality का भावानुवाद प्रकाशित हुआ है। इसका कुछ अंश यहाँ दिया जाता है:—

समय भागता गया किन्तु अपनी द्रुतगति से।
और एक दिन
देखा विस्मित नयनों से अल्हड़ बालक ने
जैसे सब कुछ नया-नया सा था धरती पर,
नई चमक से दृप्त हो उठे चंचल लोचन
नए रक्त से स्वयं भर गई युवा-शिराएँ
जाने किस मुहूर्त में उर में जाग उठी थीं
किस के साहचर्य की अद्भुत नई वासना
बाँध लिया था उसको नए-नए पाशों ने
उलझ गई थीं उसकी बाँहों में दो बाहें
फूलों-सी सुकुमार, भरी विद्युत-स्पर्शों से।
दूर निकल आया था सचमुच घर से राही।
भूल चुका था—देख नई इस चकाचौंध को
अपने ही आलोक कोष जो
कभी बहुत पहले उसको उपहार मिले थे।
केवल कभी-कभी विस्मृति के अंधकार में,
कौंध एक पल जाती थीं स्वर्णाभ बिजलियाँ
जो अब भी लगती थीं कुछ-कुछ पहचानी-सी
और लौट आने का पथ इंगित करती थीं।

और आज वह दिन है जब मैं सोच रहा हूँ
क्या मेरा ही था सचमुच वह भोला बचपन
एक झलक भी मुझ को आज नहीं मिल सकती
अपने उस अक्षय प्रकाश की
जिसके बीच कभी मैंने आँखें खोली थीं।

एक नींद ही तो है धरती का यह जीवन
हाय तभी तो
मुझ को कुछ भी पता नहीं अपने उस घर का
जहाँ—युगों पहले जाने किस रूप नाम से
मेरे निर्माता ने मुझ को जन्म दिया था।"

: :

५

ऋषि अरविन्द का ज्योतिर्देह

राजा जनक को विदेह कहा जाता है। ऋषि अरविन्द ज्योतिर्देह थे। उनके विषय में ऋषि अरविन्द के लिपिक प्रमुख साधक श्री डा. नीरदवरण ने जो उनकी सेवा में १९३८ से उनके जीवन के अंतिम क्षण तक सेवा में रहे-उनके कुछ संस्मरण लिखे हैं। ये संस्मरण कानपुर की मासिक पत्रिका 'सुमित्रा' में प्रकाशित हो रहे हैं। कुछ अंश यहाँ दिया जाता है:—

"१९१० ई० के बाद से अबतक—उसके पहले का पता नहीं कोई भी डाक्टरी दवा उनके शरीर के भीतर नहीं गई थी। वैसे भी इनका एक शिशु का-सा ही शरीर था—"वैसा ही सुकुमार, वैसा ही सुन्दर और वैसा ही कान्तिमय; उनके हाथ-पाँव साँचे में ढले हुए-से थे; स्पर्श भी पक्षी के पंख-सा ही सुकोमल था। जिन्हें उनके शरीर के स्पर्श करने का सौभाग्य मिला है, वही उस शरीर की स्नेह भरी स्निग्धता को समझ सकते हैं। मानवीय होते हुए भी उनका यह शरीर एक पवित्र सचेतन देवालय था और अतिमानस ज्योति के अवतरण से उसके रूप और गठन का रूपान्तर हो रहा था। कई बार अपनी आंखों से उनके इस दिव्य शरीर को निरखने का सौभाग्य हुआ है। मेज के सामने बैठे कुछ लिख रहे हैं, विशाल-वक्षःस्थल खुला पड़ा है, मानों न उनके हाथ हैं, न पाँव हैं, न वक्षःस्थल है, बस ज्योति की दीप्तशिखा-सी ही मूर्ति है, जिसमें हाड़-मांस की स्थूलता है ही नहीं। इस शुभ्र निर्मल आलोक में एक्स-रे की तसवीर की भांति ही आर-पार तक दीख पड़ता है। शरीर के किसी भी अंग से मर्त्य मानव-देह का आभास तक नहीं मिलता था। अर्धशायित अवस्था में भी उन्हें देखा है, निराभरण, दिव्य सुषमा मंडित, चुपचाप लेटे हुए 'स्वर्णशिशु' से जान पड़ते थे। दोनों हाथ सिर के पीछे धरे हैं, दृष्टि ऊपर की ओर लगी है, ओठों के कोने में दिव्य आनन्द की मन्द-मन्द मुस्कान है मानों माँ की गोद में शान्तिपूर्वक विश्राम कर रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079517

सम्पादकीय

शिक्षा का प्रश्न

हमारे देश पर विदेशी शासन का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा है कि हम अपने देश को अभी तक भी बहुत कुछ भूले से हुए हैं और अपने प्रश्नों पर गंभीरतया विचार नहीं करते। जब से हमारे देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, तब से जो प्रश्न सब से अधिक उपेक्षित रहा है वह प्रश्न शिक्षा का है। शिक्षा का क्षेत्र कुछ ऐसा हो गया है कि उससे न तो विद्यार्थी संतुष्ट हैं और न अध्यापक। विद्यार्थियों के हड़ताल के समाचार तो हम पढ़ा और सुना करते थे। परन्तु अब अध्यापकों के हड़ताल के समाचार आए दिन मिलते रहते हैं। स्कूलों और कालेजों के अनुशासन की कुछ ऐसी अवस्था है कि उनका नियंत्रण असंभव-सा हो गया है। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही है और इसलिये यह नियंत्रण और भी अधिक कठिन हो गया है। उर्दू के कवि अकबर का एक प्रसिद्ध शेर है।

"तालीम है बच्चों की कि एक दामे बला है।
ऐ काश ! कि इस अहद में हम बाप न होते।"

यदि हम इस शेर में इतना-सा परिवर्तन करदें तो यह इस तरह हो जाएगा यद्यपि इसमें छन्दोभंग हो जाएगा:—

"ऐ काश ! कि इस अहद में हम अध्यापक न होते"

हमारे देश में आज अध्यापकों की जैसी छीछालेदर हो रही है, वैसी और किसी की नहीं। अंग्रेज़ों ने जो शिक्षा-प्रणाली हमारे यहाँ प्रचलित की थी वह अधिकतर क्लर्कों को तैयार करने के प्रयोजन से थी। परन्तु आज स्वतन्त्रता को प्राप्त हुए लगभग ५ वर्ष हो रहे हैं, परन्तु हमारी शिक्षा-प्रणाली में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। एकमात्र भाषासंबन्धी वाद-विवाद होते रहते हैं। शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा या प्रांतीय भाषाएँ होनी चाहिएँ। बस इसी एक प्रश्न पर शिक्षा के समस्त प्रश्न सीमित-से हो गए हैं।

शिक्षा एकमात्र भाषाज्ञान का ही तो नाम नहीं है। वह तो एक क्रियात्मक वस्तु है; वह एक शक्ति है और जब तक हमारे देश में शिक्षा-प्रणाली का उचित परिवर्तन नहीं होगा, तब तक हमारे देश में हम न तो नव जीवन और जागृति उत्पन्न कर सकेंगे और न ही हम देश की आवश्यकताओं को व्यवस्थित रूप से पूर्ण कर सकेंगे और न शिक्षा शक्ति के रूप में आविर्भूत हो सकेगी।

इस शिक्षा प्रणाली का पहला यह दुष्परिणाम हुआ है कि हम अपने देश निवासियों के साथ, चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित, किसी प्रकार का सबन्ध या एकता का अनुभव नहीं करते हैं और इसीलिए हमारे देश की अधिकांश जनता के विविध प्रकार के प्रश्नों पर हमारा ध्यान जैसा आकृष्ट होना चाहिए वैसा आकृष्ट नहीं होता। दूसरा यह कि हमारे विचारों और आचरणों में एकता या सामंजस्य नहीं है और तीसरा यह है कि इस शिक्षा के द्वारा हमारे जीवनों में कोई Dynamic शक्ति उत्पन्न नहीं होती; हम में मनुष्यत्व का विकास नहीं होता। हम में चिन्तन शक्ति उत्पन्न नहीं होती।

आज अनाज के कमी के कारण हम खेतों की ओर कुछ ध्यान देने लगे हैं और यह आवाज़ हमारे देश में उठाई जा रही है और इस आवाज़ को उठानेवालों में श्री जवाहरलाल नेहरू भी हैं। उनका मत है कि यूनिवर्सिटी के किसी भी ग्रेजूएट को तब तक उपाधि न दी जाय, जब तक वह ग्रामों में खेती करने की सनद प्राप्त न कर ले।

यह सत्य है कि हमारे देश की अन्न और अर्थ की समस्या बड़ी विकट है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे देश की यही एक मात्र बड़ी समस्या है। जब तक हमारे देश की जनता में शिक्षा का प्रचार न होगा तब तक न तो अधिकांश जनता अपने प्रश्नों को समझ सकेगी और न उन पर विचार कर सकेगी। इसका परिणाम यह होगा कि अपनी समस्याओं को हल करने में जैसे वह कुछ समय पूर्व ब्रिटिश सरकार की ओर देखती थी उसी प्रकार अब अपनी सरकार की ओर देखती रहेगी। वह अपने उत्तरदायित्व को किसी प्रकार समझ न सकेगी। हमें समझ नहीं पड़ता कि यह शिक्षा का प्रश्न कब तक टाला जाएगा ?

साहित्य चर्चा

हम अन्यत्र 'अजन्ता' के इसी अंक में मान्यवर बन्धु श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी का साहित्य-चर्चा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी की दिल्ली में अभी ६० वीं वर्षगांठ मनाई गई है। हम इस शुभ अवसर पर उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें चिरायु करे। श्रीयुत चतुर्वेदी जी ने 'अजन्ता' को अपनाया है इसके लिए हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं।

उन्होंने हिन्दी के पत्रों के स्तर को ऊंचा करने में, लेखकों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने में, उन्हें उच्च प्रेरणा देने में, उनके व्यक्तिगत जीवन के विकास में और उपेक्षित साहित्यकारों को प्रकाश में लाने में जो कार्य किया है और अब भी कर रहे हैं वह स्तुत्य और अनुकरणीय है। यदि वे चाहते तो वे आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे। परन्तु आज भी वे इस आयु में एक वीर योद्धा की तरह अपने विचारों के अनुसार सब कठिनाइयों का सामना करते हुए साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना ही आदर्श उपस्थित कर रहे हैं।

आपने अपने पत्रों में जिन विचारों को व्यक्त किया है हम उनसे पूर्णतया सहमत हैं। उनके विचारों से तो सदा हमें प्रेरणा प्राप्त होती है। परन्तु कर्म का क्षेत्र ही कुछ ऐसा है कि उसमें बहुत-सी सीमाओं, कमज़ोरियों और निर्बलताओं को लेकर ही चलना पड़ता है। इसमें कदम कदम पर अपनी इच्छा के विरुद्ध समझौता और कार्य करना पड़ता है। आज तीन साल हुए हिन्दी प्रचार सभा ने 'अजन्ता' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। यह पत्र इसलिए नहीं निकाला गया था जैसा कि श्री चतुर्वेदी जी अपने पत्र में लिखते हैं:—"वह व्यक्ति जिसके पास पाँच सात हज़ार रुपए खोने के लिए होता है, पत्र संचालन का काम प्रारम्भ कर देता है। और फिर साल डेढ़ साल में अपने रुपए खो कर बैठ जाता है और दोष जनता पर मढ़ता है।"

हमने 'अजन्ता' इसलिए नहीं निकाला कि हमारे पास कुछ हज़ार रुपए थे। परन्तु इसलिए निकाला, क्योंकि यहाँ दक्षिण देश में एक इस प्रकार के मासिक पत्र की आवश्यकता थी जो उत्तर और दक्षिण के साहित्य को एक जगह पर प्रस्तुत करने के साथ साथ इस देश में साहित्य की हिन्दी भाषा के द्वारा कुछ ठोस सेवा संगठित रूप में कर सके और आज भी हम 'अजन्ता' का प्रकाशन इसी उद्देश्य से कर रहे हैं।

हम जानते हैं कि हमें इस कार्य में अभी तक विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है और अभी बहुत दिनों तक सफलता प्राप्त नहीं होगी तो भी क्योंकि हमें इस कार्य को करना है इसीलिए हम इस कार्य को कर रहे हैं। सभा को इस पत्र के पीछे काफ़ी व्यय करना पड़ता है और हम इस व्यय करने में फ़िल हाल और वृद्धि कर रहे हैं। परन्तु सभा को घाटा होते हुए भी हम इसको किसी भी हालत में "खोना" नहीं समझते। हम इस "खोने" को ही अपनी प्राप्ति समझते हैं। इस समय 'अजन्ता' में जो भी लेख आदि प्रकाशित होते हैं 'अजन्ता' अपनी शक्ति के अनुसार सब लेखकों और कवियों को पारिश्रमिक देने का प्रयत्न करता है।

हम अपने पत्र में यथासम्भव प्रत्येक प्रकाशित पत्र तक के लिए भी पारिश्रमिक देते हैं और हमें दुःख यह है कि हम लेखकों आदि को जितना पारिश्रमिक देना चाहते हैं उतना नहीं दे पाते। तो भी हम लगभग ३०० रुपए मासिक पारिश्रमिक देने में ख़र्च करते हैं। यदि अजन्ता को कुछ प्राप्त होगा तो हम यह प्रयत्न करेंगे कि उसे किसी न किसी तरह लेखकों आदि की ही भेंट कर दिया जाए।

जिस तरह से आज कृषि के क्षेत्र में सहयोगी कृषि (Cooperetive farming) की योजना बनाई जा रही है और जिस तरह से व्यापारी क्षेत्र में सहयोगी संस्थाएँ बन रही हैं, उसी तरह से हम पत्रों को भी लेखकों की एक प्रकार की सहयोगी संस्थाएँ बनाना चाहते हैं। क्योंकि कोई पत्र तभी अपने आदर्शों को पूर्ण कर सकता है जब कि उसे ऐसे योग्य लेखकों का सहयोग प्राप्त लगातार होता रहे जो कि उस पत्र को सर्वथा आत्मीय समझें। हम श्री चतुर्वेदी जी के इस विचार से पूर्णतया सहमत नहीं हो सकते—"तब तक मौजूदा अख़बारों से ही काम लिया जाए।" हमारे देश में जब पत्रकारिता सफल हो जाती है, तो वह कुछ प्रिविलिज्ड लोगों की (vested interests) वस्तु बन जाती है। उनमें साधारण और ग़रीब लेखकों का प्रवेश सुगमतया नहीं हो पाता। इसका बहुत लोगों को कटु अनुभव है। इस समय भी हिन्दी के ही बहुत से पत्र प्रकाशन इन्हीं प्रिविलिज्ड लोगों के ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखों को प्रकाशित करने के योग्य समझते हैं और अन्य लेखकों के लिए उनके द्वार खटखटाने पर भी बंद रहते हैं। इसलिए बाधित हो कर असमर्थ होते हुए भी लोगों को नए अखबारों को निकालने का उपक्रम करना ही पड़ता है चाहे उसमें कितना ही क्यों न घाटा उठाना पड़े। फिर प्रत्येक पत्र का अपना ही आदर्श और अपनी पद्धति होती है।

उनके पत्र में एक बात और रह जाती है। वे लिखते हैं और ठीक ही लिखते हैं कि आज हिन्दी के क्षेत्र में सम्पादक का कार्य उस साधनसम्पन्नता और योग्यता से नहीं होता जैसा कि वह होना चाहिए। हम समझते हैं कि पत्रकारिता का ही क्षेत्र क्यों अभी प्रायःसभी क्षेत्रों में बहुत कुछ इसी प्रकार की अवस्था है। हम श्री चतुर्वेदी जी से यह पूछना चाहते हैं कि जिन पत्रकारों की उन्होंने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है जैसे कि श्री रामानन्द बाबू और श्री चिन्तामणि जी, महावीर प्रसाद जो द्विवेदी और गणेश शंकर विद्यार्थी। क्या इन लोगों ने पत्रकारिता के कार्य को किसी से सीखा था? उन्होंने भी पत्रकारिता की किसी स्कूल या कालेज में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। वे भी इस क्षेत्र में एक दिन वैसे ही नौसिखुए (Novices) थे, जैसे कि आज बहुत से हिन्दी के पत्र-संपादक हैं।

कार्य की धुन, लगन, दृष्टि, अध्यवसाय एक सच्चे कार्यकर्त्ता को अपने आप ही बहुत कुछ सिखा देते हैं। हमारी इन पंक्तियों को लिखने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि पत्रकारिता के क्षेत्र में शिक्षा का प्रबन्ध नहीं होना चाहिए। यदि पूर्णतया शिक्षित और सर्वसाधन संपन्न कुशल व्यक्ति पूरी लगन और धुन के साथ इस क्षेत्र में अवतीर्ण होंगे तो स्पष्ट ही है कि यह कार्य सुचारु रूप से संपन्न हो सकेगा और हमारी भाषा की पत्र कला अन्य देशों के समुन्नत पत्रों से किसी प्रकार पीछे न रह जाएगी।

निर्वाचन

देश के सभी राज्यों में इस समय विधान सभाओं तथा संसद् केन्द्रों के लिए निर्वाचन हो रहे हैं।

भारत गणतन्त्र के इतिहास में यह पहला अवसर है जब लगभग पन्द्रह करोड़ नर–नारियों को समान रूप से अपने भाग्य-निर्णय तथा शासन में भाग लेने का अधिकार मिला है। देश के जिन भागों में निर्वाचन हो चुका है, उसके आधार पर कुछ तथ्यों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

इन निर्वाचनों में अनेक राजनीतिक दलों और स्वतन्त्र व्यक्तियों ने भाग लिया है और ... किस दल की क्या स्थिति रहेगी और इन निर्वाचनों का भारत की राजनीतिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ेगा इस सम्बन्ध में कुछ समय बाद प्रामाणिकता के साथ कुछ कहा जा सकता है।

बहुत से विदेशी राजनीतिज्ञों का यह मत रहा है कि भारत में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है। जब तक देश में शिक्षा का प्रचार नहीं होता और प्रत्येक वयस्क व्यक्ति अपने अधिकार तथा कर्त्तव्यों की जानकारी प्राप्त नहीं कर लेता तबतक प्रजातन्त्र प्रणाली के अनुसार प्राप्त होनेवाले मताधिकार का पूरा पूरा उपयोग नहीं किया जा सकता। हमारे देश में भी इस प्रकार के विचारकों की कमी नहीं है।

अब तक देश के जिन राज्यों में निर्वाचन हुए हैं, उनसे इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है। निर्वाचनों के लिए यह आवश्यक था कि प्रत्येक राजनीतिक दल और स्वतन्त्र उम्मीदवार विचारशीलता से काम ले। जनता इस समय तक सामन्तवादी शासन की अभ्यस्त रही है। यह आवश्यक था कि जनता पर प्रजातन्त्र की प्रणाली और परिणाम का अच्छा प्रभाव पड़ता। कुछ लोग अनुमान लगाते थे कि दल तथा स्वतन्त्र व्यक्ति निर्वाचन संग्राम में इतने नीचे उतरेंगे कि सामान्य जनता गणतन्त्र को हेच दृष्टि से देखने लगेगी। स्वयं सरकार के सम्बन्ध में भी लोग आशंकित थे। निर्वाचन का बहुत सारा काम सरकार द्वारा होता है। यदि सरकार अपने प्रबन्ध में पक्षपात से काम ले या व्यवस्था में किसी प्रकार की ढिलाई हो तो निर्वाचन की प्रामाणिकता कम हो जाती है। चुनावों के लिए सब से अधिक आवश्यक यह है कि साधारण जनता उन पर विश्वास करे।

इस समय केन्द्र तथा सभी राज्यों में कांग्रेस का शासन है। कांग्रेस कुछ समय पूर्व भारत की एकमात्र राजनीतिक संस्था थी किन्तु आज उसकी यह स्थिति नहीं है इस समय देश में अनेक राजनीतिक दल काम कर रहे हैं। इन दलों का प्रभाव दिन पर दिन उसी मात्रा में बढ़ता जा रहा है जिस मात्रा में कांग्रेस का प्रभाव घटता जा रहा है। ऐसी स्थिति में यह आशङ्का थी कि कांग्रेस इन निर्वाचनों को निष्पक्ष रूप से सम्पन्न न होने देगी। कांग्रेस की वर्त्तमान स्थिति का प्रभाव निर्वाचन अधिकारियों तथा जनता पर पड़ सकता था।

अब तक जिन क्षेत्रों में चुनाव सम्पन्न हुए हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इन निर्वाचनों ने जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव स्थापित किया है। यदि दल ... एक दूसरे को लाञ्छित करते, जैसे कि अंग्रेजी शासन में हुआ करता था और मत प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए आतंक तथा अवाञ्छनीय साधनों से काम लिया जाता तो जनता के मन में प्रजातन्त्र के प्रति आस्था उत्पन्न न हो सकती। कुछ अपवादों को छोड़ कर सभी स्थानों पर दलों तथा व्यक्तियों ने बड़े संयम और विचारशीलता से काम लिया है। प्रजातन्त्र को लोक-प्रिय बनाने में इससे बहुत सहायता मिलेगी।

जहाँ तक सरकार और सरकारी कर्मचारियों का प्रश्न है उन्होंने भी अपने कर्त्तव्य को पूरी तरह निभाने का प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में सरकारी कर्मचारियों ने अपना उत्तरदायित्व निभाया है।

जनता ने चुनाव में पर्याप्त रस लिया है। हमारे देश में अभी राष्ट्रीयता के भाव पूरी तरह व्याप्त नहीं हुए हैं, और सांप्रदायिक, प्रान्तीय तथा जातिगत भावनाओं ने सच्ची राष्ट्रीयता को विकसित होने का अवसर नहीं दिया है, फिर भी आंतरिक रूप से कहा जा सकता है कि जनता ने पर्याप्त रूप से विवेक के साथ काम लिया है। अभी उनमें शिक्षा अभाव के कारण पूरी तरह राजनीतिक चेतना उत्पन्न नहीं हुई है फिर भी उसने गंभीरता से अपने दायित्व को पूरा किया है। इससे कहा जा सकता है कि देश में प्रजातन्त्रीय प्रणाली के विकास के लिए अच्छा वातावरण है और किसी को भी इस बात का पश्चात्ताप करने का अवसर नहीं मिलेगा कि अशिक्षित जनता ने अपने मताधिकार का इस तरह दुरुपयोग किया कि प्रजातन्त्रीय प्रणाली पर लोगों को संदेह होने लगे।

चल चित्र और प्रगतिशीलता

कुछ दिन पूर्व हैदराबाद में उर्दू के कुछ प्रगतिशील लेखक और कवि पधारे थे। इन कवियों और लेखकों के एक स्वागत-समारोह में भाषण देते हुए सरदार अली जाफ़री ने चलचित्रों की आलोचना करते हुए कहा–"आजकल हमारे जितने चल चित्र बन रहे हैं, उनका स्तर बहुत नीचा है। वे जनता की भावनाओं को कुत्सित कर रहे हैं। वे हमारे देश की संस्कृति से अछूत और विदेशी खेलों से प्रभावित होते हैं। इस का सबसे बड़ा कारण यह है कि सिने व्यवसाय पर मारवाड़ियों का एकाधिकार है वे किसी भी तरह चार लाख लगा कर आठ लाख प्राप्त करना चाहते हैं।"

जहाँ तक मारवाड़ियों या व्यवसायियों की लोभ लिप्सा का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में हम सरदार अली जाफ़री के विचारों का समर्थन करेंगे। इस बात की बहुत आवश्यकता है कि इस जनोपयोगी व्यवसाय को शीघ्र ही पूँजीपतियों के हाथ से मुक्त कराया जाए। यदि भारत सरकार इस उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर ले तो जनता को मनोरंजन की अच्छी सामग्री मिलेगी और राष्ट्र निर्माण के लिए बहुत पैसा भी मिलेगा।

किन्तु हम अली जाफ़री की इस बात से सहमत नहीं हो सकते कि चल चित्रों की इस दुर्गति का एकमात्र कारण मारवाड़ी ही हैं। इस बुराई में कुछ हाथ हमारे इन प्रगतिशील उर्दू लेखकों और कवियों का भी है। इस समय बम्बई के सिने–निर्माण का पूरा काम इन्हीं लोगों के हाथ में है और उनका यह अधिकार और बढ़ता जा रहा है। कृष्णचन्द्र, विश्वमित्र आदिल, सरदार अली जाफ़री, मजरूह सुलतानपुरी, इस्मत चिगताई आज कहानी, संवाद और गीत लिखते हैं। जब से इन प्रगतिशील लेखकों और कवियों ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया है, तब से बम्बई के चलचित्रों का स्तर गिरता गया है। यहाँ किसी प्रकार की तुलना नहीं की जा रही है फिर भी यह सत्य है जब हिन्दी के अप्रगतिशील (?) लेखक और कवि बम्बई के क्षेत्र में काम कर रहे थे, तब चित्रों का स्तर पर्याप्त ऊँचा था। पन्त, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा नागर तथा अन्य लोगों ने सस्ते गीत और अरुचिपूर्ण संवाद तथा कहानी लिख कर अपनी लेखनी को कलंकित नहीं किया आज भी प्रदीप और पण्डित इन्द्र जी आदि इस परम्परा को निभा रहे हैं! इन दिनों मद्रास और कलकत्ता से अप्रगतिशील (?) लोगों के हाथों जो कथानक और गीत लिखे जा रहे हैं वे अधिक स्वस्थ हैं।

उर्दू के प्रगतिशील लेखक और कवि देश को अरुचिपूर्ण सामग्री देने में उन मारवाड़ियों से किसी भी अंश में कम दोषी नहीं हैं। उनके जैसे विचार हैं उनका प्रयोग उन्हें सिने-क्षेत्र में करना चाहिए यदि वे अपने विचारों को क्रियान्वित नहीं कर सकते तो वे इस विघातक कार्य में क्यों भाग ले रहे हैं।

यदि उन्हें एक गाने का एक हज़ार रुपया और एक कथा का दस हज़ार रुपया मिलता है और रुपयों का यही लालच उन्हें इस व्यवसाय में लगाए रखता है तो फिर उनमें और उन मारवाड़ियों में क्या विशेष अन्तर है जो जनता को खराब से खराब मानसिक भोजन दे कर चार लाख के आठ लाख रुपए बना लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य--विवरण

औरंगाबाद ज़िले की यात्रा

सभा के परीक्षा मन्त्री श्री गोपालरावजी अपसिंगी-कर, शिक्षा मन्त्री श्री पूनमचन्द सीसोदिया तथा प्रधान व्यवस्थापक श्री माणिकलालजी कौल ने औरंगाबाद जिले की यात्रा की। औरंगाबाद के कुछ स्थानों पर सभा का नया कार्य आरंभ हुआ है। इस ज़िले में हिन्दी प्रचार का कार्य बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। सभा की महाराष्ट्र प्रान्तीय शाखा के सञ्चालक श्री रेवाशङ्कर दुबे के प्रयत्नों से स्थान स्थान पर परीक्षा केन्द्र खुल गए हैं और इन वर्गों से लगभग दो हज़ार विद्यार्थी लाभ उठा रहे हैं।

औरंगाबाद के शिक्षा-वर्गों तथा कार्यालय का निरीक्षण करने के बाद यह दल अजंता पहुँचा जहाँ श्री हड़ौतीकर बड़ी लगन से काम कर रहे हैं। अजंता का केन्द्र बिलकुल नया है, फिर भी वहाँ विद्यार्थियों की संख्या दो सौ से अधिक है। स्थानीय स्कूल के प्रधाना-ध्यापक केन्द्र व्यवस्थापक हैं। यहाँ एक बहुत सुन्दर समारोह किया गया जिसमें हिन्दी के महत्व से जनता को परिचित कराया गया। सभा के इन कार्यकर्ताओं ने अन्य स्थानों का भ्रमण कर के कार्यप्रणाली का अध्ययन किया।

वरंगल

सभा के प्रचार मन्त्री श्री लक्ष्मणाचार्य जी, शिक्षा-व्यवस्थापक श्री दादेप्रसाद जी सूर्यवंशी और महाराष्ट्र प्रान्तीय कार्यालय के संचालक श्री रेवाशङ्कर जी दुबे ने वरंगल कार्यालय तथा वहाँ के शिक्षा वर्गों का निरीक्षण किया। इस ज़िले में कार्य को अधिक व्यवस्थित करने और बढ़ाने के लिए योजना बनाई जा रही है।

कार्यकर्ताओं के दौरे

सभा के आन्ध्र प्रान्तीय कार्यालय के संचालक श्री राजवीर जी ने निम्नलिखित स्थानों की यात्रा की। यात्रा के समय स्थान स्थान पर सार्वजनिक सभाएँ आयोजित हुईं जिनमें राजवीर जी ने हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डाला--जम्मीकुण्टा, कमलापूर, मन्थिनी, नल्लाबेल्लि, वर्धन्नापेट, जफरगढ, रायपर्ती, नेल्लिकद्दा, तोर्रुर, वंगरा, हरिप्रियाल, माटेड, गुर्तूर, कोंडापुरम्।

महाराष्ट्र प्रान्तीय कार्यालय के संचालक श्री रेवा-शङ्कर दुबे ने सिल्लोड, विडकन, और पैठण की अकेले तथा हिंगोली के उत्साही युवक श्री गुप्त के साथ हिंगोली, बसमत, गंगाखेड, पूर्णा, परभणी, पाथरी आदि ग्रामों की यात्रा की और कई स्थानों पर सभा के परीक्षा केन्द्र तथा शिक्षा केन्द्र स्थापित किए।

कर्णाटक प्रान्तीय कार्यालय के संचालक श्री शिव-कुमारजी ने अब तक अलन्द, निम्बरगा, यादगीर, राय-चूर, कल्लूर (रायचूर) सिन्दनूर, गंगावती, अनागुन्दी, मुनीराबाद, कोप्पल, शाहबाद, शोरापुर, और गोगी की यात्रा पूरी कर ली है। नांदेड़ ज़िले के प्रचारक श्री श्याम-लाल राठौड़ ने हदगाँव, पूर्णा, उस्माननगर की यात्रा की।

नांदेड़ में प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव

कन्या विद्यालय में प्रधानाध्यापिका जी ने उत्तीर्ण छात्राओं को प्रमाण-पत्र दिए। इस अवसर पर सभा की कार्यकर्त्री श्री जैनबी को पुरस्कृत किया गया।

शाखा सभा की स्थापना

महबूबनगर में सभा के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री गज-राज महेश्वर के प्रयत्न से ९-१२-५१ को शाखा-सभा की स्थापना हुई।

हिन्दी अध्यापन मन्दिर

सभा द्वारा सञ्चालित हिन्दी अध्यापन मन्दिर का पहला शिक्षा-सत्र दिसम्बर मास में समाप्त हो गया। विद्यार्थियों की परीक्षा समाप्त हो गई और वे अपने-अपने घर चले गए हैं।

नया शिक्षा-सत्र १५ जनवरी से शुरु होना चाहिए किन्तु निर्वाचनों के कारण वह १ फरवरी १९५२ से शुरु हो रहा है। जिन विद्यार्थियों ने प्रविष्ट होने के लिए आवे-दन-पत्र दिए हैं, उन्हें पृथक् रूप से सूचित किया जा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो छात्र छात्राएँ अध्यापन मन्दिर में प्रविष्ट होना चाहते हैं वे शीघ्र ही अपना आवेदन-पत्र भेज दें। आवेदक कम से कम सभा की हिन्दी भूषण या समिति की कोविद परीक्षा उत्तीर्ण होने चाहिएँ। विद्यार्थियों के रहने, भोजन करने तथा पढ़ने की निःशुल्क व्यवस्था है।

सभा का निर्वाचन

सभा के वार्षिक निर्वाचन आगामी युगादि के अवसर पर हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में निर्वाचकों को पृथक् पत्र जा रहे हैं। केन्द्र व्यवस्थापकों तथा प्रमाणित प्रचारकों से अनुरोध किया जाता है कि निर्वाचन संबन्धी पत्रों के उत्तर शीघ्र ही भेजें।

हिन्दी छात्र संघ

विवेक वर्धिनी कालेज में सभा द्वारा संचालित हिन्दी-वर्ग के छात्रों ने हिन्दी-छात्र संघ की स्थापना की है। इस संघ का उद्घाटन उस्मानिया विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री वंशीधर विद्यालङ्कार ने किया।

सभा का उपाधि वितरणोत्सव

फरवरी मास के तीसरे सप्ताह में सभा द्वारा संचालित उच्च परीक्षाओं के प्रमाण-पत्र वितरण के लिए विशाल समारोह किया जा रहा है। शान्ति निकेतन के आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन इस अवसर पर दीक्षान्त भाषण देंगे।

शोक-प्रकाशन

श्रीयुत माणिकलाल जी गुप्त की असामयिक और हिंसापूर्ण मृत्यु से हिन्दी सेवियों को बहुत ही दुःख पहुँचा है। राज्य के समस्त हिन्दी-सेवी दिवंगत के परिवार के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

निवेदन

हमारे बहुत प्रयत्न करने पर भी लेखों और कविताओं में प्रूफ़ की गलतियाँ रह गई हैं। इसको दूर करने का हम और भी प्रयत्न कर रहे हैं। हम इन भूलों के लिए क्षमा याचना करते हैं।

आवश्यक सूचना

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा की ओर से शिक्षा सहायता पाने वाले केन्द्रों को सूचित किया जाता है कि शिक्षा सहायता नियमावली संख्या (६) के अनुसार जिन केन्द्रों से विवरण पत्र अप्राप्त हैं उन्हें इस सत्र की सहायता का द्वितीय भाग भेजने में विवशता रहेगी।

अतः उपरोक्त नियम की ओर कृपया विशेष ध्यान दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पूनमचन्द सीसोदिया

शिक्षा-मन्त्री.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्रता कीजिए! शीघ्रता कीजिए!!

नूतन वर्ष का उपहार

"समय चूकि पुनिका पछिताये"

हिन्दी प्रेमियों एवं पुस्तकालयों के लिये शुभ अवसर

हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकों के सेट

लगभग ४०% कमीशन पर

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

हैदराबाद से

शीघ्र प्राप्त कीजिये

निम्न प्रकार श्रेणी का चुनाव कर नम्बर के साथ केवल १) भा. मु. अग्रिम व्ही. पी. से या पूरा मूल्य डाक व्ययसहित भेज कर मँगा लीजिये।

संच १

१. गाँधी डायरी
२. स्वाधीनता की चुनौती
३. रामचरित-मानस
४. बच्चों की पहेलियाँ

कु. मू. १४॥=)। हा.
दे. मू. ७॥≡) भा.
डा. व्य. ॥।)

संच २

१. गाँधी डायरी
२. साधना के पथ पर
३. अजायब घर
४. गाँधी प्रार्थना

कु. मू. ८॥=)॥। हा.
दे. मू. ४॥।) भा.
डा. व्य. ॥।-) भा.

संच ३

१. गाँधी डायरी
२. आधुनिक हिन्दी शब्दकोश
३. गाँधी आश्रम प्रार्थना
४. रामायण के उपदेश

कु. मू. ९।≡) हा.
दे. मू. ५।≡) भा.
डा. व्य. ॥।=) भा.

संच ४

१. गाँधी डायरी
२. भारतीय मजदूर
३. मिचौती भय्या
४. गाँधी आश्रम प्रार्थना

कु. मू. ८॥-) हा.
दे. मू. ४॥=) भा.
डा. व्य. ॥।) ,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संच ५

१. गाँधी डायरी
२. रवींद्र साहित्य
३. इतिहास की पाँच नई कहानियाँ
४. गाँधी आश्रम प्रार्थना

कु. मू. ६॥=)॥ हा.
दे. मू. ४-) भा.
डाक व्यय ॥।) ,,

संच ६

१. गाँधी डायरी
२. मालिक और मजदूर
३. वीर बहादूर
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५॥=) हा.
दे. मू. ३॥-) भा.
डाक व्यय ॥।≡) ,,

संच ७

१. गाँधी डायरी
२. कोई शिकायत नहीं
३. वीर बालक आल्हा ऊदल
४. हिन्दी इग्लिश टीचर

कु. मू. १२।-) हा.
दे. मू. ६।≡) भा.
डाक व्यय ॥।-) ,,

संच ८

१. गाँधी डायरी
२. विनोबा के विचार
३. मिचौंनी भया
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ६।-) हा.
दे. मू. ३॥।= भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच ९

१. गाँधी डायरी
२. पाक विज्ञान
३. हिन्दी इंग्लिश टीचर
४. खेल की तानें

कु. मू. ९)॥ हा.
दे. मू. ५।≡) भा.
डाक व्यय ।॥-) ,,

संच १०

१. गाँधी डायरी
२. नव जीवन
३. नटखट रिहा
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ७॥≡)॥ हा.
दे. मू. ४॥-) भा.
डाक व्यय ॥।-) ,,

संच ११

१. गाँधी डायरी
२. बटोही
३. सुने का नार
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५।=)॥ हा.
दे. मू. ३।=) भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच १२

१. गाँधी डायरी
२. विभावरी
३. सूसर चन्द्र
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५॥-)॥ हा.
दे. मू. ३॥-) भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच १३

१. गाँधी डायरी
२. त्यागपत्र (जैनेन्द्र)
३. साहसी सुरेश
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५=)॥ हा.
दे. मू. ३।-) भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच १४

१. गाँधी डायरी
२. निर्मला (प्रेमचन्द)
३. पागल
४. निश्वास

कु. मू. ६॥≡) हा.
दे. मू. ४=) भा.
डाक व्यय ।॥≡) ,,

संच १५

१. गाँधी डायरी
२. गाँधी साहित्य
३. घिस्सू पिस्सू
४. निश्वास

कु. मू. ६॥-)॥ हा.
दे. मू. ४-) भा.
डाक व्यय ॥।-

विशेष सूचना :-
कु. मू.=कुल मूल्य
दे. मू.=देय मूल्य

दिनांक १-१-५२

व्यवस्थापक
पुस्तक विक्री विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का मुखपत्र
संपादक
भदन्त आनन्द कौसल्यायन

विषय सूची

१. राष्ट्रभाषा का वार्षिक मूल्य तीन रुपये और एक प्रति का चार आने है।

२. वी० पी० से अंक नहीं भेजा जाता। कृपया मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजें।

३. मनीआर्डर-कूपन में 'राष्ट्रभाषा' का चन्दा भेजने का उल्लेख, ग्राहक का नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखा रहना चाहिये।

४. 'राष्ट्रभाषा' फरवरी '५१ से प्रतिमास ता. ९, १० को रवाना की जायेगी।

५. पते में परिवर्तन कम-से-कम छः महीनों के अंकों के लिये करना हो तभी उसकी सूचना कार्यालय को दें। अन्यथा अपने पोस्ट आफिस से स्थानीय व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

६. पत्र व्यवहार करते समय प्रत्येक पत्र में अपना नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखें; प्रमाणित प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, राष्ट्रभाषा के ग्राहक--इन शब्दों के साथ अपनी क्रम-संख्या लिखें।

७. 'राष्ट्रभाषा' में प्रकाशनार्थ समाचार प्रान्तीय संचालकों के द्वारा मिलने पर ही उन्हें पत्र में स्थान दिया जा सकेगा।

—व्यवस्थापक

राष्ट्रभारती

भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका

साहित्य-संस्कृति-कला प्रधान पत्रिका "राष्ट्रभारती" प्रतिमास आपको भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधिका परिचय देती है। इसमें देश-विदेश के गण्य-मान्य विद्वानों और कलाकारों की श्रेष्ठ रचनाएँ और अधिकृत अनुवाद भी रहते हैं। "राष्ट्रभारती" को राष्ट्रभाषा हिन्दी और लगभग सभी प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है।

★ आज ही ग्राहक बन कर लाभ उठायें ★

—राष्ट्रभारती प्रत्येक मास की १ तारीख को प्रकाशित होती है—

(वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। नमूने की प्रति के लिए ।।=) के डाक टिकट भेजें।)

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति ।।=)

पता:— व्यवस्थापक "राष्ट्रभारती"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

मुफ्त यौवन शक्ति

अधिक दिलचस्प पुस्तक जिस में स्वास्थ्य, धन तथा खुशी को बिना दवाइयों के हासिल करने के साधन और शादी के बाद जवानी को कायम रखने के अद्भुत साधन, जो कि आज तक ऋषि मुनी तथा वेदों में भी नहीं बनाए गए।

एम- एल. कौशिक एण्ड कंपनी
अजमेरी गेट, देहली.

मुफ्त! मुफ्त!!

आप हाथ की घड़ी मुफ्त प्राप्त कर सकते हैं।

विशेष जानकारी के लिए शीघ्र लिखें।

लौंगमैन ट्रेडिंग कम्पनी
कुन्डेवालां, देहली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

FOR WEEK MEN

Use Vigourine And Be Young In 24 Hours.

VIGOURINE Tonic is a most miraculous present day invention which rejuvenates all power of the body and doubles the manly vigour by strengthening nerves and muscles. It products new blood and increases weight by 5 to 10 lbs. Makes the face rosy shining, It is sure and guranteed cure of general debility, backache, coach, cold, asthma, frequency of urine, diabetes, nervous breakdown, brain weakness, headache, constipation and indigestion. In short overcoming all the manly weaknesses. produces great manly vigour and makes a man fit to live. By the use of this tonic, a man looks younger by 10 to 15 years, If full course is taken, Miraculous changes and benefits will definitely make the user surprise. Use VIGOURINE once and enjoy the real pleasure of life which you had been deprived of so far. Price per phial Rs. 5/- and half size Rs. 3/- Postage annas 0-14-0 extra' Please order in English only.

NATIONAL SCIENTIFIC STORES (AH)
NAI BASTI, DELHI-6.

DANGER to LADIES

DELAYED MENSES

If menses are irregular anb painful or you always, feel faitgued, uneasy, burning of limbs, constant headache, sudden fits, pain in the back, legs, waist or abdomen during the monthly period, then do not delay and use "HAIZOPHINE", a latest scientific invention, or else you are sure to develop Hysteria. This wonderful medicine will reglate the menses and relive you of all the aforesiad diseases within 24 hours. Price per phial Rs. 5/- and "HAIZOPHINE SPECIAL" which acts immediately Rs. 12/15. Use of this medicine is strictly prohibied in case of pregnancy. Orders in English only complied with.

NATIONAL SCINTIFIC STORES
(AS) NAI BASTI, DELHI - 6.

Kokshastra Free

If you are anxious to see the real Romances of Hollywood Film Stars and beautiful French fairies between 16 & 25 in their different private poses and other things--taken in absolute privacy and enjoy heavenly life on earth when in loneliness, order for a set of Secret Camera Photos.

Price Small Set Rs. 4/- and
„ Large Set Rs. 5/8
Postage Etc.
Annas 14 extra A copy of KOKSHASTRA revealing hundreds of secrets of men and women and explaining so many other things will be given free to every buyer of large set.

Preet Bhandar (AH)
POST BOX NO. 1259, DELHI.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★ १९५२ की गांधी डायरी ★

सस्ता साहित्य मण्डल की सजिल्द गांधी डायरी जिसमें प्रत्येक दिन राष्ट्रपिता गांधीजी के आदर्श वाक्य अंकित हैं। गांधीजी के सम्बन्ध में जानकारी, उनके मुख्य सिद्धान्त और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य बातें।

❋ कपड़े की जिल्द — ❋ सुन्दर छपाई

अपनी प्रति शीघ्र ही मँगवाइये।

हैदराबाद राज्य के लिए एक मात्र वितरक

पुस्तक विक्रय विभाग

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद-द.
फोन नं. ५४५०

पुस्तक विक्रेताओं के लिए कमीशन की व्यवस्था है।

THE PRUDENTIAL CO-OPERATIVE CENTRAL & URBEN BANK LTD.,

Kingsway, SECUNDERABAD-Dn.

❋

BRANCH : **HYDERABAD.** PHONE NO. **7195**

TRANSACTS BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION.

Office Safety Facilities In Uptodate Underground Safe Vaults.

A. H. VENKAT RAO B. A., LL. B.,
Honorary Secretary.

L. N. GUPTA. I. A. S.
President.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हि न्दी के उ त्त मो त्त म

साहित्य की प्राप्ति

के लिए

—* एकमात्र स्थान *—

079517

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली रोड : हैदराबाद–द०

टेलीफोन नं० ५४५०

तार—"हिन्दी"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रकाशकः— प्रियबन्धु–हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद–दक्षिण.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification

Compiled
1939-2009

Stock Verification

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar